# टेलीपेथी और स्वास्थ्य

डॉ. रामचरण महेन्द्र

२२२०
। आर्यु

# टेलीपेथी और स्वास्थ्य

( स्वास्थ्य संरक्षण और निवारण के लिए विचार संचालन विद्या के व्यावहारिक शिक्षण की मौलिक कृति )

लेखक :

**डॉ० रामचरण महेन्द्र**

एम. ए. पी. एच. डी.

रचयिता--शक्ति सम्राट कैसे बनें, दृष्टान्त सरित सागर, चिन्ताएँ कैसे दूर हों, देवता कैसे बनें, सुन्दर कैसे बनें, आदि ।

सम्पादक :

**डॉ० चमनलाल गौतम**

प्रकाशक :

## संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, वेदनगर, बरेली–२४३००१ (उ०प्र०)

प्रकाशक :

डॉ० चमन लाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, (वेद नगर)
बरेली, २४३००१ (उ० प्र०)

लेखक :

डॉ० रामचरण महेन्द्र

सम्पादक :

डॉ० चमनलाल गौतम

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण
१९७५

मुद्रक :

शैलेन्द्र वी. माहेश्वरी
नवज्योति प्रेस,
गली सेठ भीकचन्द, मथुरा.

मूल्य :

चार रुपये पचास पैसे मात्र

# भूमिका

प्राचीन कथाओं में महात्माओं के रुष्ट हो जाने पर शाप और प्रसन्न हो जाने पर वरदान देने का उल्लेख मिलता है। शाप से हानि और वरदान से लाभ क्यों? इसमें कौन सा मनोविज्ञान का सिद्धान्त निहित है? क्या यह महज कपोल कल्पना या मन की उर्वर उड़ान मात्र है? क्या यह कम विकसित लोगों को भ्रमित करने वाली झूठी-मूठी थोथी कल्पना से ऊँची चीज नहीं हैं? नहीं, यह सब अक्षाक्षः सत्य है। इस प्रकार के पौराणिक आख्यानों में ठोस सत्यता है। कारण, उपकारी विचारों से बड़े से बड़ा काम होता है। सेवा, त्याग, प्रेम, कर्त्तव्य, सहायता के लोकोपकारी विचारों से दुःखी और रोगियों को अद्भुत लाभ मिलता हैं और वे स्वस्थ हो जाते हैं। विचार शक्ति ऐसी ही सूक्ष्म है। वह एक प्रमुख औषधि है। यदि दवाई शरीर पर प्रभाव डालती है, तो विचार शक्ति रोगी के मन को सही स्वस्थ दिशा प्रदान करती है। वह मन की स्वास्थ्यप्रद शक्तियों को सक्रिय कर शरीर को स्वस्थ होने का अवसर देती है। आशीर्वाद या वरदान अच्छे भावों का दूसरा नाम है। जब अनेक शुभ सात्त्विक विचार पूरी सचाई से रोगियों, अपंग या मरणासन्न व्यक्तियों के मस्तिष्कों में जमाये जाते हैं, तो शरीर फिर से स्वस्थ होने लगता है। इसी प्रकार क्रुद्ध हो जाने पर शाप देने से ध्वंसात्मक विचार दूसरे व्यक्ति के मस्तिष्क पर आक्रमण करते हैं। जैसे तोप बन्दूक की गोली से जीव मर जाता है, वैसे ही शाप में व्यक्त विचार अच्छे मस्तिष्क को भी पंगु कर देते हैं। शाप या दुर्वचन हानि पहुंचाने वाले दुष्ट विचार हैं।

खेद है कि हम अपने मस्तिष्क को बुरे या हानिकारक विचारों से भरे रहते हैं। ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, निराशा, निर्बलता, शैथिल्य, भय और

दुःखमय विचार स्वयं आपका जीवन ही नष्ट करने वाले दूषित विचार हैं। रोग और व्याधि के विचारों को मन में रखकर आप निश्चय ही तरह तरह की बीमारियों को आमंत्रित कर रहे हैं। अहित कर चिन्तन से नीचे गिर रहे हैं। याद रखिए, शरीर की रचना, उन्नति या अवनति करने वाला आपका मन ही है। यदि मन में अशुद्ध अणु भरे होंगे, तो मस्तिष्क दूषित कल्पनाओं से भरा रहेगा। दबी हुई मानसिक उत्तेजना, घृणा, वासना, क्रोध मानसिक रोगों के रूप में प्रकट होती है। जब कोई विकार गुप्तमन में दब कर जम जाता है, या सामाजिक डर से मनुष्य अपने भाव प्रकट करने से रोकता है, तो अज्ञात रूप से इन भावनाओं का दमन होता रहता है। वह गुप्तमन में छिपी बैठी रहती है। जो उत्तेजना समाज में प्रकट होकर आस-पास हानि या दूसरों का विनाश कर सकती है, वही गुप्तमन में छिपकर आत्म विनाश का रूप धारण कर लेती है। अपने आपको कोसना या आत्म भर्त्सना आत्म विनाश का प्रारम्भिक रूप है जो आत्म हत्या जैसे मानसिक रोग में बदल सकता है। दलित उत्तेजनाएँ सांकेतिक चेष्टाओं या दुःखदायी स्वप्नों के रूप में परेशान करती रहती हैं। प्रायः लोग कुछ अनैतिक कार्य कर बैठते हैं। यह अनैतिक कार्य करने की भावना गुप्तमन में बैठकर कोई मानसिक विकार उत्पन्न कर सकती है। इस प्रकार अशुद्ध विचारों से शरीर रोगी अशान्त और व्यथित हो जाता है। यदि मन में रोग शोक निर्बलता के विचार भरे होंगे, तो शरीर में वे ही रोग देर सवेर प्रकट हो जायेंगे। मन का शरीर पर अटूट प्रभाव है। मानसिक दुःख से शरीर एकदम निर्बल पड़ जाता है। स्थूल शरीर का मन सूक्ष्म रूप है। हमारा हड़ मांस का शरीर मन का वाह्य रूप है। मन के विभिन्न भावों के अनुसार ही हमारा स्नायु मंडल उत्तेजित हुआ करता है। यदि मन निरोग हो तो शरीर भी स्वस्थ रहे।

अतः शरीर को स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक है कि मन स्वस्थ हो। मन को स्वस्थ रखे विना शरीर स्वस्थ रह ही नहीं सकता। मन

की स्वस्थता विचारों की पवित्रता, स्वच्छता और सबलता पर निर्भर करता है। अतः इसे सशक्त बनाने के लिए समस्त विकृतियों, दुर्बलताओं दुर्भावनाओं को दूर करना होगा। शरीर रोगी होने पर प्रायः स्थूल औषधियाँ द्वारा उसे निरोग करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु इन से रोग जड़ से नहीं जा पाता। जिस रोग के लिए उपचार किया गया है, वह यदि प्रत्यक्ष रूप से दूर हो भी जाए तो अप्रत्यक्ष रूप से वह नए नए रूप धारण करके दूसरे रोगों के रूप में सामने आता है। इसका कारण मन का अस्वस्थ रहना है। बाह्य औषधियों के साथ यदि मानसोपचार किया जाये तो रोगों के जड़ से जाने की आशा की जा सकती है।

प्रस्तुत पुस्तक टेलीपेथी-विचार संचालन विद्या का शिक्षण व मार्ग दर्शन करती है। इसमें निर्देशित विधियों के अनुसार हर व्यक्ति अपने विचारों को स्वस्थ व अनुकूल दिशा में संचालित करके रोगों को दूर कर के पूर्ण स्वस्थ रहने की क्षमता प्राप्त कर सकता है।

**महेन्द्र साहित्य सदन** — **डॉ० रामचरण महेन्द्र**
नया पुरा, कोटा (राजस्थान)

# टेलीपेथी और स्वास्थ्य

# की

# विषय-सूची


| क्रमांक | पृष्ठांक |
|---|---|
| १—बिना बोले विचार भेजना ही टेलीपेथी साधना है। | ६ |
| २—टेलीपेथी द्वारा पशु पक्षी भी विचार संचालन करते हैं। | १० |
| ३—दैनिक जीवन में टेलीपेथी का प्रमाण। | १६ |
| ४—टेलीपेथी और विचार शक्ति का आणविक विस्फोट | १७ |
| ५—टेलीपेथी साधना में गुप्तमन का महत्वपूर्ण स्थान। | २२ |
| ६ – टेलीपेथी साधना में मानसिक शक्तियों का विकास आवश्यक है। | २४ |
| ७--टेलीपेथी साधना की सिद्धि के लिए विचार शक्ति को जागृत कीजिये। | २५ |
| ८—टेलीपेथी साधना का आवश्यक अङ्ग—सद्विचारों का विकास। | ३० |
| ९—टेलीपेथी से गुप्त शक्तियों का जागरण होता है। | ३७ |
| १०—आसुरी शक्तियों से संरक्षित हुए बिना टेलीपेथी में गति प्राप्त करना कठिन है। | ४० |
| ११—टेलीपेथी का असाधारण यन्त्र-मस्तिष्क। | ४७ |
| १२—टेलीपेथी का प्रथम तत्व-एकाग्रता। | ४९ |
| १३—एकाग्रता की प्राप्ति के लिए शिथलीकरण की साधना कीजिये। | ५२ |
| १४—टेलीपेथी का द्वितीय तत्व-उर्वरा कल्पना। | ५३ |
| १५—टेलीपेथी का तृतीय तत्व-दृढ़ इच्छा शक्ति। | ५५ |
| १६—टेलीपेथी की महान शक्तियाँ-विचार की लहरें और कम्पन। | ५७ |
| १७ टेलीपेथी के संचालन का सशक्त माध्यम-ईथर तत्व। | ५८ |
| १८—टेलीपेथी साधना की उच्च स्थिति-समाधि | ६३ |

| क्रमांक | पृष्ठांक |
| --- | --- |
| १९—समाधि के अभ्यास में सावधानी रखिये। | ६५ |
| २०—टेलीपेथी की उच्च साधना। | ६६ |
| २२—टेलीपेथी के आरम्भिक अभ्यास। | ७० |
| २२—टेलीपेथी साधना को परिपक्व करने वाले अभ्यास। | ७३ |
| २३—टेलीपेथी के विकसित प्रयोग। | ७४ |
| २४—टेलीपेथी के कुछ महत्वपूर्ण तत्व। | ७५ |
| २५—रोगों के भय से मुक्त हुए विना स्वस्थ रहना असम्भव है। | ७८ |
| २६—स्वस्थ रहने के लिए अन्ध विश्वास और भ्रमपूर्ण मान्यताओं को त्याग दीजिये। | ८२ |
| २७—स्वस्थ रहने की एक अनुभव सिद्ध युक्ति। | ८६ |
| २८—चिन्ता छोड़िये, स्वस्थ रहिये। | ८९ |
| २९—सुन्दर स्वास्थ्य के लिये सात्विक विचारों का आवाहन कीजिये। | ९२ |
| ३०—मानसिक रोगों से दूर रहना हो तो विचारों की जटिलता कम कीजिये। | ९६ |
| ३१—मानसिक आरोग्य के लिये आनन्दमय विचारों पर मन केद्रित कीजिये। | १०६ |
| ३२—मानसिक रोगों से वचने के मनोवैज्ञानिक उपाय। | ११० |
| ३३—हृदय रोग से वचने के व्यावहारिक सुझाव। | ११६ |
| ३४—टेलीपेथी और स्वास्थ्य (१) | १२५ |

विचार शक्ति से स्वास्थ संरक्षण,यदि मन रोगी तो शरीर वीमार, स्वीकृतियों और संकेतों से स्वास्थ्य का सुधार एवं संरक्षण, रागात्मक झुकाव से विचार अन्तर्मन का अभिन्न अङ्ग वनते हैं, स्वीकृतियाँ देना सीखें और स्वस्थ रहें, विचार संयम की भावना, दैनिक ध्यान करने के लिए स्वीकृतियाँ, आरोग्य और आनन्द की भावना गुप्त

क्रमांक पृष्ठांक

मन में जमाइये, स्वीकृति के प्रयोग में, इच्छा शक्ति, भावना और विवेक का उपयोग करें, जीर्ण रोगों का मानसिक उपचार, कायरता तथा भय दूर करने के लिए भावनायें, उद्विग्नता और व्याकुलता के रोग से मुक्त होने की भावना, नेत्रों के विकार दूर करने के उपाय, पेट के रोग दूर करने के लिये भावना, अनिद्रा तथा भयंकर स्वप्नों से मुक्ति, कामुकता के रोग से छुटकारा।

३५—टेलीपेथी और स्वास्थ (२) १५५

प्रार्थना से रोग निवारण, प्रार्थना में अपार शक्ति और सामर्थ्य है, आधुनिक दृष्टि में प्रार्थना, प्रार्थना के असंख्य लाभ, प्रार्थना से मानसिक शक्तियाँ उत्तेजित होती है, प्रार्थना वास्तव में क्या है,मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना, गुप्त मन की प्रतिक्रियाऐं, उचित ढङ्ग से प्रार्थना कीजिये, प्रार्थना का तात्विक विश्लेषण, प्रार्थना का द्वितीय तत्व-एकाग्रता,तृतीय तत्व-सृजनात्मक ध्यान,चतुर्थ तत्व-आत्म-निवेदन, प्रार्थना के भिन्न-भिन्न-रूप, आकर्षक प्रार्थन, प्रवाहक प्रार्थना, शक्ति की विद्युत तरंगों का संग्रह कैसे हो, आकर्षक प्रार्थना की ३ अवस्थाएँ, प्रार्थना के लिये सर्वोत्तिम समय, प्रार्थना की चमत्कारिक शक्ति से रोग दूर होते हैं, प्रार्थना द्वारा स्वस्थ हुए रोगियों के कुछ उदाहरण,सारी शक्तियाँ ईश्वर में केंद्रित हैं, प्रार्थना द्वारा ईश्वरीय शक्ति खींचना,एकाग्र मन से नीचे लिखी प्रार्थना किया करें और निरोग करने वाली प्रार्थना।

# टेलीपेथी और स्वास्थ्य

## १. बिना बोले विचार भेजना ही टेलीपेथी साधना है।

क्या मनुष्य एक स्थान पर बैठ कर बिना बोले अपने विचार दूसरे मन तक संचालित कर सकता है ? वाह्य दृष्टि से प्रश्नजटिल प्रतीत होता है, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। हमारे पूर्बज ऋषि मुनि योगी अपने विचार बिना शब्दोच्चारण किए हुए दूसरों पर स्पष्ट प्रकट कर दिया करते थे। योग की आश्चर्यजनक सिद्धियों की प्राप्ति से मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? एक ओर योगी ब्रह्म समाधि में लीन होकर अनिर्बचनीय आनन्द का अनुभव करता है, तो दूसरी ओर वह योगबल से अनेक चमत्कार प्रदर्शन कर संसार को आश्चर्य में डाल सकता है। योगबल द्वारा विकसित मानसिक शक्तियों के द्वारा योगी दूसरे मनुष्यों पर अपना प्रभाव डाल सकते हैं और साथ ही अपने पुष्ट विचार उनके मन में प्रविष्ट करा सकते हैं। मेस्मरेज़म, हिनैटिज्म इत्यादि योग के ही कुछ चमत्कार हैं।

प्रसिद्ध उपन्यासकार श्री एच० जी० वेल्स ने अपने एक उपान्यास में सौ वर्ष आगे का काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किया है। एक स्थान पर आप एक बक्ता का उल्लेख करते हुए निर्देश करते हैं कि वह एक विशाल जन-समुदाय में खड़ा हुआ वक्तृता दे रहा था। आत्म-तेज से उस वक्ता का मुखमंडल प्रदीप्त हो रहा था। उसके नेत्रों से आकर्षण शक्ति की सूक्ष्म तरंगें निकल रहीं थीं। उसके होठ हिलते थे, हाथ द्वारा संकेत भी होते थे, किन्तु ध्वनि बिलकुल नहीं आ रही थी। उस श्रोता समाज में इटैलियन, फ्रेंच, रूसी, भारतीय, अंग्रेज इत्यादि सभी देशों के

व्यक्ति सम्मिलित थे, किन्तु प्रत्येक व्यक्ति भाषण का प्रत्येक अक्षर स्पष्टतः समझ रहा था। हम लोग भी उसी समुदाय में सम्मिलित हो गए। हमें भय था कि कदाचित् विदेशी भाषा में होने के कारण हम वक्तृता का आनन्द प्राप्त न कर सकेंगे, किन्तु हमारे आश्चर्य की सीमा न रही जब हमने अनुभव किया कि हमारी मातृ भाषा में परिवर्तित होकर प्रत्येक अक्षर स्पष्ट समझ में आता था।

वास्तव में वक्ता किसी विशेष भाषा में न बोल रहा था प्रत्युत भाषा के स्थान पर अपने विचारों को श्रोतागणों के मस्तिष्क में फेंक रहा था और उसके विचार प्रत्येक श्रोता की भाषा में परिवर्तित होकर हर व्यक्ति के पास पहुँच रहे थे। श्री एच. जी वेल्स का अनुमान है कि एक समय ऐसा आवेगा जब हमारी मानसिक शक्ति इतनी परिपुष्ट हो जायेगी कि डाक, तार, टेलीफोन, रेडियो इत्यादि ध्वनि व विचार सञ्चालन करने वाले यन्त्र वेकार हो जायेंगे तथा तेजस्वी अपने मन की तीव्र शक्ति द्वारा अपने सन्देश (Messages) एक दूसरे के पास विचार सञ्चालन या क्लोरावेन्स से भेज दिया करेंगे।

---

## २. टेलीपेथी द्वारा पशु पक्षी भी विचार संचालन करते हैं

मनुष्य के मन की आश्चर्यजनक शक्तियों के विवेचन से पूर्व हम वृक्षों पशु-पक्षियों की अद्भुत शक्तियों का अध्ययन करेंगे जिनसे वे आश्चर्यजनक कार्य किया करते हैं। एक छोटा पौधा प्रायः दलदल में उगता है। इसे अंग्रेजी में Sund.w या Drosera rotundi folia कहते हैं। यह अपना भोजन मिट्टी तथा पानी इत्यादि से तो ग्रहण करता ही है, किन्तु साथ ही यह छोटे-छोटे कीड़ों, तितलियों, मच्छरों इत्यादि को भी पकड़ा करता है। उसकी पत्तियाँ मक्खियाँ पकड़ने के लिए विशेष रूप से बनी होती हैं। ये पत्तियाँ पतली टहनियों

पर तीन-तीन इंच की दूरी पर लगी रहती हैं। प्रत्येक पत्ती में कुछ रोएँ तथा उन रोओं पर गोंद की भाँति का एक मीठा चिपकने वाला पदार्थ लगा रहता है। मिठास के लोभ में जैसे ही मक्खी आकर पत्ती पर बैठती है, वैसे ही आस-पास के रोएँ उसे फाँस लेते हैं। वे इतनी मजबूती से मक्खी को जकड़ लेते हैं कि वह भाग नहीं पाती। तदनन्तर मक्खी के प्राण, रक्त इत्यादि चूस लिये जाते हैं। यदि मरी हुई मक्खी सुई की नोंक में बांध कर इस पौधे के पास लाई जाती है, तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे वह पत्तियों की ओर खिच रही हो। पत्तियाँ तथा बारीक रोएँ छोटे २ मच्छरों को खींचता है।

यह पौधा न देख सकता है, न सूँघ, स्वाद, या सुन सकता है किन्तु अपनी अद्भुत शक्ति से अनेक कीटाणुओं को खा जाता है। जीवों को लीजिये। उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ इतनी तीव्र न होने पर भी उन्हें दूसरे जीवों के आगमन की प्रतीति हो जाती है। श्री सन्तरामजी लिखते हैं, एक बार इङ्गलैण्ड में कोई सज्जन एक विशेष प्रकार के पङ्खदार कीड़ों का एक जोड़ा लाये। इसके पूर्व वहाँ वैसे कीड़े बिलकुल न थे। न जाने कैसे उसमें से नर कीड़ा उड़ गया। नारी कीड़ा एक छोटे से पिंजड़े में बन्द करके रात्रि के समय बाहर लटका दिया गया। सवेरे उस कीड़े पालने वाले सज्जन ने बड़े आश्चर्य से देखा कि नर-कीड़ा पिंजड़े के बाहर चिमटा हुआ है। कीड़े अपने जोड़ोंदारों को गुप्त मानसिक शक्तियों द्वारा अपने साथियों को आकर्षित करते हैं। जिन्होंने चींटियों का हाल पढ़ा है वे प्राणिशास्त्र-वेत्ता जानते हैं कि चींटियाँ एक दूसरे से बहुत दूर से ही बातें कर लेतीं हैं। श्री सन्तरामजी ने एक बड़ा मनोरंजक प्रयोग इस प्रकार लिखा है—एक बार एक प्रोफेसर ने चींटियों का पिंजड़ा एक पत्थर के बने हुए कमरे में रख दिया। इस कमरे की दीवारें १६ इंच मोटी थीं, उसमें दरार, छिद्र या खिड़की कहीं भी न थीं। केवल एक द्वार था और वह भी ऐसी सख्ती से बन्द था कि कोई उसमें घुस न सकता था। जब कभी प्रोफेसर चींटियों की बस्ती की

परिवृद्धि का अवलोकन करने उस कमरे में आता, तब सदैव देखता कि दूसरी चींटियाँ दीवार के बाहर एकत्रित हैं और पत्थरों के भीतर घुसने का यत्न कर रही हैं। जब कभी वह कमरे के अन्दर पिंजड़े में बन्द चींटियों का स्थान बदल कर कमरे से बाहर निकलता, तब क्या देखता कि बाहर कीचींटियाँ भी उसी दीवार के पास और ठीक उसी जगह बाहर एकत्र हैं जहाँ कि भीतर वे पिंजड़े की चींटियाँ हैं। अन्दर पिंजड़े में परिवर्तन के साथ बाहर की चींटियों में भी परिवर्तन होता जाता।

अनेक बार देखा जाता है कि कुत्ते बिल्लियाँ घर से कई मील दूर छोड़े जाने पर भी, पुनः वापिस वहीं आ जाते हैं। कबूतर कितने ऊँचे आकाश में उड़ जाते हैं, किन्तु फिर अनेक घरों को छोड़ कर अपने ही घर पर उतरते हैं। स्थानों, व्यक्तियों तथा वस्तुओं से सूक्ष्म तरंगें निकला करती हैं। इन्हीं के द्वारा वे बातचीत करते तथा अपने विचार एक दूसरे के पास भेजते हैं। सब एक दूसरे पर मानसिक प्रभाव डालते हैं। जीव, जन्तुओं पौधों में वशीभूत, आकर्षित एवं सम्मोहित करने की अनेक अदृष्ट शक्तियाँ निवास करती हैं। इधर से उधर वे अनेक बार विचार संचालन किया करते हैं।

श्री संतराम जी ने एक प्रोफेसर का उल्लेख करते हुए लिखा है कि उक्त प्रोफेसर एक बार एक जंगल से गुजर रहे थे। ये प्राणी शास्त्र-वेत्ता थे और पशुओं की गुप्त शक्तियों का निरीक्षण करते थे। मार्ग में एक ओर सरिता थी, दूसरी ओर झाड़ियों से ढकी हुई एक चट्टान। उक्त प्रोफेसर कहते हैं कि एकएक मैं क्या देखता हूँ कि विविध प्रकार के पक्षी मार्ग के आर-पार, आगे-पीछे कलरव करते हुए मार्ग के एक विशेष स्थान पर घूम रहे हैं। ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि एक एक बड़ा भारी नाग कुण्डली मारे फन उठाये टकटकी बाँधे बैठा है। उस नाग की आँखें हीरे की तरह चमक रही हैं। यही नाग पक्षियों की गति का केन्द्र था। प्रोफेसर लिखते हैं कि यद्यपि मनुष्य की आहट से साँप

तो छिप गया परन्तु पक्षी ऐसे मुग्ध थे कि वे न उड़ सके, न भाग सके। सर्प की मानसिक शक्ति ने जैसे उन पर जादू कर दिया हो। शहद की मक्खी पुष्पों से मधु एकत्रित करने के लिए कई मील दूर के पुष्पों तक जाती हैं किन्तु पर्वत, नदियें, अनेक स्थानों के ऊपर होकर मानसिक शक्ति से पुनः छत्ते तक पहुँच जाती है।

पशु पक्षियों में आविर्भूत शक्ति कैसे वलवती होती है, यह सर्व विदित है। किन्तु मनुष्य की मानसिक शक्ति इन सबसे कई गुनी प्रभावशालिनी है। उसके विचारों में वह शक्ति है कि सैकड़ों मील पर बैठे हुए दूसरे मनुष्य पर असर करते हैं। अनेकानेक वार सिद्ध हुआ है कि विचार की इस असाधारण शक्ति द्वारा मनुष्य अनेक मील दूर पर होने वाली घटनाओं को देखने और वातों को सुनने समझने में समर्थ हैं। स्वप्नावस्था में अनेक मनुष्य विदेश में बैठे हुए लोगों से संभाषण करने में समर्थ हुए हैं। अनेक वार दूर दूर की आवाजें कान में ऐसी आ पड़ती हैं कि मालूम होता है जैसे सब कुछ हमारे पास ही हुआ हो।

श्री संतरामजी ने एक और घटना इस प्रकार लिखी है, यह राईट आनरेवल सर जानड्रमंड हे के साथ घटी थी। वे लिखते हैं कि १८७९ में मेरा पुन परिवार सहित मोगडोर में रहता था। उस जगह वह पोलिटिकल कौंसल था। फरवरी का महीना था। मुझे अपने पुत्र और उसके परिवार के कुशल समाचार सुने थोड़े ही दिन हुए थे। रात के एक वजे जव मैं प्रगाढ़ निद्रा में निमग्न था तो मुझे मेरी पुत्र वधू की आवाज सुनाई दी और मैं तुरन्त जग उठा। उसने कहा—"हा! मैं चाहती हूँ कि पिता जी को मालूम हो जाय कि उनका पुत्र रावर्ट इतना बीमार है।" कमरे में जलाने के लिए लैम्प रक्खा था। मैं उठ बैठा और उसे जला कर चारों ओर देखकर आवाज को सुनने लगा परन्तु कमरे में मेरी स्त्री के अतिरिक्त कोई न था और वह चुपचाप दूर सो रही थी। मैं कुछ देर तक चुपचाप हतवुद्धि सा मूक बैठा रहा। सुनसान रात वैसे ही सांय सांय करती रही। अतः मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि

जो ध्वनि मैंने सुनी थी वह केवल भ्रम था । मैं पुन: लेट गया किन्तु मैंने मुश्किल से नेत्र मूँदे थे कि वही आवाज सुन पड़ी। तब मैंने अपनी पत्नी को जगाया और जो घटना घटी थी, वह कह सुनाई । इसके बाद उठ कर मैं अपने वाचनालय में गया वहाँ जाकर यह घटना मैंने अपनी नोट-बुक में लिख ली । दूसरे दिन मैंने सारी बातें अन्य व्यक्तियों से भी कहीं । इस घटना के थोड़े दिन बाद मेरी पुत्र वधू का मुझे पत्र मिला जिसमें लिखा था कि मेरा पुत्र सांनिपातिक ज्वर से सख्त बीमार है । यह दैवयोग देखकर कि मेरा पुत्र भी उसी रात को व्यधिग्रस्त हुआ जिस दिन मैंने वह आवाज सुनी थी, मैंने बहू को लिखा कि जो कुछ घटना घटी हो उसका सम्पूर्ण वृतान्त लिख कर भेजो । उसने लौटती डाक से उत्तर दिया कि अपने पति को ऐसा सख्त बीमार देखकर और उस दूर देश में अपने को अकेले होने का अनुभव करके उसने ठीक वे ही शब्द बोले थे, जिन्होंने मुझे निन्द्रा से जाग्रत किया था । सैंकड़ों मील पार कर अदृश्य माध्यम द्वारा पुत्रवधू के विचार अपने सुनिश्चत केन्द्र पर पहुँच गये थे ।

टेलीटेथी द्वारा पशु, पक्षी, वृक्ष परस्पर विचार संचालन किया करते हैं । मधुमक्खिएँ, कीड़े, मकोड़े, सर्प, चींटियाँ किस प्रकार विना बोले बातचीत करते हैं—इसका वर्णन लार्ड एवीवरी तथा अन्य प्राणि-शास्त्र वेत्ताओं ने सविस्तार से किया है । लार्ड एवीवरी का तो विचार है कि निम्न श्रेणी के पशुओं के पास टेलीपेथी के अतिरिक्त विचार संचालन का अन्य कोई साधन ही नहीं है ।

रेडियो के आविष्कार कर्त्ता श्री मारकोनी ने शब्द की तरंगों, लहरों इत्यादि के कम्पन की व्याख्या करते हुए एक बार निर्देश किया था कि अनेक शताब्दियों पूर्व आदिमयुग का असभ्य प्रेमी कितनी ही दूर किसी कन्दरा या गुफा में बैठी हुई अपनी प्रेमिका के पास अपना प्रेम सन्देश भेज दिया करता था और उसका उत्तर भी पा लिया करता था। इस वक्तव्य में गहन सत्यता निहित है ।

सूडान में जनरल गोरडन मृत्यु को प्राप्त हुआ था, किन्तु उसकी मृत्यु का सन्देश अदृश्य माध्यम द्वारा चार हजार मील दूरी पर रहने वाले उनके देशवासियों को उसी क्षण ज्ञात हो गया था जिस समय उनकी मृत्यु हुई थी। कुछ दिन पूर्व इंगलैंड के एक पत्र में 'मानवीय वायरलेस' शीर्षक के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण समाचार प्रकाशित हुआ था जिसमें कुछ अंग्रेज यात्रियों ने एक एसकिमो (Eskimo) के विषय में लिखा था कि उक्त व्यक्ति ने उन्हें उनके एक साथी के विषय में बताया कि वह मध्य अमेरिका के एक नगर में कत्ल कर दिया गया है। उस वृद्ध एसकिमो ने, दो हजार मील दूरी पर ही उक्त दुर्घटना के समस्त वृतान्त इस बारीकी से बताये जैसे वह स्वयं सब कुछ आँख से देख आया हो। एक वर्ष के पश्चात् जब ये यात्री उक्त नगर में पहुँचे और मामले की तहकीकात की तो उन्हें विदित हुआ कि उक्त वृद्ध की छोटी से छोटी बात भी अक्षरक्षः सत्य थी।

जोजेफ सिनेल लिखते हैं कि वे दक्षिणी सूडान की यात्रा में (South Eastern Suden) वहाँ के निवासियों की मनोवृत्तियों के अध्ययन के लिए गये हुए थे। वहाँ उन्हें ज्ञात हुआ कि उन व्यक्तियों में अप्रत्यक्ष रूप से अपने आप विचार संचालन चला करता है। दैनिक कार्यों में वे अनेक बार उसका सफल प्रयोग करते हैं। जोजेफसिनेल लिखते हैं कि एक बार हमारी मंडली के दो कैम्प थे, जो चार-चार मील की दूरी पर लगे थे। मध्य में एक पगडंडी थी। एक दिन सायंकाल मैं अकेला पैदल ही निकल पड़ा और दूसरे कैम्प तक जाना चाहा। मार्ग में रात हो गई और मैं मार्ग भूल गया। बड़े अस्त व्यस्त होकर मैंने मार्ग ढूढ़ने का प्रयत्न किया। मन में यह बात रही कि क्या ही अच्छा होता यदि मेरा कोई सूडानी नौकर आ जाता। हिंस्रजन्तु ने मुझे और भी भयभीत कर दिया। थोड़ी दूर पर मुझे एक छोटी सी रोशनी दृष्टिगत हुई। वहाँ गया तो क्या देखता हूँ कि एक सूडानी मजदूर ने एक झोंपड़ी में अग्नि जला रक्खी है तथा ताप रहा है। रात में यहीं रहा।

ज्यों ही दिन निकला क्या देखता हूँ कि सूडानी मजदूर कुछ व्यस्त है । उसने कहा—'आपको ढूढ़ने के लिए आपका एक आदमी यहाँ आ रहा है।'' मेरे विस्मय का ठिकाना न रहा जब कोई आध घण्टे पश्चात् सचमुच मेरे कैम्प का एक व्यक्ति वहीं आ पहुँचा । मैंने उनसे पूछा कि उसे मेरे वहाँ होने का वृतान्त क्यों कर ज्ञात हुआ तो उसने बताया कि सूडानी लोग अनायास ही सब कुछ मालूम कर लेते हैं ।

---

## ३ दैनिक जीवन में टेलीपेथी का प्रमाण

विचार-संचालन परिपुष्ट मस्तिष्क वाले मानव के लिए साधारण सी बात है । हम प्रायः सभी थोड़ी बहुत मात्रा में विचार संचालन क्रिया से कार्य लेते हैं । आपने बहुधा देखा होगा कि किसी को स्मरण करते ही तुरन्त वह व्यक्ति गृह में प्रविष्ट होता दिखाई पड़ता है । हम ऐसा सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति आता होगा, वह आ जाना चाहिए, समय हो गया—ऐसी मनः क्रिया होते ही न जाने क्यों कर वह व्यक्ति हम तक पहुँच जाता है तथा हम कह उठते हैं—"अरे ! तुम आ गये । हम तुम्हें याद ही कर रहे थे । तुम्हारी बड़ी उम्र है ।"

यह क्रिया विना कारण के नहीं हो जाती । उसके पीछे एक गहन सत्य अन्तर्निहित है । टेलीपेथी विशेषज्ञ इसकी व्याख्या यों करते हैं—"आने वाला व्यक्ति अपने मस्तिष्क द्वारा आने से पहिले आते-आते अपने परिपुष्ट मस्तिष्क द्वारा विचार तरंगें संचालित कर रहा था । ये विचार तरंगें आकाश में व्याप्त ईथर (Ether) माध्यम में होकर क्रमशः हमारे मस्तिष्क में आ रहीं थीं । हमारा मस्तिष्क उन विचार तरंगों का ग्राहक केन्द्र स्थान (Receiving centre) बन गया । मस्तिष्क में वही थरथराहट उत्पन्न हुई जो संचालक के मस्तिष्क में थी । संचालक (Transmitter) के मस्तिष्क की समस्त तरंगें ग्राहक (Receiver) के मस्तिष्क में आकर पुनः विचारों में परिवर्तित हो गई ।

---

# ४. टेलीपेथी और विचार शक्ति का आण-विक विस्फोट

एक छोटे से बीज में बड़े-बड़े वृक्ष छिपे रहते हैं। अब ये छोटे बीज हमारे हाथ में होते हैं, तो यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि इन नन्हे-नन्हे बीजों में बड़, पीपल, नीम और इमली जैसे विशाल वृक्ष छिपे हुए हैं। ये बीज मिट्टी, जल, धूप, खाद और उपयुक्त वातावरण पाकर अंकुरित होते हैं, नन्हें पौधे पनपते हैं, कालान्तर में विकसित होकर वृहत् वृक्षों की ऊँचाई और छायादार आकृति प्राप्त कर लेते हैं। इनके नीचे बैठकर न जाने कितने पशु-पक्षी मानव शरण पाते हैं और धूप वर्षा से अपनी रक्षा करते हैं।

इसी प्रकार मनुष्यों में सबसे सूक्ष्म शक्ति उनके मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाले विचार हैं। सब अवयवों में मानव मस्तिष्क चमत्कारों का केन्द्र है और उसमें पैदा होने वाली विचारशक्ति सर्वोपरि है। एक छोटे से महत्वपूर्ण विचार में अद्भुत उत्पादक या संहारक शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। इतिहास बताता है कि मानव-समाज में जितने बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं, जितनी महान् क्रान्तियों ने दुनिया का नक्शा बदला है, जितने विशाल आन्दोलनों ने हलचल उत्पन्न की है, उनका जन्म पहले पहल किसी दूरदर्शी आदमी के उर्वर मस्तिष्क में एक छोटे से विचार के रूप में हुआ था। जैसे एटम बम भारी विस्फोट कर सकता है, या उसका मानव-सेवा और उत्पादन कार्यों में किया जा सकता है, उसी प्रकार विचार-एटम के आधार पर मानव समाज की भारी उन्नति, प्रगति और विकास हो सकता है। नये-नये क्षेत्रों में तरक्की की जा सकती है। इसी विचार शक्ति के बल पर मनुष्य ने सर्वांगीण उन्नति की है तथा वह विचार शक्ति के सदुपयोग द्वारा इस विशाल सृष्टि के समस्त जीवों का सिरमौर बना हुआ है।

जैसे अपने उद्यान या खेत के लिए सबसे बढ़िया बीजों का चयन करना आपके हाथ की बात है, खराब बीजों का तिरस्कार करना संभव है; वैसे ही प्रगति, उन्नति, महानता, स्वास्थ्य, सौन्दर्य, यौवन, आस्तिकता, उन्नति, प्रफुल्लता आदि के उर्वर और उपयोगी विचारों को चुनने और मन की फुलवारी में बोने की आपकी स्वयं की जिम्मेदारी है। सही विचारों के सावधानी से चयन द्वारा अपनी परिस्थिति और सृजनात्मक उर्वर मानसिक वातावरण का निर्माण करना स्वयं आपके हाथ की बात है। आप जैसे विचारों की मानसिक दुनिया में विचरते हैं, उन्हीं उत्तम अथवा निकृष्ट विचारों को आप अपने दैनिक व्यवहारिक जीवन में मूर्तिमान देखते हैं। विचार मनुष्य के शरीर को चलाते हैं, इन्द्रियों को परिचालित करते हैं, मन को शक्ति से परिपूर्ण करते हैं या उसे निर्बल बना देते हैं। विचार प्रकाश स्वरूप हैं जो हमारे अज्ञान के अन्धकार को दूर करते हैं। सशक्त विचार परमात्मा की सर्वव्यापी एवं अतुल ताकत है। कहा है—

**यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति।**
**दूरङ्गमं ज्योतिसां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥**

**यजुर्वेद ३४।१**

अर्थात् याद रखिये, आपके मन की शक्ति अनन्त है। आपका प्रचण्ड मन सदैव विचारों में लगा रहता है, जाग्रत और सुप्त अवस्थाओं में भी क्रियाशील रहता है। मन ज्योतिस्वरूप है, किन्तु मलावरण से ग्रसित होने से पूरा कार्य नहीं करता। इसे सही दिशा में चलाने से ही लाभ हो सकता है। इसलिये हम प्रयत्न करें कि हमारा यह बहुमूल्य यन्त्र सदा सर्वदा शुभ और कल्याणकारी विचारों से परिपूर्ण बना रहे।

**येन कर्माणामपसो मनीसिणो यज्ञे कृण्वन्ति बिदथेषु धीराः।**
**यद पूर्वं यक्षन्तमः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु॥**

**यजुर्वेद ३४।२**

अर्थात् मनुष्य के स्वस्थ मन से ही उसे इस संसार में पारलौकिक साधन तथा लौकिक सुख प्राप्त होता है। यह प्राणिमात्र के भीतर रहता

है । इसलिए हम यह ध्यान रखें कि हमारा मन सदा शुभ और कल्याण-कारी विचारों में ही सदैवरत रहा करें ।

**यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृत प्रजासु ।**
**यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु**
**यजुर्वेद ३४ । ३**

अर्थात् उत्कृष्ट ज्ञान, शुभ कल्याणकारी चिन्तन, धैर्य आदि जीवन निर्माणकारी समस्त सद्गुणों का आदि स्रोत हमारा यह मन ही है । हमें यह सावधानी रखनी चाहिये कि कहीं यह विषय वासना के निद्य अन्धकार में अर्थात् दुष्ट दुष्कर्म की ओर न बढ़े । इसलिए हम यह प्रयत्न करते रहें कि हमारा मन शुभ, सात्विक कल्याणकारी विचारों वाला केन्द्र हो । सही दिशाओं में चले ।

**येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परि गृहीतम मृतेन सर्वम् ।**
**येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥**
**यजुर्वेद ३४ ।४**

जो नाश रहित भूत, भविष्यत् और वर्तमान का योग साधन द्वारा ज्ञान प्राप्त करता है, जिससे जीवन-यज्ञ के सम्पूर्ण कार्य विधिवत् पूर्ण होते हैं, वह हमारा मन शुभ और कल्याणकारी विचारों से युक्त हो ।

**यस्मिन्नृचः साम यजूँ षि यस्मिन्प्रतिष्ठुता रथना भाविवारा : ।**
**यस्मिश्चित्त ँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः सिवसंकल्पमस्तु ॥**
**यजुर्वेद ३४ ।५**

हे मनुष्यों ! तुम्हारा मन स्वच्छ और पूर्ण स्वस्थ हो । तुम्हारा अन्तःकरण सद्विचारों, धर्म और सदाचारण से सदा पवित्र बना रहे ताकि ब्रह्म विद्या और व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध कर सको ।

**अपेहि मन सस्पतेऽपक्राम परश्चर ।**
**परो निर्ऋत्याआ चक्ष्वा जीवतो मनः ।**
**ऋगवेद १०।६४।१**

अर्थात् मैं अपने इस बहुमूल्य मन को सदैव कुविचारों ( चिन्ता, भ्रान्ति, निराशा, रोग, शोर, व्याधि, क्रोध, काम, ईर्ष्याद्वेष, शोषण आदि) से सदैव दूर रखूँगा। इन कुविचारों को अपने मस्तिष्क में स्थान देकर मैं अपने जीवन और भविष्य का विनाश नहीं करूँगा। मेरे मन की शक्ति और मेरे विचारों की सामर्थ्य अपार है। मैं गलत विचारों में फँसकर अपनी मानसिक शक्ति का अपव्यय न करूँगा।

उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि मानव जीवन के नव निर्माण और सही दिशाओं में विकास करने के हेतु विचार से अधिक प्रचण्ड क्रियाशील और सूक्ष्म शक्ति ब्रह्माण्ड में दूसरी नहीं है। जो अपने मस्तिष्क का सही उपयोग नहीं जानता, वह मूर्ख अपने जीवन से पूरा लाभ नहीं उठा रहा है। जो नीच विचारों में लीन है, वह जानबूझ कर अपने स्वयं के बनाये हुए नर्क में पड़ा-पड़ा भीषण यन्त्रणाएँ सह रहा है। वह काल्पनिक विघ्न बाधाओं के कंकड़-कांटों में फंसा जीवन नष्ट कर रहा है। इस सृष्टि में सर्वत्र न दीखने वाला ईश्वर व्याप्त है जिसमें ध्वनि और प्रकाश की सूक्ष्म लहरें सदा तरंगित होती रहती हैं। वातावरण के एक सूक्ष्म कण से दूसरे कण में ये तरंगे एक-दूसरे को प्रभावित करती रहती हैं। प्रत्येक कण एक-दूसरे कण से संयुक्त है। वातावरण इन्हीं कणों से मिलकर बना है। इस वातावरण में हर एक तरह की तरंगे आन्दोलित हो रही हैं। वे तरंगे प्रकृति की हर दिशा में फैली हुई हैं। इसी प्रकार हमारे विचारों की सूक्ष्म अलक्षित तरंगें भी सर्वत्र फैलती हैं। आसपास के वातावरण को आन्दोलित करती हैं। एक मानव मस्तिष्क से छूटकर (Transmit) यह समाज के अन्य मस्तिष्कों में पहुँचती हैं और नई दिशाओं में व्यक्तियों को चलाती हैं। भौतिकशास्त्र में वर्णित प्रकाश व ध्वनि की तरंगों की भाँति ये विचार तरंगें समाज के मनुष्यों के सोचने समझने के तरीकों को प्रभावित करती हैं। नये साँचे में बदलती हैं। जीवन धारा को प्रवाहित होने के लिए नई दिशाएँ देते हैं। ये सूक्ष्म विचार-तरंगें जनता के मस्तिष्कों के मध्य से होती हुई बहती

रहती हैं और जनमानस का निर्माण करती हैं। किसी देश के समाज का जीवन-स्तर वहाँ के वातावरण में सर्वव्यापी विचार तरंगों के अनुरूप ही बना होता है। देश का समग्र जीवन वहाँ के नागरिकों के आन्तरिक विचारों के अनुसार ही प्रकट होता है। जैसे मन, वैसे विचार तथा तदनुकूल सामाजिक-जीवन का निर्माण, जैसा अन्तर वैसा ही वाह्य रूप—यह मनोविज्ञान का शाश्वत नियम चला आ रहा है। विचार तरंगों से ही व्यक्ति और समाज का आन्तरिक और वाह्य जीवन आन्दोलित होता रहता है। जैसे खाद और पानी से पौधा बढ़ता है, वैसे ही देशकाल और परिस्थिति के अनुकूल विचार सामाजिक जीवन को बदलते रहते हैं। किसी जाति का विकास और परिपक्वता उस जाति में अपनाए हुए पुराने विचारों, जो उसकी परम्पराएँ बनाते हैं, पर ही निर्भर है। अतः मन को स्वच्छ रखना, उससे स्वस्थ विचार उत्पन्न करना, उर्वर वातावरण की सृष्टि करना, अतीव आवश्यक है। ईर्ष्या, द्वेष, घ्रणा, वासना आदि के कलुषित विचारों से मन की रक्षा करना जरूरी है। धन्य वही व्यक्ति है जो अपने बौद्धिक-उद्यान में चुन-चुनकर उपयोगी विचार-रूपी सुरभित पुष्पों के पौधे बोता है और समस्त प्राणियों के लिए कल्याणकारी भावनाएँ वातावरण में आन्दोलित करता है। विचार ही जीवन और समाज के अभ्युत्थान की आधारशिला है। विचार एटम की प्रचण्ड शक्ति रखता है। उसके सही विस्फोट की नितान्त आवश्यकता है।

जो व्यक्ति विचारशक्ति विस्फोट की क्रियाओं को सञ्चालित करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है, वह शक्ति प्रकार ही जाता है। जीवन के जिस क्षेत्र में भी वह प्रवेश करता है, सफलता और सिद्धि पग-पग पर उसका सहस्र कण्ठों से जयघोष करते हैं। ऐसे रहस्य प्ररूप ही सिद्ध, महा पुरुष, महा मानव की कोटि में गिने जाते हैं। टेलीपेथी विचार शक्ति के विकास की साधना है। इसका साधक प्रयत्न करते २ मानव जीवन की उच्चतम स्थिति तक पहुँच सकता है।

# ५-टेलीपेथी साधना में गुप्त मन का महत्वपूर्ण स्थान

क्या आप जानते हैं कि मनुष्य के स्वास्थ्य, यौवन और दीर्घ जीवन का आदि स्रोत कहाँ है ? उसके व्यक्तित्व का निर्माण कहां से होता है ? उन्नति की नई योजना का प्रारम्भ कहाँ से होना चाहिए ?

मनुष्य की समस्त शक्ति का उद्गम स्थान उसका गुप्त मन है। उसमें जो संकल्प; जो विचार और अच्छी बुरी भावनाएँ निवास करती हैं, उनके इर्द गिर्द ही व्यक्तित्व का निर्माण होता है। विचार एक बीज की तरह है। जैसे नन्हे बीज में से अंकुर फूटता है; फिर नन्हा-सा पौधा उत्पन्न होता है, पौधे से वृक्ष बनकर पृथ्वी में मजबूती से जड़ें जमा देता है, वैसे ही एक शुभ संकल्प या उत्तम विचार मनुष्य के गुप्त मन में प्रविष्ट होकर नई भाव-सृष्टि का निर्माण करता है। उन्नति की नई योजना का प्रारंभ इसी गुप्त शक्ति-केन्द्र से होना चाहिए।

मनुष्य का गुप्त-मन प्रचण्ड शक्ति वाला डाइनमो है। यही मनुष्य का समग्र जीवन चुपचाप संचालित किया करता है। जो विचार या अक्षर एकबार इस मन में दृढ़ता से जमा दिये जाते हैं, वे हमारे सारे जीवन पर छा जाते हैं, क्रियाओं को परिचालित करते हैं। मुख, कंठ और तालु में छिपी हुई अनेक ग्रन्थियों को प्रभावित करते हैं। हिन्दू शास्त्र में मन्त्रों के रूप में विचार शक्ति को ग्रहण करने का मनोवैज्ञानिक प्रयत्न किया गया है और वह बहुत सफल रहा है। हमारे पूर्वज अति प्राचीन काल से नाना मन्त्रों के जाप की सिफारिश करते आये हैं। वेदों, पुराणों, धर्मग्रन्थों में सैकड़ों उपयोगी उत्तमोत्तम मन्त्र, स्वर्ण-सूत्र, उक्तियाँ बिखरी पड़ी हैं, जिनके जाप द्वारा आत्म कल्याण और परमार्थ के कार्य होते हैं। आज भी करोड़ों व्यक्ति नियमित रूप से उपयोगी मन्त्रों को जपते रहते हैं, परन्तु मन्त्र-विज्ञान का गुप्त रहस्य नहीं समझते।

पूरा फल भी नहीं पाते। इसलिए बार-बार मन्त्र को बदलते हैं और अन्त में निराश हो जाते हैं। मन्त्र को त्याग देते हैं और फिर मूर्खता-पूर्ण निन्दा में लग जाते हैं।

प्रत्येक भारतीय मन्त्र कुछ शुभ प्रचण्ड विचारों का संक्षिप्त रूप है। उसमें विद्वानों ने युग-युग का अनुभव निचोड़ दिया है। उस मन्त्र का पुनः-पुनः उच्चारण करने से सात्विक भाव स्वयं गुप्त मन में जमते हैं। पुराने कुसंस्कार नष्ट होते हैं। व्यक्तित्व का नव-निर्माण होता है। पाश्चात्य मनोविज्ञान इन्हें 'सजेशन' या प्रेरणात्मक सन्देश कहता है। इन संदेशों या विचारों को जितना ही गुप्त मन में धारण किया जाता है, उतना ही ये दिव्य शक्तियों की वृद्धि करने वाले होते हैं। ये जीवन-दात्री औषधियों की तरह उपयोगी रसायन हैं। भारतीय मन्त्र मनुष्य को अन्तःकरण की उच्चस्थिति में लाने के गुप्त मनोवैज्ञानिक प्रयोग हैं। सुख दुःख, उन्नति अवनति उत्पन्न करने वाली हमारी मन की शुभ अशुभ स्थिति है। शुभ और दृढ़ विचार मन में धारण करने से मन में अद्भुत सामर्थ्य प्रगट होती है। इसके लिए केवल मन को कुछ पवित्र मन्त्रों पर एकाग्र हो उनका उच्चारण करना पड़ता है। मनुष्य अपने अन्तःकरण में देर तक जिस प्रकार के विचारों को स्थान देता है, उसी प्रकार की मनःस्थिति बन जाती है। अन्तःकरण में उत्पादक शक्ति सम्पन्न, उत्कृष्ट विचारों को स्थान देने से गुप्त शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। मन्त्र शक्ति यह 'ससेशन' (संकेत) की ही गुप्त मनः शक्ति है।

उदाहरण स्वरूप हम गायत्री के मन्त्र को ही लेते हैं। जब आप 'ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्' मंत्र का उच्चारण करते हैं, तो "भगवान सविता (सूर्य) के तेज का हम ध्यान करते हैं कि वह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे।' मंत्र का पुनः-पुनः उच्चारण और उस पर मन को एकाग्र करने से ये शुभ विचार हमारे सम्पूर्ण शरीर में, मन में, प्राण और आत्मा में व्याप्त हो जाते हैं।

हमारी बुद्धि को सत् प्रेरणा मिलती है। इस मन्त्र में बुद्धि कई प्रकार की मानी गई है। अतः इस पर विचार करने से मनुष्य की भौतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी प्रकार की उन्नति होती है। इसी प्रकार एक और मन्त्र है—

**प्रब्रवाम शरदः शतम्। अदीनःस्याम शरद शतम्।**

"हम सौ वर्ष तक अधिकार पूर्ण वाणी से बोलते रहेंगे। सौ वर्ष तक दन्य रहित जीवन वितायेंगे।" इस यन्त्र पर विचार करने और उच्चारण करने से आयुवृद्धि होती है। ज्ञानेश्वर महाराज ने एक स्थान पर कहा है—

"दुर्जनों की बुद्धि का विपरीत स्वभाव दूर हो और सत्कर्म के प्रति उनके दिल में प्रीति बढ़े। सभी प्राणियों में एक दूसरे के प्रति हार्दिक प्रेम भाव और मित्रता पैदा हो।" इस संकल्प को मन में धारण करने से पारस्परिक प्रीति बढ़ती है। कल्याण की भावना दूर तक फैलती है।

अन्तःकरण में उत्तम-उत्तम भाव धारण करने चाहिये। अन्तःकरण में जो रहता है, वही वाह्य संसार में प्रगट होता है। अतः आनन्द, प्रेम, क्षमा, दया, उत्साह और उन्नति के शुभ भाव ही धारण करने चाहिए। जव तक पुष्प रूपी ये पवित्र भाव मन में नहीं जमते, मनुष्य तब तक अन्तःकरण की उच्च स्थिति का आनन्द नहीं ले सकता और न ही टेलीपिथी साधनों में आगे बढ़ सकता है।

---

# ६-टेलीपेथी साधना में मानसिक शक्तियों का विकास आवश्यक है।

योग शास्त्र का यह एक अखण्डनीय सिद्धान्त है कि ध्यान करने वाला जिसका ध्यान करता है, उसी के समान हो जाता है। ध्यान से

मानसिक शक्तियों की परिपुष्टि होती है। जिसका ध्यान किया जाय, उसका मनः चित्र इतना स्पष्ट हृदय-पटल पर अङ्कित किया जाना चाहिये; मानो वह चित्र बोलने ही वाला हो, जैसे बातें ही कर रहा हो। सद्‌गुरु की मूर्ति का ध्यान करने वाला ध्याता सद्‌गुरु की इतनी निखरी हुई मूर्ति हृदय चक्षु के सन्मुख लाता है कि जैसे महाप्रभु उससे वार्तालाप ही करते हों। ध्यान करने वाले को चाहिए कि जिसका वह ध्यान करता हो, उसका स्वरूप सर्वप्रथम अपनी बुद्धि में उतारने का प्रयत्न करे। शास्त्रों का ध्यान का अभ्यास करने और उससे अपनी बुद्धि को सूक्ष्म बनाने का तात्पर्य यही है। शास्त्राभ्यास से परमेश्वर के सम्बन्ध में वृत्ति आरूढ़ होती है, तदनुसार धारणा, ध्यान अथवा निदध्यासन होता जाता है।

जिस मानसिक शक्ति के विकास का हमने निश्चय किया है, उसके ऊँचे से ऊँचे स्वरूप की, जहाँ तक हमारी बुद्धि की पहुँच हो, वहाँ तक मूर्तिमयी कल्पना करनी चाहिये और उस उच्च कल्पना में समस्त मन की समस्त प्रवृत्तियों को आरूढ़ करना चाहिये। पूर्वोक्त क्रिया से कल्पना और अधिक स्पष्ट होने लगेगी और उसका उत्तम सामर्थ्य वाला स्वरूप भी साधक में प्रकट होने लगेगा। यह टेलीपेथी साधना में सहायक है।

---

# ७-टेलीपेथी साधना की सिद्धि के लिए विचार शक्ति को जाग्रत कीजिए।

प्रत्येक विचार कमल के वृक्ष के समान एक लम्बी जड़ रखता है। जिस प्रकार कमल-दल की जड़ें पानी की सतह के नीचे मिट्टी-कीचड़ में उगी रहती हैं; ऊपर केवल तनिक सा पुष्प मात्र दिखाई देता है, उसी प्रकार विचार रूपी पुष्प मनुष्य के गुप्त मन में जमी हुई संस्कार रूपी मिट्टी में जड़ पकड़े रहता है। जो मनोभाव मुँह पर आता है, वह अपने भीतर तदनुरूप विचार रखता है। यह विचार संस्कार के साथ जुड़ा रहता

है। देर तक मस्तिष्क की चेतना पर रहकर कोई विचार संस्कार का रूप धारण कर सकता है, या संस्कार अपने जैसे विचार को जन्म दे सकता है।

आपके विचार का एक गुण यह है कि उसके साथ जितनी भावात्मक अनुभूति होती है, वह उतना ही गहरा प्रभाव आप पर छोड़ता है। भाव विचारों को शक्तिवान् बनाने वाला तत्व है। यदि हम किसी विचार के साथ किसी भाव को संयुक्त करलें, तो विचार अधिक स्थायी हो जाता है। उसका संस्कार भी मजबूत बनता है। यदि किसी विषय या व्यक्ति या घटना के सम्बन्ध में मनुष्य की मधुर स्मृति होती है—अर्थात् भावात्मक अनुभूति आनन्दमय होती है, तो उसका उतना ही गहरा प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। प्रत्येक शुभ विचार व्यक्तित्व को खोलने वाला है, उसका सही दिशा में विकास करने वाला है। अच्छा विचार मस्तिष्क की चेतना पर रखने से अवचेतन मन का भी निर्माण करता है। यह अवचेतन मन शक्ति का भण्डार है। आपके व्यक्तित्व का निर्माण करने वाला गुप्त केन्द्र है। यह शक्तिशाली ढङ्ग से जिन विचारों को प्रतिपादित करता है, वे ही विचार, भावनाएँ, सङ्कल्प, मान्यताएँ, मन के द्वारा हमारे व्यक्तित्व का अङ्ग बन जाती हैं।

मान लीजिये आप उत्तम स्वास्थ्य का दृढ़ विचार और चिन्तन स्थायी रूप से टिकाने के लिए अपने गुप्त मन को देते हैं। आप उत्तम स्वास्थ्य के विषय में, जो भी भव्य-भव्य मानसिक चित्र हों, उन्हें ध्यान शक्ति से खींचना प्रारम्भ कर दीजिये। एक सर्वोत्तम स्वास्थ्य वाले, ऐसे पुरुषार्थी दीप्तिवान स्वस्थ मनुष्य का मानस-चित्र कल्पना में बनाइये जिसमें यौवन पुरुषार्थ और सौन्दर्य कूट-कूट कर भरा हो, जिसके अङ्ग प्रत्यङ्ग भरे-पूरे हों, पूर्ण विकसित हों। मुख पर प्रसन्नता थिरक रही हो। इस मानस-चित्र के साथ धीरे-धीरे मन ही मन कहिये, "मैं सदा पूर्ण स्वास्थ्य का आनन्द लेता हूँ। मेरे सब अंग हर प्रकार विकसित हैं। पूर्ण रूप से पुष्ट हो रहे हैं। मैं उत्तम पाचन का आनन्द लूट रहा हूँ। मैं जो

भी भोजन करता हूँ, वह उचित रीति से मुझे पच जाता है और रक्त, माँस, मज्जा, वीर्य इत्यादि तत्वों की वृद्धि करता है। मैं कभी बीमार नहीं पड़ता। ईश्वर ने मुझे पूर्ण स्वस्थ बनाया है। मेरा सब शारीरिक संस्थान अपना कार्य उचित रीति से सम्पन्न करता है। मै खूब खुल कर हँसता हूँ और उस हँसी से मुझे यौगन, ताजगी और उत्तम मानसिक आह्लाद मिलता है। मेरा व्यक्तित्व उत्तम स्वास्थ्य के कारण निरन्तर आकर्षक बनता जा रहा है।' इस प्रकार के उत्तम स्वास्थ्यकारी विचारों को मन में प्रचुरता से रखिये। फिर इनकी रचनात्मक प्रक्रिया का असर अपने स्वास्थ्य और जीवन पर देखिये। आप पायेगे कि इन शुभ विचारों की शक्ति धीरे-धीरे आपके स्वास्थ्य के निर्माण कार्य में जुट जायगी। देर तक मस्तिष्क में रहने से ये विचार अपना संस्कार आपके गुप्त मन पर छोड़ जायेंगे।

**मानव-चित्रों का स्थायी प्रभाव**—आप किसी विचार को लेकर उसके अनुकूल जै‌ मानस चित्र बनायेंगे, वैसा ही रूप आपके शरीर से स्पष्ट होकर रहेगा। संसार में शक्तियाँ बहुत-सी हैं पर यह विचार-शक्ति सर्वोत्कृष्ट है।

अब आप एक दूसरा विचार लीजिये 'आत्म-विश्वास!' इस विचार को स्पष्ट कहते हुए मानसिक चित्र बनाइये। एक ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ बलवान् व्यक्ति को मानस नेत्रों से देखिये, जो प्रत्येक कार्य स्वयं अपने पुरुषार्थ और स्वावलम्बन से करता है। किसी बात के लिये अन्य पर निर्भर नहीं रहता। वह यश प्रतिष्ठा स्वयं अपने बाहुबल से प्राप्त करता है।

फिर मन को स्वावलम्बन के प्रचुर विचारों से भर लीजिये। मन ही मन कहिये 'मैं किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहता। स्वयं अपने परिश्रम और उद्योग से सारे काम पूरे करता हूँ। मैं कभी दूसरों का सहारा नहीं चाहता। मुझे मालुम है कि परमुखापेक्षी सदैव निर्बल रहता है। जिसे स्वयं अपनी गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों का ज्ञान हो गया है,

उसके लिये सफलता का द्वार खुला हुआ रहता है। स्वावलम्बी को किसी भी विषम परिस्थिति से हार नहीं माननी है। मैं अपना सब काम खुद करता हूँ, मेरी उन्नति का कारण मेरा स्वावलम्बन ही है। मैं अपने पैरों पर खड़ा हूँ। स्वयं अपनी उन्नति कर रहा हूँ। मेरे मन, शरीर और आत्मा में अपार शक्ति और बल भरे हुए हैं।

मैं आत्म-निर्भर रह कर सदैव अपने आत्म-सम्मान की रक्षा करता हूँ तथा निरन्तर प्रतिष्ठा और यश प्राप्त करता जा रहा हूँ।

आपका अवचेतन मन इन विचारों से अपूर्व शक्ति खींचेगा। इनमें रमण करने से इसी विचार के इर्द-गिर्द के और अनेक छोटे-बड़े सहायक विचार भी आपके मन में पैदा होंगे। आशा, उत्साह, उल्लास, उदारता आदि-आदि अनेक शुभ शक्तिशाली जीवन-पूर्ण उत्थान की भावनाएँ मन के कोने-कोने को भर देंगी। परिणाम यह होगा कि मानसिक और शारीरिक दोनों ही दृष्टियों से आप आरोग्य और पुरुषार्थ प्राप्त करेंगे। बार-बार इनमें विचरण करने से ये अपना स्थायी संस्कार मन पर छोड़ जायेंगे। मनोविज्ञान का यह नियम है कि प्रत्येक संसार मनुष्य के स्वभाव में क्रिया द्वारा प्रकाशित होता है। वैसी ही क्रियाओं द्वारा स्वावलम्बन के विचार आपके व्यक्तित्व के अंग बन जायेंगे। आपका अवचेतन मन इसी प्रकार दृढ़, आशाप्रद, रचनात्मक विचारों को ग्रहण करने को प्रस्तुत रहता है।

इसी प्रकार के और उपयोगी स्वास्थ्य, यौवन तथा दीर्घ जीवन का निर्माण करने वाले भव्य विचार शान्ति, प्रसन्नता, उदारता के हैं। इन सबके नाना मानस-चित्र बनाते रहना चाहिये। इन्हें व्यक्तित्व में उतारने और जड़ें जमाने के लिए यह जरूरी है कि इन सशक्त विचारों को अधिक-से-अधिक देर तक मन में ठहरने दिया जाय, इन पर मन को एकाग्र किया जाय, देर तक इन्हीं पर भिन्न-भिन्न रूपों में विचार किया जाय।

महात्माजनों का अनुभव है नित्य कुछ समय ध्यान में बिताना,

विचारों को स्पष्ट और स्वच्छ बनाता है । मानसिक शक्ति को एकत्र करने से गहराई में छिपे आपके विचार स्पष्ट होते जाते हैं और बड़े-बड़े कार्यों के विचार आपके सामने आते हैं । उन्हें पूर्ण करने के चित्र आपके मन में बनते हैं। जीवन को विशाल और मूल्यवान् बनाने के लिए इस तरह मस्तिष्क का प्रशिक्षण आवश्यक है । सहज ज्ञान, इच्छा और आकांक्षायें वे शिल्पी हैं, जो मनुष्य के चरित्र और आचरण को गढ़ते हैं ।

'शान्तिपूर्वक इस तरह के विचार केन्द्रीयकरण के लिए कोई समय निश्चित कीजिये । इस समय जीवन को उच्च बनाने और उच्च कार्यों को करने के सम्बन्ध में विचार कीजिये । प्रत्येक विचार, जिस पर आप मन को एकाग्र करते हैं और जिसे आप अपनाते हैं, आपकी सम्पूर्णता का अंग बनता है ।

जिस प्रकार उपयोगी, स्वस्थ और उत्पादक विचार से जीवन सुखी बनता है, उसी प्रकार क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ, कामुकता आदि विषैले विचारों को मन में स्थान देने से मानसिक रोग और जीवन में अशान्ति पैदा होती है । तरह-तरह के आवेश आते हैं । हम झगड़ालू बनते हैं । दुःखों की सृष्टि होती है । बुरी घटनायें घटती हैं । भाँति-भाँति के झगड़े, मारपीट, मुकदमे, चलते हैं । हत्यायें तक हो जाती हैं । दूसरों को हानि पहुँचाने के भाव पैदा होते हैं । मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं । अतः व्यर्थ के इन विध्वंसात्मक विचारों से मुक्त होने के लिए उनके स्थान पर सही सृजनात्मक विचारों को ही स्थान दीजिये । सद्गुणों के चिन्तन से शक्ति बढ़ती है और स्वस्थ विचारों की जागृति होती है । अतः यह आवश्यक है कि टेलीपेथी के साधक की सर्व प्रथम अपनी विचार शक्तियों को जागृत करना चाहिए ।

—x—

# ८. टेलीपेथी साधना का आवश्यक अङ्ग सद्‌विचारों का विकास

आपसे पूछा जाय कि 'क्या आप इस संसार और मानव-जीवन की सर्वश्रेष्ठ वस्तु प्राप्त करना चाहते हैं ?' आप पूछेंगे, 'बतलाइये वह क्या है ? हम और सब छोड़कर उसे अवश्य ही प्राप्त करना चाहेंगे।'

हमारे पास जो भी धन है, उसे देकर हम संसार की सबसे अच्छी वस्तु प्राप्त करना चाहेंगे । अपनी छोटी-बड़ी सब सम्पत्ति बेचकर हम विश्व की सर्वश्रेष्ठ वस्तु ही पाना चाहेंगे । हम साधारण से कभी संतुष्ट न होंगे।

हमारे पास दो हाथों की शक्ति है, यदि उनके द्वारा हम उस श्रेष्ठ वस्तु को प्राप्त कर सकते हैं, तो इसमें कोई कमी नहीं रक्खेंगे । अपनी पूरी शारीरिक शक्ति और सामर्थ्य लगाकर उसके लिए प्रयत्न करेंगे ?

हमारे पास क्रियाशील मस्तिष्क है। उसकी सहायता से यदि हम विश्व की इस श्रेष्ठतम वस्तु को पा सकते हैं तो क्यों पीछे रहेंगे।

लेकिन निश्चय जानिये, वह बहुमूल्य वस्तु न धन से, न शारीरिक शक्ति से, न किसी बाहरी ताकत से ही जीती जा सकती है। ईश्वर की कितनी बड़ी कृपा है कि संसार की अन्य दुर्लभ वस्तुओं—जैसे जल, वायु इत्यादि की तरह वह भी हम सबके लिए सर्वसुलभ है। मानवीय पहुँच के भीतर है । केवल उसके लिए सच्ची चाह एवं सतत और निरन्तर अभ्यासमात्र की ही आवश्यकता है ।

संसार की सर्वश्रेष्ठ वस्तु बड़ी दिव्य और अदृश्य है । ईश्वर ने हम सभी को वह बहुमूल्य मशीन दी है, जिसके द्वारा यह वस्तु उत्पन्न की जा सकती है।

अथर्ववेद में इस महाशक्ति—इस सर्वश्रेष्ठ वस्तु का संकेत इन शब्दों में कर दिया गया है—

त्वं नो मेधे प्रथमा । ( अथर्व० ६ । १०८ । १ )

अर्थात् — "सद्‌विचार ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है ।" विचार उत्पन्न करने का यन्त्र हमारा अपना मस्तिष्क है । हमारा वह मस्तिष्क हमारी रुचि, सङ्कृति, मनोवृत्ति, बुद्धि और आचार-विचार के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के अच्छे-बुरे (जैसे हम चाहें विचार) पैदा करता है।

मस्तिष्क को सही दिशा में चलायें तो अच्छे स्वास्थ्य प्रदान करने वाले प्रेरक विचार पैदा होते हैं, किंतु यदि उसीको गलत दिशामें मोड़ दें तो उससे रोग, चिन्ता, उद्वेग और क्रोध इत्यादि मनोविकार उत्पन्न हो जायँगे ।

सद्‌विचार—आशा, उत्साह, पौरुष, धैर्य, त्याग, प्रेम, आनन्द और उन्नति के विचार एक महान् उत्पादक शक्ति हैं। जो विचार मनुष्य को नयी-नयी प्रेरणा, नयी दिशा, जिन्दगी की नयी आशा दे, उसे सही मार्ग में बढ़ाये, वही मानव की बहुमूल्य सम्पत्ति है ।

विचार-यन्त्र मनुष्य शरीर का सबसे कीमती भाग है । आप पागलखाने में जाकर देखिये । आपको भारी भरकम, मजबूत, खूबसूरत तरह-तरह के जवान मिलेंगे । उनका तन आपको खूब स्वस्थ दिखायी देगा । वे कुश्ती लड़ें, तो अच्छों-अच्छों को जमीनपर पटक मारें । पर स्वस्थ तनमें सदा स्वस्थ मन रहेगा ही, यह आवश्यक नहीं । उन पागलों को बाहर से देखकर नहीं कहा जा सकता कि वे वास्तव में पागल हैं या नहीं । पर तीखी दृष्टि से देखने और कुछ देर साथ रहने पर आप पायेंगे कि उनका मस्तिष्क ठीक स्वस्थ विचार पैदा नही कर रहा है । उनकी रुचि विकृत हो गयी है । वे समाज के लिये खतरनाक सिद्ध हो गये हैं । उनमें कुछ न-कुछ मानसिक विक्षेप अवश्य है । उनका मानसिक संतुलन गड़बड़ हो गया है । साधन और साध्य, उचित और अनुचित, जरूरी और बिना जरूरी; कौन कार्य पहले करें, कौन बाद में करें, इसका विवेक; कहाँ जोर डालें, कहाँ कम महत्त्व दें, इन सबमें सही संतुलन न होना ही मानसिक विकृति है । कभी भय, कभी उत्तेजना, कभी लोभ,

कभी अहंकार, क्रोध, चिन्ता इत्यादि किसी भी मनोविकार का आधिक्य मनमें एक प्रकार की गाँठ-सी उत्पन्न कर देता है। यही विचार-यन्त्र का गलत प्रयोग है। मनोविकारों के उच्छृङ्खल और अनियन्त्रित हो जाने से ही भाँति-भाँति के मन के रोग पैदा होते हैं।

मानस-रोग असंख्य हैं। बहुरूपी हैं। नाना स्तर के हैं। किसी को उग्र हैं, तो किसी में कुछ न्यून। कोई निराशा में रो रहा है, कोई काल्पनिक भय देखकर मरा जा रहा है। किसी को अपने मातहतों, परिवार के सदस्यों या देश के नेताओं पर क्रोध आ रहा है। कोई बार-बार अपने शरीर को धो-धोकर आन्तरिक एकत्रित गन्दगी से पीछा छुड़ाने जा रहा है। किसी की मानसिक विकृति ने उसमें विशेष प्रकार की शारीरिक अङ्गभंगिमा पैदा कर दी है। कुछ व्यक्ति बार-बार रूमाल से अपना मुँह पोंछते हैं, कुछ गुप्तअङ्ग को खुजलाते हैं, नाक में हाथ डालते हैं; कुछ बनावश्रृङ्गार टोपी को खास तरीके से सजाते हैं, शीशे के आगे घंटों खड़े रहकर अपना रूप निहारते हैं, छैल-छबीले बने रहते हैं, उचक-उचक कर औरतों को देखते हैं। यह सब मन में वर्षों से इकट्ठे, बचपन से चले आते कुविचारोंका विष है। ऐसे असंख्य मानस रोगी आपको दैनिक जीवन में मिल जायँगे। ये विचार-यन्त्र अर्थात् अपने मस्तिष्क के गलत उपयोग के दुष्परिणाम हैं। गन्दे विश्वास, वासनाएँ चिन्ताएँ अन्तर्मन में जमकर मानस-रोग उत्पन्न करते हैं।

विचार-यन्त्र को आन्तरिक संघर्षों के थपेड़ों से बचाने की अतीव आवश्यकता है। मन में विकार अधिक दिनों तक ठहराकर हम जीवन भर के लिये मनोरोगों को न्योता देते हैं। मनका गलत उपयोग आजन्म कष्टों में फँसाने वाला होता है।

ऐसे व्यक्ति भाग्यशाली हैं जो विचार-यन्त्र को सही दिशाओं में चलाकर जीवन को सत् प्रेरणाओं, उत्तम योजनाओं और स्वास्थ्य से भर लेते हैं तथा किसी प्रकार की दूषित भ्रान्तियों या अंधविश्वासों में नहीं फँसते।

राक्षस कहीं और नहीं इस दुनिया में ही होते हैं। जो व्यक्ति मानसिक गन्दगी से भरा हुआ है और उसी को दैनिक जीवन में उभार रहा है, वह राक्षस ही है—चाहे उसका शरीर मनुष्य का ही क्यों न हो। विचार-यन्त्र को उलटी दिशा में घुमा देने से मनुष्य की भ्रांतियाँ, गलत मान्यताएँ और अन्तर्मन की जटिल ग्रन्थियाँ उभर उठती हैं। उसका राक्षसी स्वरूप ऊपर आ जाता है। आज हमारे समाज में तो अधिकांश व्यक्ति भ्रमित, चिन्तित और उद्विग्न हैं, नाना प्रकार की मानसिक परेशानियों से आक्रान्त रहते हैं, झाड़-फूँस जादू-टोने, जन्तर-मन्तर कराया करते हैं, उससे प्रत्यक्ष सिद्ध होता है कि वे अपने मस्तिष्क को राक्षसी दिशा में विकसित कर रहे हैं। जिस यन्त्र से वे देवत्व को जाग्रत् कर सकते हैं, उसीको गलत दिशा में घुमाकर अपने निन्द्य घृणित स्वरूप को जगाकर नरक में पड़े हुए हैं।

सही रूप में प्रयुक्त मस्तिष्क का फल सद्‌विचार है। गलत रुप में प्रयुक्त मस्तिष्क का कुफल विषैले विचार और कुकल्पनाएँ हैं। हमारे किसी भय को प्रत्यक्ष देखना, अपना तिरस्कार करना, जरा-सी असफलता से निराश और हतोत्साह हो जाना, झींकना, उत्तेजित हो उठना, छोटी-सी बात पर बिगड़ उठना, भावना में बहुत अधिक बह जाना, आवेश में आकर जली-कटी सुनाने लगना विचार-शक्ति का दुरुपयोग है जो हर प्रकार से घातक और त्याज्य है। मनोविकार प्रत्यक्ष नरक-तुल्य हैं। कुविचार मनुष्य को जीते-जी नरक की अग्नि में ढकेल देते हैं। वह सारे दिन अंदर-ही-अंदर जला करता है। कुविचारी सबको अपना शत्रु मान बैठता है, या अपने को सबसे कमजोर मानकर दुबका, सकुचाया-शर्माया रहता है। अपने लिये सोच विचार कर दुःख में डूबा रहता है। रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि, कटुता, ग्लानि, निर्बलता, शक्तिहीनता के विचार मनुष्य के भारी शत्रु हैं। सही दिशा में चलने वाला मस्तिष्क मनुष्य का प्रेरक है, गलत दिशा में चलने वाला सबसे बड़ा शत्रु !

संसार के मनुष्यो ! आपका मस्तिष्क ईश्वर की बड़ी देन है। वह

आपको सही दिशा में उत्पादन-सृजनात्मक भव्य विचार उत्पन्न करने के लिये दिया गया है। अपने आपको अन्तर्द्वन्द्वों, द्विविधापूर्ण परिस्थितियों, संदेहों तथा व्यर्थ के वितर्कों में मत डालिये। आपके मस्तिष्क से स्वस्थ और आशावादी विचार ही उत्पन्न होने चाहिये। प्रत्येक विचार से आत्मविश्वास पैदा होना चाहिये।

यहाँ हम कुछ प्रेरक विचार-बीज दे रहे हैं। ये आपके विचार-यन्त्र को सही दिशाओं में घुमाने की रीतियाँ हैं। जैसे रम्य वाटिका में हम बीज बोते हैं और भाँति-भाँति के वृक्ष और पुष्प पैदा होते हैं, वैसे ही इन प्रेरक विचारों पर मन को दृढ़तापूर्वक एकाग्र करने से विचार-यन्त्र उन्हीं दिशाओं में चलता है। बाइबिल में लिखा है, 'माँगो और तुम्हें मिलेगा। खटखटाओ और द्वार तुम्हारे लिये खुल जायेंगे। तलाश करो और तुम पा लोगे।' ये सब वाक्य हमारे अन्तर में बैठी हुई उस प्रचण्ड देवी शक्ति के सूचक हैं, जिसे अन्तरात्मा कहते हैं और जो हमें सदा ऊँचा उठाती है और आगे बढ़ाती है। उसे ही जाग्रत करने का प्रयत्न प्रारम्भ कीजिये।

**कुछ दिव्य प्रेरक विचार-बीज**—मन में कहिये, "मैं सदा आशा, विश्वास, उत्साह और स्थिरबुद्धि रखता हूँ। मैं अपनी उन्नति की आशा, अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक शक्तियों के प्रति पूर्ण विश्वास और अपने लक्ष्य के प्रति उत्साह की पूँजी लेकर जीवन में प्रविष्ट हुआ हूँ। अपने उद्देश्य में मेरी बुद्धि पूर्ण-रूप से स्थिर है।"

जिसका अपनी शक्तियों में विश्वास होता है, पृथ्वी पर उसके लिये कौन-सी वस्तु साध्य नहीं हैं? आत्मा ही सब शक्तियों और उच्चतम गुणों का अपने-आप में एक उत्पत्ति-स्थल हैं। "मैं अपनी आत्मा को अपना दिव्यरूप समझता हूँ। मुझ में ईश्वर मेरे आत्मा को धारणकर विराजमान हैं। मेरे मन, वचन, कर्मों के माध्यम से ईश्वर ही प्रकट हो रहे हैं।"

जिसका आत्मा में विश्वास नहीं होता, जो उसकी आज्ञा को

नहीं सुनता, उसका चित्त सदा संशय से उद्भ्रान्त बना रहता है और वह सर्वत्र भ्रान्ति-ही-भ्रान्ति को पाता है। मैं यह जानकर सदा सही दिशा में ही चलता हूँ। स्वस्थ और उत्तम विचार ही मन में रखता हूँ। "विद्याधरनीतिरत्नम्" के लेखक का कथन है—

**यस्य तस्मिन्न विश्वासस्तदाज्ञां न श्रृणोति यः।**
**संशयोद्भ्रान्तचित्तः स भ्रान्तिमेवाधिगच्छति॥**

अर्थात् "थककर भी यदि कोई अपने साहस और उत्साह को न छोड़े, तो दुर्गम अरण्य में भ्रान्त होकर भी वह अपने मार्ग को अवश्यमेव पा जाता है।"

मैं कठिन स्थिति में भी अपने साहस और उत्साह को सम्हाले रहता हूँ। अतः मैं अपने सही मार्ग पर चलता रहूँगा।

**अनन्ते के वयं क्षुद्रा नवं चिन्त्यं कदाचन।**
**कणस्य पर्वतस्यापि स्थितिस्तस्मिन् यतः समा॥**

अर्थात् "इस अनन्त ब्रह्माण्ड में हम क्षुद्रोंकी क्या पूछ है—ऐसा मैं कभी नहीं विचारता हूँ। विश्व में कण और पवत दोनों की एक समान स्थिति है। इन दोनों को विकास का समान अवसर मिलता है। मैं चाहे कण हूँ तो भी विकसित हो सकता हूँ। मुझे कभी भी किसी भी दशा में निराश होने की आवश्यकता नहीं है।" बूंद-बूंद से सागर बनता है। इसी नियम के अनुसार शक्तिका कण-कण एकत्रित कर मैं महानता की ओर बढ़ रहा हूँ।

निर्धन और निर्बल होकर भी मानव सदा ही महान् विभूतयों से भरा हुआ है। मानव को देवता बनना चाहिये। महानता प्राप्त करना उसकी अन्तिम गति है। मैंने अपने इस जीवन में महानता की सिद्धि को ही अपना लक्ष्य चुना है।

**किं धनं किं बलं लोके का वा राजादिसत्क्रिया।**
**नैतिकं बलमाधेयं यद्धि सर्वार्थसाधकम्॥**

"धन क्या, बल क्या अथवा राजाओं से प्राप्त सत्कार भी कौन

सी विशेषता रखता है ? ये कुछ नहीं। मैं सदा-सर्वदा नैतिक बल को ही धारण करता हूँ, जो कि समस्त अर्थों को सिद्ध करने वाला है।"

हीनोऽहं हन्त दीनोऽहं व्यामोहं त्यज सत्वरम्।
नाकाशो रजसाऽऽक्रान्तश्चिरं म्लानो हि तिष्ठति ॥

"मैं हीन हूँ, मैं दीन हूँ—इस व्यामोह को सदाके लिये मैंने त्याग दिया है। आकाश चिरकाल तक केवल धूल, मिट्टी और तूफान से भरा नहीं रह सकता। अन्त में उसे अवश्य ही स्वच्छता प्राप्त होगी।" धूल इत्यादि तो क्षणिक हैं। इसी प्रकार मेरी सारी परेशानियाँ क्षणिक हैं। कल को अवश्य दूर हो जायेंगी। वे अल्पकालिक हैं। अब उनका अन्त निकट आ गया है। अब मैं व्यर्थ न घबराता हूँ, न अशान्त ही होता हूँ।

मैं दीन नहीं हूँ। मैं निर्बल नहीं हूँ। मैं किसी भी प्रकार से हीन या निर्बल नहीं हूँ। मैं तो सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप परम शक्तिशाली आत्मा हूँ। मुझ में असंख्य गुप्त आत्म-शक्तियाँ छिपी पड़ी हैं। आत्म-विश्वास की कुंजी से मैं उन्हें खोल रहा हूँ।

प्रसुप्तं नाम यत् किंचिज्ज्योतिस्तेऽन्तर्विराजते।
कुरु यत्नेन तद् बुद्धं लोको बुद्धो भविष्यति ॥

"जो दिव्य ज्योति मुझ में सुप्त हो रही है, उसको मैं यत्नपूर्वक प्रबुद्ध कर रहा हूँ। उस ज्योति के प्रबुद्ध होने पर समस्त संसार ही प्रबुद्ध हो जायगा।"

हमारा यह कर्तव्य है कि हम सदा इस भावना को दृढ़ रक्खें कि "हम सब स्थानों में, सदा सब कुछ करने में निश्चितरूप से पूर्ण समर्थ हैं।" इस बात को दृढ़ करने से हमारी गुप्त शक्तियाँ विकसित होती हैं। अपनी शक्तियों के प्रति मनुष्य का जितना दृढ़ विश्वास पकता जाता है, वह ज्यों-ज्यों जीवन की छोटी सफलताएँ प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों उसमें महानता के गुणों का विकास होता जाता है।

सद्विचार (अर्थात् अपनी बुद्धि, प्रतिभा और शक्तियों के प्रति अखण्ड विश्वास) ही मनुष्य की उन्नति का मूल-मन्त्र और संसार की

सर्वश्रेष्ठ कीमती वस्तु है। उसे धारण करने से मनुष्य सफलताओं की ओर स्वतः अग्रसर होने लगता है।

जिसने अपने विचार-यन्त्रको सही दिशा में चलाना सीख लिया है, उसकी उन्नति में देर नहीं समझनी चाहिये। ऐसा साधक ही टेलीपेथी साधना करने का अधिकारी है।

# ९—टेलीपेथी से गुप्त शक्तियों का जागरण होता है

एक व्यक्ति था, जो अपनी पत्नी द्वारा "महामूर्ख" कहा गया, बुरी तरह तिरस्कृत और लांछित हुआ। बात उसके गुप्त मन में लग गई। उसे बड़ा बुरा लगा। उसने पत्नी को छोड़ा और बड़ी आयु में विद्या-अध्ययन में लग गया। दीर्घकाल के अभ्यास और अटल सङ्कल्प के बल से वह संस्कृत का महाकवि कालीदास बना। समग्र भारत उसकी प्रतिभा और विद्या से चमत्कृत हो उठा। उसके गुप्त मन में काव्य शक्ति का बृहत् भण्डार छिपा हुआ था।

एक डाकू था, जिसकी जीविका का उपार्जन मुसाफिरों को लूटने और हत्याएँ करने से चलता था। एक दिन एक मुनि उसकी पकड़ में आ गए। उसने उन्हें भी मारना चाहा पर उन्होंने विनीत भाव से उससे कहा, "जिन व्यक्तियों के पालन के लिए तुम इतने व्यक्तियों का पाप अपने ऊपर ले रहे हो, क्या वे भी तुम्हारे इस पाप में हिस्सेदार बनेंगे? जाओ, और अपने परिवार वालों से पूछो।" डाकू चला गया। उसने यह बात पूछी। लेकिन उनका उत्तर सुनते ही उसका चेहरा उतर गया। उनका उत्तर था, "हम तुम्हारे आश्रित हैं। तुम्हारा कार्य हमारे लिये भोजन की व्यवस्था करना है। वह पाप से होती है, या पुण्य से इससे हमें क्या प्रयोजन? पाप तो तुम्हारे ऊपर रहेगा।" यही बात उसके मन में बैठ गई। उसे ज्ञान हुआ। वह बदल कर महर्षि वाल्मीकि

वन गया। उनकी गुप्त शक्तियाँ यकायक खुल गईं। उन्होंने संसार को अपनी बुद्धि से चमत्कृत कर दिया।

इसी प्रकार न जाने कितने महान् पुरुष हुए हैं, जिन्हें किसी मानसिक आघात या आकस्मिक झटके से अपने गुप्त मन में सोई पड़ी गुप्त शक्तियों का ज्ञान हुआ, उनके जीवन का पृष्ठ बदला और वे अपने गुणों से संसार को चमत्कृत, विस्मित कर गये।

आप में भी असाधारण गुप्त शक्तियों—मन, शरीर, आत्मा की असंख्य शक्तियों का भंडार छिपा हुआ है। खेद है कि आप अपने को साधारण प्राणी मानते हैं। आप कभी भी ऐसा विचार नहीं करते कि हम में दिव्य और आश्चर्यमयी शक्तियाँ छिपी पड़ी होंगी। सच मानिये, आप शक्तियों के वृहत् भंडार हैं।

घोड़ों को यदि अपनी शारीरिक शक्ति का ज्ञान हो जाय, तो वे हमारे वाहन न रहें। हाथी अपनी शारीरिक ताकतों से विश्व को अपने वश में ही कर लें। शेर, चीता, रीछ, भैंसें, बैल, खच्चर इत्यादि पशुओं को अपनी शक्तियों का ज्ञान हो जाय, तो वे हम पर राज्य ही करने लगें।

ये पशु हमारे लिये इतनी तेजी से बड़े-बड़े बोझ ढोते हैं, भारी काम करते हैं, जो मनुष्य नहीं कर सकता। यदि वे सब अपनी शक्तियों को मनुष्य के विरुद्ध लगायें तो कदाचित वे हमें अपना वाहन बना सकते हैं। हमारे ऊपर सवारी कर सकते हैं।

जिस प्रकार ऐसे उपयोगी प्राणियों को अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं है, ऐसे ही आपको भी अपनी शक्तियों का पता नहीं है। हम अशक्त हो अन्धेरे में भटक रहे हैं। हम रास्ता ढूँढ़ रहे हैं और पंगु बने हुए हैं।

यदि हमें अपनी शक्तियों का ज्ञान हो जाय, तो हमें दुख, भय, चिन्ता, आपत्ति, शोक, द्वेष आदि का बिलकुल भी भान न हो, ये दुष्ट मनोविकार हमारा कभी भी कुछ न बिगाड़ सकें। हमारे स्वास्थ्य, मन

और जीवन पर इनका कोई भी बुरा प्रभाव न हो। खेद है कि हम इन दुष्टों के आसानी से वश में आ जाते हैं और अपना सर्वनाश कर लेते हैं। हम अपना भाग्य बुरा समझ लेते हैं, संसार फीका-फीका मालूम होने लगता है। जीवन भार स्वरूप प्रतीत होता है।

खेद है कि कभी तो हम ईश्वर पर भरोसा करते हैं, कभी प्रारब्ध को मानने लगते हैं, फिर कभी "पुरुषार्थ, पुरुषार्थ" कह कर गला फाड़ने लगते हैं। हम कभी स्थिर नहीं रहते। हमारा मन सदैव इसी प्रकार डाँवाडोल रहता है। हम पूजा पाठ भी करते हैं, पर जब अल्पकालिक और अस्थिर मन से करने के कारण धन दौलत या सिद्धि प्राप्त नहीं होती, तो हमारा विश्वास सब पर से उठ जाता है। हम इन्हें ढोंग मानने लगते हैं।

वास्तविक कमजोरी यह है कि अभी हमें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है। हम दूसरों को धनवान और शानशौकत से रहते देख उन्हें सुखी समझते हैं, पर यदि हम उन्हें अन्दर से देखें तो हमारे विचार बदल जाँय।

आप पूछेंगे कि लोगों के पास बहुत-सा धन है; सुख है, इतना वैभव बड़प्पन और अधिकार है फिर दुःखी कैसे? उन पर ईश्वर की बड़ी कृपा है, पर हम पर प्रकोप या ईश्वर की अकृपा कैसे है? हमारे पास ऐश्वर्य के साधन नहीं हैं और उनके बिना हम दुःखी हैं। और उनके पास सब साधन हैं, इसलिए वे सुखी हैं।

परन्तु यह आपका केवल भ्रम है। ईश्वर का इसमें कोई पक्षपात नहीं है। ईश्वरीय शक्तियों, विपुल ताकतों, मानसिक शारीरिक, आत्मिक सम्पदाओं का जो अंश उनमें है, वही वास्तव में आप में भी मौजूद हैं। यह याद रखिए कि सतत परिश्रम और एक लक्ष्य सिद्धि से ही भाग्य बनता है। जनता की सतत इच्छा साधना से देश उठता है। इच्छा एक प्रबल शक्ति है, जो अपना मार्ग खोज ही

निकालती है । मूर्खों को प्रारब्ध एक बहाना मात्र है । वास्तव में प्रारब्ध या तकदीर कोई वस्तु नहीं है।

जहाँ कार्य कारण का अटूट सम्बन्ध है, वहाँ प्रारब्ध और तकदीर मानना मूर्खता के अतिरिक्त क्या है ? जिसे विचार करने का मार्ग मालुम नहीं है, जो प्रत्येक कार्य के पीछे काम करने वाले कारण को नहीं जानता है और जीवन के तूफानों से सदा डाँवाडोल रहता है, वही अपने कल्पित भूतप्रेतों, और बुरे ग्रहों का दास बना रहता है। अपने भाग्य का निर्माता स्वयं बनने के लिए टेलीपेथी एक सरल व सशक्त साधना है। जो व्यक्ति अपने विचारों को सञ्चालित करने की विद्या जानता है, यूं समझना चाहिए कि उसने सौभाग्यशाली पुरुषों को प्राप्त होने वाले श्रेष्ठतम कोशों को प्राप्त करने के मार्ग पर चल रहा है। वह मानसिक वृत्तियों को नियन्त्रण में रखता है । परिणामस्वरूप मन व शरीर को परम स्वस्थ रखता है। जिस व्यक्ति का गुप्त मन पर अधिकार कर लेता है, वही पूर्ण स्वस्थ रह सकता है।

—:o:—

## १०-आसुरी वृत्तियों से संरक्षित हुए विना टेलीपेथी में गति प्राप्त करना कठिन है।

कलुषित विचार ही दुःख और निराशा का प्रधान कारण है। यदि किसी प्रकार का दुष्ट विचार मन में जम जाता है तो वह अपने आस-पास दूपित वातावरण ही बनाता है और मन के स्वास्थ्य को नष्ट करता है।

जब आपके शरीर में एक छोटी-सी फुन्सी उमड़ती है, तब शरीर का वह अंग अकड़ा-सा रहता है, छूने से दुखता है, चारों ओर की त्वचा लाल हो जाती है, दो-चार दिन बाद उसमें पीव भर जाता है और वह एक बड़े फोड़े का रूप धारण कर लेती है । उसके चारों

ओर का भाग सूज उठता है। डाक्टर जब उस फोड़े में चीरा लगाता है, तब गहराई तक से दबा-दबा कर पीव और दूषित रक्त निकाल देता है। इसी प्रकार किसी भी प्रकार का दूषित विचार अपने आस-पास कष्ट, पीड़ा और वेदना का वातावरण बनाया करता है। यों तो कलुषित विचार अनेक प्रकार के हो सकते हैं, किन्तु भगवान बुद्ध ने इन्हें तीन बड़े भागों में विभाजित किया है—

१. काम वितर्क २. अमैत्री-वितर्क ३. व्यापाद-वितर्क।

**काम-वितर्क**—इस वर्ग में भगवान बुद्ध ने मनुष्य के विषय-वासना सम्बन्धी सब प्रकार के कष्टों का समावेश किया है। काम वासना के नाना रूप, नाना भाव-विभाव, लक्षण और दुःखद वितर्क हैं। किसी भी रूप में काम-चिन्तन आकर मन की शान्ति और सन्तुलन को विचलित कर देता है। सम्भव है हम शरीर से काम-तृप्ति न करें, पर मन और वचन से काम-वितर्क के शिकार हो सकते हैं। मन में काम-वासना सम्बन्धी बात सोचने से, स्त्रियों के हाव भाव, नखशिख या तत्सम्बन्धी अन्य काम-वासनात्मक कुकल्पनाएँ लाने से मानसिक पाप हो जाता है। कुछ व्यक्ति मुँह से वासना-मिश्रित कामोत्तेजक गालियाँ उच्चारण किया करते हैं। वे समझते हैं कि कायिक पाप ही असली पाप है। मन में सोचने या मुँह से गंदी बातें या अपशब्द कहने से कोई पाप नहीं होता। यह नितान्त भ्रान्तिमूलक धारणा है। शरीर चाहे बाह्य रूप से काम तृप्ति न करे, पर उच्चारण की जड़ गुप्त मन में जमी रहती है। वह चुपचाप वहीं विकसित होती रहती है। मन सदा अभद्र कामवासनाओं से परिपूर्ण रहता है।

कामवितर्क में विषय-वासना सम्बन्धी कुकल्पनाओं के अतिरिक्त अनेक और इच्छाएँ आती हैं। ये अपनी परिस्थिति, पेशा, आय, समाज, परिवार, स्वार्थ-सम्बन्धी हो सकती हैं। प्रत्येक कामना पूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि आपके साधन सीमित हैं। कुछ इच्छाएँ और अभाव सदा ही अपूर्ण रहने वाले हैं। इन अपूर्ण इच्छाओं और अभावों की

अतृप्ति से दुःख उत्पन्न होता है। मन नाना द्वन्द्वों से भरा रहता है। प्रत्येक द्वन्द्व दुखी बनाने वाला है।

अतः कम-से-कम कामनाएँ रखिये।

**योऽकामो निष्काम आप्तकाम आत्मकामो न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति।**

( बृह० उप० ४। ४। ६ )

अर्थात् जो व्यक्ति कामनाओं ( विशेषतः कामवासना-सम्बन्धी पापमूलक विचारों ) से रहित है, जो इन दुष्ट कामनाओं से बाहर निकल गया है, या जिसकी कामनाएँ नष्ट हो गयी हैं, या जिसको केवल आत्मा की ही कामना है, उसके प्राण नहीं निकलते हैं। वह ब्रह्म ही हुआ ब्रह्म को पहुँचता है।

काम-वितर्कों का स्वभाव यह है कि वे कामोपभोग से शान्त नहीं होते। जितना मनुष्य विषय-वासना की पूर्ति में लगता है, उतना ही वह अशान्त और दुखी रहता है। काम-तृप्ति पूरी तरह वृद्ध हो जाने तक भी नहीं होती। यह तो ऐसी अग्नि है जो सदा धधकती ही रहती है। काम का स्वभाव है कि चिन्तनमात्र से ही इसका अधिकाधिक विकास होता जाता है। कहा गया है—

**न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।**
**हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥**

अर्थात् "यह कामवासना उपभोग से कदापि शान्त नहीं होती। कामवासना की पूर्ति करके यह सोचना कि 'अब आगे और कामोपभोग की इच्छा उत्पन्न नहीं होगी'—ऐसा ही है जैसे कोई अग्नि में घी छोड़ता जाय और यह सोचता रहे कि इस प्रकार यह आग बुझ जायगी।"

काम का सदुपयोग हो सकता है। जिस प्रकार चतुर वैद्य विष को दवाई के काम में लेकर रोगी को स्वस्थ करता है, उसी प्रकार काम-वासना को भी शक्ति में बदला जा सकता है। सो कैसे ?

भगवान् श्रीकृष्ण ने इसका राजमार्ग बताया है। वे कहते हैं—

**धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभः ।**

( गीता )

अर्थात् "हे अर्जुन ! मैं प्राणियों में काम हूँ, पर मेरा काम धर्म से विरुद्ध नहीं चलता । संसारी पुरुषों का काम धर्मविरोधी होता है । धर्म से हट जाने के कारण वह दुःख का कारण बन जाता है। दूसरे शब्दों में इच्छाओं की धर्मानुकूल पूर्ति हो, तो काम-वासना भी उपयोगी हो सकती है । काम का प्रवाह उपयोगी और कल्याणकारी मार्गों की ओर खोल देना चाहिये । तुलसीदास ने काम-वासना का प्रवाह भक्ति-सम्बन्धी उत्कृष्ट कविता में खोल दिया; इसी प्रकार सूरदास ने काम-वासना को भगवान् के अर्पण कर वात्सल्य-रस-सम्बन्धी मधुर कृष्ण-काव्य लिखा । मीराबाई भी अपनी इच्छाओं को भक्ति-संगीत में प्रवाहित कर सदा-सर्वदा के लिये अमर बन गयी । आप चाहें तो काम के उदात्तीकरण के लिये समाज सेवा का कोई कार्य हाथ में ले सकते हैं, या अपने परिवार के सदस्यों को ही समुन्नत कर सकते हैं । पिछड़ी जातियों को उठाने का कार्य प्रारम्भ कर सकते हैं । बाल-प्रेम, कला-प्रेम, संगीत-प्रेम तथा अनेक लोकसेवा के कार्यों में पूर्ण तन्मयतापूर्वक संलग्न हो जाने से मनुष्य की कामवासना निम्न स्तरों से हटकर ऊँची रीतियों से प्रवाहित होने लगती है । ईश्वर का प्रेम तथा उच्चतम साहित्य की सृष्टि काम के उदात्तीकरण के उपाय हैं । एक-एक सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते अन्त में मनुष्य कामवासना के नीचे रूपों से बचकर उच्चतम अवस्था में पहुँच जाता है ।

जिस प्रकार पक जाने पर फल स्वयं वृक्ष की डाली से अलग हो जाता है, इसी प्रकार पकी हुई मानसिक अवस्था आ जाने पर मनुष्य के काम-वासना सम्बन्धी सभी वितर्क दूर होने लगते हैं । प्रश्न मानसिक और नैतिक विकास का है । जो व्यक्ति अपनी विवेक बुद्धि को जितना अधिक विकसित कर लेता है, वह काम-वासना सम्बन्धी कलुषित विचारों से उतना ही सुरक्षित रहता है । वासना को धर्म-बुद्धि से ऊँचा उठाना चाहिये । अपना दिन धार्मिक भावना से प्रारम्भ करना चाहिये तथा

निद्रा से पूर्व ईश्वरीय शक्तियों तथा अपने धार्मिक स्वरूप का चिन्तन करना चाहिये।

**अमैत्री-वितर्कः**—अमुक व्यक्ति हमारा शत्रु है। वह हमारा अहित करने पर तुला हुआ है। उससे हमारा निरन्तर अनिष्ट ही हो रहा है। हमें भी उसका विनाश करना चाहिये। यह अमैत्री या शत्रुभाव रखते रहने से मनुष्य अपने काल्पनिक जगत् में तनाव का शत्रुभाव उत्पन्न करता है। वह अपने आस-पास के व्यक्तियों में सर्वत्र शत्रुओं का ही दर्शन करता है। इससे मनुष्य के आन्तरिक जगत् में भयंकर संघर्ष सदा चलता रहता है। हमारे हिंसा, द्वेष, वैमनस्य और प्रतिकार के भाव दूसरे लोगों पर आरोपित होकर उन्हें शत्रु रूप में हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। हम इस अमैत्री भाव से प्रभावित होकर आस-पास के व्यक्तियों के दुर्गुण और निर्बलताओं का ही दर्शन करते हैं। उनके प्रति मन में घृणा रखते हैं। हमारे मन का द्वन्द्व निरन्तर बढ़ता ही जाता है। हम इस घृणाभाव के कारण दूसरों को हानि पहुँचाने की सोचते रहते हैं।

श्री जोशुआ लोथलीवमेन के शब्दों में, 'मनुष्य अपनी त्रुटियों और भावात्मक द्वन्द्वों को संसार पर आरोपित करता है और उनसे बदला लेने की चेष्टा करता है।'

अमैत्री के कारण यह मानसिक द्वन्द्वात्मक स्थिति चलती रहती है। ऐसा व्यक्ति मन में बड़ी बेचैनी का अनुभव करता है।

इससे मुक्त होने का क्या उपाय है ?

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अमैत्री का भाव मित्रता और प्रेम के अभ्यास और प्रयोग से दूर हो सकता है। हम अपना दृष्टिकोण बदलें। घृणाद्वेष के स्थान पर प्रेम और विश्वास आरोपित करें सबको अपना दोस्त और हितैषी समझें, मित्रवत् व्यवहार करें, तो अमैत्री की ग्रन्थि दूर हो सकती है।

'हमारा कोई शत्रु नहीं है। सभी हमारे प्रेमी हैं। सभी अपने

हितैषी हैं। सभी हमारे सहायक हैं। सभी हमारी सहायता कर रहे हैं। अपना प्रेम और विश्वास दे रहे हैं। सभी में हमारा तत्त्व बिखरा पड़ा है। यह मित्रता, प्रेम, सौहार्द का मंजुल और उदार वातावरण ही हमारे चारों ओर है।' इन विचारों में रहने का अभ्यास करना चाहिये। मन और शरीर को पूर्ण शिथिल कर लीजिये और सुखासन से बैठकर पूर्ण विश्वास से ऊपर लिखे भावों को दुहराइये। पुनः-पुनः दोहराने से ये विचार गुप्त मन में जम जायँगे और चरित्र-निर्माण में सहायक होंगे। भव्य विचारों के संकेत स्वयं भी बनाये जा सकते हैं।

मानसिक रोगियों को भव्य विचारों को गुप्त मन में जमाने का अभ्यास करना चाहिये। जो दुष्टभाव सताये, उसका विरोधी सात्त्विक विचार मन में दृढ़ता से स्थापित करना चाहिये। मन में प्रचुरता से सात्त्विक विचारों का प्रवाह बनाये रखने से गुप्त मन का नव-निर्माण होता है। शक्ति, साहस और शान्ति-प्राप्ति के लिये अभ्यास के साथ किसी महापुरुष की मूर्ति को जोड़ लीजिये। उदाहरण के लिए घबराहट को दूर करने के लिये मन में भगवान् बुद्ध की मूर्ति का ध्यान करना चाहिये। कमजोरी दूर करने के लिये शक्तिशाली विचारों के साथ हनूमान् या दुर्गा की मूर्ति मन में धारण करनी चाहिये। आपका जो प्रिय देवी या देवता हो, उसका स्वरूप मन में बैठाना चाहिये। सोने से पूर्व मैत्रीभाव का अभ्यास गुणकारी है, क्योंकि निद्रा में अव्यक्त ( अचेतन मस्तिष्क ) का नव-निर्माण हुआ करता है। थोड़े काल के अभ्यास से ही मानसिक तनाव दूर हो जाता है।

**व्यापाद वितर्कः**—इस श्रेणी में हम इन वितर्कों और कलुषित भावनाओं को रख सकते हैं, जो उपयोगी न होकर भी बार-बार मन में आते हैं और मन की शान्ति को भङ्ग करते हैं। एक व्यक्ति लिखते हैं कि अँधेरे में उनके मन में भूत-बाधा का भय आता है। उन्हें ऐसा प्रतीत होता है, जैसे भूत उनके जीवन का अन्त कर देंगे। एक व्यक्ति आत्म-हत्या की कुकल्पनाएँ किया करता है। एक सज्जन छींक से परेशान हो

उसे अपशकुन का सूचक मानते हैं। हमने एक ऐसी महिला देखी है, जो चोरी के भय से उद्विग्न रहती और रात में सोने से पूर्व सब किवाड़ों को ताला लगाती । कुछ व्यक्ति रेल में सफर करते हुए सदा यह डरते हैं कि टिकट न खो जाये, युवतियों को भय रहता है कि कहीं कोई अङ्ग खुला न रह जाय । कुछ लोग शौच के पश्चात् हाथ को बार-बार मिट्टी से मलते हैं, फिर भी उन्हें गंदगी के विचार सताते रहते हैं। कुछ अपने को रोगी ही मानते रहते हैं और सदा दवाइयाँ ही लिया करते हैं। इसी प्रकार लोगों की धारणाएँ और वहम अनेक प्रकार के होते हैं । नमक बिखर जाना, पलंग पर झाड़ू रखना, झाड़ू सीधी करके रखना, कातते-कातते तागा टूट जाना, खाट पर बैठकर टाँग हिलाना, कंधे मटकाना, बगल बजाना, सूर्य डूबे चूड़ी पहिनना, मकान बदलना, चूड़ी तोड़ना आदि वहम कलुषित और अभद्र विचारों से संयुक्त हैं। इनके साथ अनिष्ट जुड़ा हुआ है।

वास्तव में इन मन की शङ्काओं में कुछ भी वास्तविक तथ्य नहीं है। ये कलुषित विचार मन की शान्ति को भङ्ग करते रहते हैं। इनका आधार कुकल्पनाएँ ही हैं, जिनका आधार कुछ नहीं है। ये मन की अस्वस्थ दिशा की सूचक हैं। मन की शान्त और स्थिर अवस्था में व्यर्थ के विचार नहीं सताते।

शान्त और संतुलित रहिये और व्यर्थ की कुकल्पनाओं से अपने मन की रक्षा कीजिये। सद्भावना का अभ्यास प्रारम्भ कीजिये । मन को पवित्र बनाइये। जब मन पवित्र रहता है, तब दुर्भावनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

भगवान् बुद्ध ने मन के आरोग्य के लिये 'आनापानसति' के अभ्यास को आवश्यक बताया है। इसमें मानसिक और शारीरिक शैथिलीकरण करना चाहिये। शान्त अवस्था में भव्य विचारों को जमाने से कुतर्क दूर हो जाते हैं।

**"प्रधानमध्यात्मसुखसुखेभ्यः"** ( अश्वघोष )

सब सुखों में अध्यात्म विचार ही सुख के साधन हैं।

टेलीपेथी साधना में सफलता के लिए आसुरी शक्तियों से संरक्षण आवश्यक है।

---

# ११--टेलीपेथी का असाधारण यन्त्र—मस्तिष्क

जिस प्रकार वृक्ष की समस्त शक्तियाँ उसकी जड़ में हैं, इसी प्रकार मस्तिष्क ही मानव शरीर की जड़ है। मस्तिष्क ज्ञान का भण्डार, शक्तियों का स्त्रोत, तथा पंच इन्द्रियों का स्वामी है। कान सुनते हैं, नाक सूंघती है, जिह्वा चखती है, त्वचा को स्पर्श का ज्ञान होता है, नेत्र देखते हैं—ये समस्त शक्तियां मस्तिष्क में निवास करती हैं। मन की विभूतियों एवं अतुल सामर्थ्य का प्रदर्शन उत्तम मस्तिष्क द्वारा ही सम्भव है। मानसिक शक्तियों को भली भांति प्रकट करने के लिए तीन तत्वों की नितान्त आवश्यकता है—उत्तम मस्तिष्क, मानसिक शक्तियों की परिपुष्टि एवं उनको कार्य में लेने की रीतियां। क्रमशः हम तीनों पर विचार करेंगे।

विचार शक्ति को उत्पन्न करने वाला यन्त्र मस्तिष्क है। मस्तिष्क एक अति सूक्ष्म विचार ग्राहक एवं विचार सञ्चालक यन्त्र या डायनमो समझिये। विद्युत उत्पन्न करने वाले एक साधारण डायनमो की भांति मस्तिष्क विचार पैदा करता है। मस्तिष्क के विशेष-विशेष भाग विशेष-विशेष कार्य करते हैं। मस्तिष्क को निकम्मा छोड़ दिया जाय, तो फिर इसमें शनैः-शनैः व्यर्थ क्रियाएँ करने के अतिरिक्त अन्य किसी महत्त्वपूर्ण कार्य की क्षमता नहीं रह जाती। यहां तक कि यदि मस्तिष्क के विशेष भागों की ओर उचित ध्यान न दिया जाय, तो वे निर्बल और निकम्मे हो जाते हैं। मस्तिष्क के जिस भाग में जो शक्तियां निवास करती हैं, उस भाग में स्थित कोषों ( Cells ) की संख्या के परिणाम में वे शक्तियां कम या अधिक होती हैं। इन कोषों

की सूक्ष्मता वढ़ाने से मस्तिष्क की शक्ति बढ़ती है। ये कोष जितने ही सूक्ष्म होंगे, एक घन इंच में जितने ही वे अधिक आवेंगे, उतनी ही उच्च प्रकार की शक्तियां उनमें गर्भित होंगी और वह मस्तिष्क उतना ही उत्तम समझा जावेगा।

विचारों में प्रगाढ़ श्रद्धा का समावेश कर एकाग्र करने से हम मस्तिष्क के कोषों की सूक्ष्मता तथा संख्या में वृद्धि कर सकते हैं। समर्थ विचारक और तत्त्वज्ञ पुरुषों के मस्तिष्क में साधारण मनुष्यों की अपेक्षा ये कोष संख्या में वहुत अधिक होते हैं। ये तत्त्वज्ञ निरन्तर विचार में निमग्न रहते हैं, ध्यान करने से अलौकिक मानसिक शक्तियां प्रकट की जा सकती हैं और मनोबल से अनेक रोग दोष दूर किये जा सकते हैं।

एकाग्रता से कोषों में वृद्धि क्यों होती है? बात यह कि मन को शरीर के किसी भाग पर एकाग्रता पूर्वक लगाने से उस भाग में रुधिर की गति तीव्र हो जाती है। इसी प्रकार विचार, ध्यान द्वारा रक्त की गति मस्तिष्क के किसी भो भाग में वढ़ाने से तथा शरीर के विद्युन्मय सामर्थ्य का उस प्रदेश में संचार करने से मस्तिष्क के उस भाग के अणुओं में वृद्धि और सुधार किया जा सकता है। हमारे प्राचीन योगियों ने मूर्धा, त्रिकुटी आदि स्थानों में मन को एकाग्र करने की जो क्रियाएँ वतलाई हैं, उनका तात्पर्य मस्तिष्क को वलवान् वनाने का—इसके अन्दर के अणुओं की वृद्धि और शक्ति के विकास का—जान पड़ता है। सभी योग की, ध्यान तथा समाधि की क्रियाएं शरीर को, मन को तथा विचार वल को विकसित करने वाली हैं। क्लोरावेन्स, टेलीपेथी या समाधि अवस्था आध्यात्मिक चिन्तन की ही एक साधना है।

विचार सञ्चालन के लिए मस्तिष्क को परिपुष्ट करने में एकाग्रता का मुख्य हाथ है। इस साधना का निम्नतम श्रेणी के मनुष्य से लगाकर सर्वोच्चम योगी तक के लिए केवल एक ही उपाय है—

एकाग्रता । वस्तुतः जिन प्रयोगों से एकाग्रता प्राप्त हो सके, उनको करने से ही समाधि अवस्था प्राप्त हो सकती है। जहाँ समाधि अवस्था प्राप्त हुई कि आपका मस्तिष्क दूर-दूर तक विचार भेजने का शक्तिशाली डायनमों बन गया समझिए। समाधि अवस्था में पहुँचने से मन की लचक क्रमशः बढ़ जाती है । वह अत्यन्त सूक्ष्मातिसूक्ष्म कम्पनों को पकड़ सकता है। विचार दूसरे के मस्तिष्क में बलपूर्वक प्रविष्ट करा सकता है और अनेक गुप्त बातें अनायास ही मालूम कर सकता है। ऐसे योगी प्रायः दूसरे के मन की बात यकायक ताड़ जाते हैं, कभी-कभी स्पष्ट कह भी देते हैं।

—❀—

## १२—टेलीपेथी का प्रथम तत्त्व—एकाग्रता

एकाग्रता से विचार संगठन प्राप्त होता है। असंगठित विचार एक निकम्मी वस्तु है । जिस व्यक्ति के मन में अनेक बेसिर पैर की बातें, नाना ऊलजलूल कल्पनाएँ, असंगठित विचार, अव्यवस्थित चिन्तन रहता है, वह मानसिक सघर्ष का शिकार होता है। मन की समता ( Harmony ) नष्ट हो जाती है, चित्त अस्थिर हो जाता है और मस्तिष्क विक्षिप्त विचारों का डेरा बन जाता है। दुर्बल भावना, अव्यवस्थित मंतव्य, जर्जर कल्पना मन को शिथिल एवं अशान्त कर देती हैं। यदि विचार विक्षिप्त हो गए तो नाड़ी-संस्थान में क्षोभ उत्पन्न हो जाता है तथा चिन्ता, उद्वेग, भ्रान्ति, भय तथा संक्षय दिमाग को व्याकुल एवं चलायमान रखते हैं। हम अपने असंगठित विचारों के आधीन रह कर दास बने रहते हैं।

विचार संचालन के लिए सर्व प्रथम आपको विचार संगठन सीख लेना चाहिए । असंगठित विचार एक निकम्मी चीज है, किन्तु संगठित विचार संसार में सबसे महान् शक्ति है। दुनियां में रुपया सर्व शक्तिमान् माना जाता है, किन्तु संगठित विचार उससे भी बलवान् है।

रुपया इसके वश में है तथा दरिद्रता भी इसके डर से भाग जाती है। जिन तत्त्वों से मानसिक सामर्थ्यों की वृद्धि होती है, वे सब विचार संगठन पर निर्भर हैं।

जल को लीजिए। यदि बूँद-बूँद कर जल को इधर-उधर फेंक दें तो उसमें कोई शक्ति नहीं, किन्तु यदि पिचकारी द्वारा पानी की उन बूँदों को संगठित करके फेंकें तो शक्ति उत्पन्न होती है। बारूद के दानों की शक्ति बन्दूक की नालिका में भर कर संगठित रूप दे देने से प्रकट होती है, सूर्य की रश्मियें एकाग्र होकर भयानक अग्नि उत्पन्न कर देती हैं। इसी प्रकार यदि विचार इधर-उधर चलायमान रहें तो उनमें कुछ शक्ति नहीं रहती। यदि उन्हें संगठित स्वरूप देकर एक स्थान पर एकाग्र कर लिया जाय तो अतुलित सामर्थ्य की उत्पत्ति होती है। मन की समग्र शक्तियों के बल का आधार चित्त की स्थिरता, विचार संगठन तथा वृत्तियों को केन्द्रीभूत चित्त की स्थिरता, विचार संगठन तथा वृत्तियों को केन्द्रीभूत करना है। योगी समस्त अनावश्यक विषयों से मन को हटाकर मानसिक शक्ति को अपनी बिखरी हुई शक्ति को संचित कर एक ही स्थान पर केन्द्रीभूत कर देते हैं। योग एवं समाधि में संचित शक्ति को केन्द्रीभूत करना, उसको किसी विशेष वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रवृत्त करना प्रधान है। तप के इस नकारात्मक रूप को संयम, तथा सकारात्मक रूप को साधना कहते हैं।

विचार संयम, स्थिरता, भावना केन्द्रीकरण, वृत्ति-साधन, प्राणायाम बौद्धिक विकास के विभिन्न रूप हैं। ये विचार की महान् शक्तियों को प्रकट करने के उपाय हैं। आत्मोन्नति के लिए विचार एकाग्र करने का अभ्यास करना चाहिए। विचार संचालन के सामर्थ्य का अधिकांश भाग हम प्रायः निकम्मी क्रियाओं में नष्ट कर देते हैं। बैठे-बैठे पैर हिलाते रहेंगे, मुँह से वे अर्थ की बातें कहते रहेंगे तथा मन से सार रहित चीजें सोचते रहेंगे। इसके अतिरिक्त क्रोध, शोक, चिन्ता, भय आदि विविध विकारों से भी पोषक शक्ति का ह्रास होता

है। इन सभी प्रकार के क्षयों से वचने के लिए जिस प्रकार मन की अत्यन्त समाधार वाली शान्त स्थिति की आवश्यकता है, उसी प्रकार वाणी तथा शरीर के व्यर्थ के प्रपंच छोड़ने की भी आवश्यकता है।

समाधि अवस्था मन को समाधान वाली शान्त स्थिति में रखने से प्राप्त होती है। विचार संचालन क्रिया की मूल भित्ति समाधान वाली चित्त की शान्त निर्लेप अवस्था ही है। अतएव साधक को योग की क्रियाओं तथा अन्य साधनों से चित्त की एकाग्रता का अभ्यास करना चाहिए। मेरे कई मित्रों के प्रयत्न इसी कारण निष्फल रहे क्योंकि वे चित्त की एकाग्रता की पर्याप्त साधना न कर सके। मानस प्रदेश की निम्न भूमिका में ही पड़े रहे। उनके विचारों में चंचलता बनी रही।

विचार संचालन के अभिलाषियो! सर्व प्रथम मानसिक क्रिया द्वारा एकाग्रता का अभ्यास करो। जैसे-जैसे तुम एकाग्रता द्वारा विचार संगठन करोगे, वैसे-वैसे तुम अपने भीतर एक अद्भुत ओजस शक्ति का अनुभव करोगे, और तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम निर्बल पददलित नगण्य प्राणी नहीं हो, अपितु एक आकर्षण पिण्ड हो, जो उन्नत, देदीप्यमान और प्रभावशाली होने के लिए बना है। विचार केवल एकाग्रता द्वारा ही मजवूत हो सकते हैं। एकाग्रता की अभिवृद्धि के लिए तुम यह मान कर और विश्वास करके चलो कि तुममें यह शक्ति पहिले से ही प्रस्तुत है और तुम उसे अवश्य विकसित कर सकते हो। तदुपरान्त नियमित रूप से अपनी विचार और मानसिक क्रिया को अभीष्ट लक्ष्य पर एकाग्र करो। यह प्रयत्न दस पन्द्रह दिन तक एकान्त स्थान पर नेत्र मूंद कर रात्रि के समय उत्तम रहता है।

—※—

# १३–एकाग्रता की प्राप्तिके लिए शिथलीकरण की साधना कीजिए

रात्रि के समय विचार अन्तर्मन में सुदृढ़ होते हैं तथा पुनः तदनुकूल क्रिया दूसरे दिन करते हैं । विस्तर पर लेट कर शरीर के समस्त अंग प्रत्यंगों को शिथिल कर लो, जैसे मशीन के सब पुर्जे पृथक् २ पड़े हों । अवयवों को विलकुल ढीला छोड़ दो । शरीर के किसी भी भाग में तनाव न रहे । किसी वस्तु का आधार लेकर हम अपने हाथ को ऊंचा करते हैं और उस आधार को हटाते ही जैसे धड़ाम से हाथ गिर जाता है, उसी प्रकार बिस्तर पर पड़े हुए कोई अंग यदि उठाया जावे तो तुरन्त नीचे गिर जाना चाहिए । आरम्भ में यह क्रिया कठिन प्रतीत होगी, किन्तु अभ्यास से शिथलीकरण स्वाभाविक हो जावेगा । शरीर को शिथिल करने के पश्चात् दिन में जो चिन्ता, श्रम, परिताप, ग्लानि, शोक, भय आदि के समस्त विचारों के प्रवाह को दूर करो, स्मृति को हटा दो, कल्पना द्वारा एक ही केन्द्र लेकर उस पर मनः क्रिया एकाग्र कर दो । बाह्य जगत् का भान भूल जाओ । केवल एक ही केन्द्र तुम्हारे सन्मुख रहना चाहिए । दस मिनट तक इस एक ही भावना पर चित्त को एकाग्र रक्खो । दृढ़ता से मन लगाये रहो । इस प्रकार क्रमशः मन की एकाग्रता में वृद्धि होती जायगी ।

एकाग्रता के लिए पहिले एक वस्तु लो । उसका चित्र, स्मृति द्वारा खूब स्पष्ट करो । जैसा तुम बाह्य जगत् में देखते हो वैसा ही मानस चित्र स्पष्ट हो जावे । एक-एक लकीर साफ-साफ दिखाई दे । वस्तुओं के पश्चात् दृश्य लेकर एकाग्र करो । फिर उत्तम भावनाएँ लो । इस भावना को मस्तिष्क के केन्द्र ( Focus ) के सन्मुख रक्खो और अविचल उसी पर सोचते रहो । मन को इधर-उधर न भगाने दो, प्रत्युत दृढ़ता से उसी पर जमाये रहो । इसी क्रिया के अभ्यास से विचारों में संगठन एवं परिपक्वता आ जायगी और तुम जिस अभीष्ट

पर चित्त को एकाग्र करना चाहोगे सफलता पूर्वक कर सकोगे। एकाग्रता का अभ्यास करते समय शुद्ध रीति से श्वास-प्रश्वास लेने से विचार संगठन में अतीव सहायता प्राप्त होती है। विचार की एकाग्रता की इस प्रचण्ड पुष्ट एवं उत्पादक शक्ति द्वारा ही एक व्यक्ति अन्य व्यक्ति तक अपने विचार भेजने में सफल होता है। अतएव इसका साधन अत्यन्त महत्त्व का है।

—※—

## १४–टेलीपेथी का द्वितीय तत्त्व–उर्वरा कल्पना

विचार सञ्चालन में लचीली या उर्वरा कल्पना से काम लिया जाता है। जिस समय जिस व्यक्ति के पास विचार भेजना हो, प्रायः उसका मानस चित्र खींचना पड़ता है। वस्तुतः साधक को समयानुसार मानस चित्रों के निर्माण की आवश्यकता पड़ती है। कल्पना शक्ति से ही मनुष्य अज्ञात को ज्ञात में परिणत कर देता है। सर्वप्रथम एक अस्पष्ट और धुंधला चित्र सामने आता है और फिर क्रमशः भौतिक जगत् में एक साकार रूप वनता जाता है। अनेक वस्तुओं की कल्पना आज के युग में साकार रूप धारण करके प्रकट हुई है। मनुष्य जितनी ही स्पष्टता से अपनी मनोभिलाषित अवस्था का चित्र अपने मानस नेत्रों से देखता है, उतनी ही वह उसके लिए सुलभ होती है। इसके विपरीत जो व्यक्ति सन्देह एवं संक्षय में अपने मानस चित्र अस्पष्ट एवं धुंधले रखते हैं, वे किसी योग्य नहीं वन पाते। कल्पना शक्ति अथवा सृजनात्मक ध्यान के द्वारा न केवल हम अपने भौतिक जगत् में ही निर्माण करते हैं प्रत्युत उसी के आश्रय से परमात्मा का साक्षात्कार कर उस लोक के सुख को भी प्राप्त करते हैं।

विचार संचालन के लिए कल्पनाशक्ति अत्यन्त पैनी होनी चाहिए, व्यर्थ इधर न दौड़कर वह सर्वदा एक स्पष्ट एवं सुनिश्चित केन्द्र पर चले एक ही वस्तु, स्थान, व्यक्ति, वातावरण की, सृष्टि एक वार में

करे। उसे इतना स्पष्ट बना दे कि वह सत्य जीती जागती, बोलती प्रतिमा सी प्रतीत हो। जब कोई विचारणीय विषय आजाय, तो सर्वप्रथम तो वस्तु का खाका खींचे, किन्तु फिर उसे स्पष्टतर कर दे।

कल्पना द्वारा कई भावनाओं का एक साथ मेल कराना भी सीखना चाहिए। सामंजस्य, एकीकरण, वस्तुओं का संयोग कल्पना द्वारा होना चाहिए। जितने ही अधिक विषयों में मनुष्य की पैंठ रहेगी, उतनी ही उर्वरा उसकी कल्पना होगी। कल्पना ऐसी हो कि सर्वदा विचारों को एक सुनिश्चित स्थान ( केन्द्र ) पर पहुँचा कर छोड़े। चाहे वे विचार कैसे ही हों, उन्हें मानस चित्र तक पहुँचा दे। प्रत्येक मनुष्य के विचारों का प्रवाह एक सुनिश्चित दिशा में होता है। अतः इस साधना के लिए अपनी अभिरुचियों को केन्द्रीभूत करना आवश्यक है। एक से अधिक केन्द्र रखने पर विचार बीच में ही भटकते रहते हैं। किसी सुनिश्चित स्थान पर पहुँचना उनके लिए कठिन हो जाता है। जब तक मनुष्य अपनी कल्पना द्वारा मानस चित्रों को दृढ़ता पूर्वक स्थिर नहीं रखता, तब तक उसके विचारों का प्रवाह भटकता रहेगा। विचारों का प्रवाह निरन्तर मानस चित्र की ओर अखण्ड रूप से चलना चाहिये। जब सब विचार एक बिन्दु पर एकाग्रता पूर्वक डाले जाते हैं, तो आश्चर्यजनक कार्य होते हैं। जिस साधना में चित्त की समस्त वृत्तियां किसी विशेष उद्देश्य से एक ही मानसचित्र पर एकाग्र होकर किसी विशेष लक्ष्य की ओर प्रवृत्त कर दी जाय, वही कल्पना तथा एकाग्रता की सिद्धि है।

श्री अयोध्याप्रसादजी लिखते हैं कि एकाग्रता की यह सिद्धि कठिन है। मन पर अधिकार करने में कुछ अधिक समय लगता है। इस कठिनाई का कारण यह है कि हम अपनी चित्त वृत्तियों को रोकना चाहते हैं, किन्तु उसके उद्गम स्थान की उपेक्षा करते हैं। यह उद्गम स्थान हमारा ध्यान मानसिक केन्द्र अथवा मानसिक दृष्टि बिन्दु का मानसिक चक्षु है। जिस विषय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित हो

जाता है, वैसे ही विचार हमारे मन में आने लगते हैं और हमारा मन इस पर एकाग्र हो जाता है। इसलिए आरम्भ में उचित होगा कि हम अपने ध्यान को वस्तुओं पर केन्द्रित करें। फिर कल्पना द्वारा अपने परिचित कुटुम्बियों, मित्रों, शिष्यों आदि के मानस चित्र बनावें और उन पर मानसिक दृष्टि विन्दु को केन्द्रित करें। धीरे-धीरे निमग्नावस्था प्राप्त होने लगेगी और आप मानस जगत् में सब परिचितों को प्रत्यक्ष चलते-फिरते, बोलते कार्य करते देखने लगोगे। मौनाभ्यास द्वारा इस समाधि को प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ है। मौनाभ्यास में हमारा आसन सुस्थिर और सुखपूर्ण हो जिससे साधन के समय हमें अपने मन, शरीर, वातावरण एवं परिस्थितियों का कुछ भी ज्ञान न रहे। मानसिक मूर्ति तथा हममें बातचीत का क्रम चलता रहे।

जो कुछ भी तुम चाहते हो या भविष्य में बनना चाहते हो, वैसा स्पष्ट चित्र अपने मनके समक्ष रक्खो। यदि तुम कोई बात दूसरे को बताना चाहते हो तो वह भी इस मानस चित्र से श्रद्धापूर्वक कहो। उर्वरा कल्पना द्वारा ही तुम्हें स्पष्ट चित्रण में सहायता मिलेगी।

—*—

## १५–टेलीपेथी का तृतीय तत्त्व दृढ़ इच्छाशक्ति।

इच्छा के विरुद्ध आप कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते। आप विचार-संचालन करने जा रहे हैं। अतएव आपको अपनी शक्तियों में पूर्ण विश्वास का समावेश करना चाहिए। विश्वास आपकी नींव हैं। विश्वास ऐसी शक्ति है, जिसको प्राप्त करने से ही मनुष्य चमत्कार पूर्ण कार्य करता है। विश्वास ही आत्मा का अन्न है, आत्मा का प्राण है। विश्वास के शब्दार्थ में ही गुह्य तत्त्व भरा है। "विशेषेण श्वस्ति यस्मिन स विश्वास" अर्थात् विशेष प्रकार से जिसमें पुरुष श्वास लेता है, वह ही विश्वास है। विश्वास नष्ट कर दो, बस आत्मा-आत्मा नहीं रह सकता। विश्वास आत्मा की आंखें हैं जिससे सर्व अदृष्ट पदार्थों को भी दृष्टवत् करता है।

जिस व्यक्ति को अपनी शक्तियों में विश्वास है, वह अवश्य विचार संचालन कर सकेगा। इस विश्वास में तीन तत्त्व मिले हुए हैं, पूर्ण निर्भरता, आशा, सन्तोष व प्रसन्नता। जिस मनुष्य में विश्वास जागृत होता है, उसमें यह तीनों शक्तियां पाई जाती हैं। सर्वप्रथम उसमें पूर्ण निर्भरता की शक्ति आती है, वह जिसके लिए प्रयत्न कर रहा है, उसमें पूर्ण भरोसा रखता है। द्वितीय आशा से पूर्ण रहता है तृतीय सदैव सन्तुष्ट तथा अपने मनोरथों में सफल होने में भरोसा रखता है।

विचार संचालक को यह पूर्ण विश्वास रखना चाहिए कि वह जिसके पास विचार संचालित करेगा, उसमें अवश्वमेय सफल होगा। जिस कार्य को करने का निश्चय उसने किया है, वह अक्षरक्षः सफल होगा। कोई ऐसी शक्ति नहीं है, जो उसके मार्ग में वाधा उपस्थित कर सके। जितने अंशों में आपको दूसरे तक विचार भेज देने में विश्वास होगा, उतने ही अंशों में आप इस समाधि की क्रिया में सफल हो सकेंगे।

विश्वास का प्रभाव हमारे गुप्त मन पर पड़ता है। गुप्त मन की शक्ति सब मानसिक शक्तियों में प्रबल है। हमारे जीवन का कर्त्ता धर्त्ता गुप्त मन ही है। गुप्त मन से संक्षय, शक, शुबा, निराशा निकाल फेंको और कहो कि तुम वास्तव में विचार संचालित कर सकोगे। जैसे २ तुम्हारे गुप्त मन में यह विश्वास जमेगा, वैसे २ जादू सा तत्काल प्रभाव डालने वाली शक्ति तुममें प्रकट होगी। इस आन्तरिक शक्ति को दृढ़ करो, उठो स्वीकार करो और अपना प्रभुत्व जमा लो। विचार संचालन की सम्भावना जहां तुम्हारे गुप्त मन में दृढ़ता से जमी कि तुम इस महान् कार्य के लिए योग्य हो गए। गुप्त मन की रचनात्मक शक्ति से ही तुम विचारों की लहरें उत्पन्न कर सकोगे। स्मरण रखिए, यदि आप अपनी विचार सञ्चालक शक्तियों के प्रति आविश्वासी रहेंगे, तो कुछ भी न कर पायेंगे। कितने ही व्यक्ति

अपनी सूचना शक्तियों के प्रति संशयात्मक भावनाएं रखते हैं और अश्रद्धा के कारण विचारों में दृढ़ता नहीं ला पाते । आप इस किया को करने से पूर्व पूरा पूरा विश्वास रखिए कि आप विचार संचालन में अवश्यमेव फलीभूत होंगे और अपने मनोबल से अपने विचार अपने मित्र सम्बन्धियों तक भेज दिया करेंगे ।

---

# १६—टेलीपेथी की महान शक्तियाँ विचार की लहरें और कम्पन

विचार तत्त्व आज तक पूर्ण रीति से प्रकट नहीं किया गया । निसन्देह विचार की उत्पत्ति परिमाणुमयी है । यदि यह छोटे छोटे परमाणुओं से विनिर्मित न होता तो प्रकृति के नियमानुसार यह अन्तरिक्ष में एक स्थान से दूसरे स्थान पर कैसे जाता ?

जैसे प्रकाश या ध्वनि छोटे छोटे परिमाणुओं या कणों से बने होते हैं, उसी प्रकार विचार भी तरङ्ग माला में चलते हैं । प्रत्येक कण अपने पास के कण को गति देता है । प्रत्येक कण या परमाणु अपनी बारी में क्षोभ का एक केन्द्र बन कर लहरें उत्पन्न करने लगता हैं । इन लहरों की लम्बाई अत्यन्त सूक्ष्म होती है और वे अमितवेग से चलती है । जैसे जल में पत्थर फेंकने से उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार विचार की लहरें चलती हैं ।

विश्व में जो अनेक शक्तियां मौन और प्रकट रूप में कार्य कर रही हैं, उनमें ध्वनि तथा विचार महान् शक्तियाँ हैं । ध्वनि तथा विचार के कम्पन एक सेकिन्ड में इतने होते हैं कि हम इनकी गिनती नहीं कर पाते । आजकल ऐसे यन्त्रों का आविष्कार किया गया है कि इन सूक्ष्म कम्पनों की गणना भी की जाती है और चित्र भी लिए जाते हैं । जैसे कान के अन्दर पर्दे पर एक सेकिन्ड में १६ से ५६००० हजार

तक कम्पन आघात करते हैं, ऐसे ही मस्तिष्क के सूक्ष्मतम पर्दे पर न जाने विचारों के कितने कम्पन निरन्तर आघात किया करते हैं। मस्तिष्क को रेडियो की भांति विचार ग्राहक एवं संचालक यन्त्र समझिये। इसमें भेद इतना ही है कि मानव मस्तिष्क अन्य सव ज्ञान यन्त्रों से अधिक शक्ति सम्पन्न और अधिक सूक्ष्म रचना रखता है। मनुष्य इस यन्त्र की शक्ति का अन्दाज कम ही लगाते आये हैं। कारण यह कि वह स्वभाव से मस्तिष्क को ऐसी प्रचण्ड विचार संचालक शक्ति को कल्पना में भी नहीं ला सकता।

—*—

## १७-टेलीपेथी के संचालन का सशक्त माध्यम-ईथर तत्त्व

विचार मस्तिष्क के केन्द्र स्थान से निकल कर ईथर (Luminiferous Ether) के माध्यम द्वारा दूसरे केन्द्र स्थान में पहुँचता है। ईथर या आकाश एक अदृश्य माध्यम हैं। ईथर सर्वव्यापी है, इससे सम्पूर्ण अन्तरिक्ष परिपूर्ण है। अन्तरिक्ष में से प्रकाश के आवागमन के लिए वैज्ञानिकों ने इसे एक आवश्यक वस्तु माना है क्योंकि वहाँ वायु इत्यादि कोई अन्य माध्यम नहीं पाया जाता। वैज्ञानिक इसे एक साफ और गाढ़े रस जैसा पदार्थ वताते हैं। रोजीक्रूश्यन लोग इसे एक सजीव अग्निशिखा जैसा समझते हैं।

इस वात को सभी तत्त्व वेत्ता मानते हैं कि आकाश में लहरें उठती हैं। उन्हीं के कारण सब शक्तियों का प्रादुर्भाव होता है। अर्थात् आकाश (ईथर) के कण अपने स्थान पर कम्पायमान होते हैं। इससे सिद्ध है कि ईथर के दो कणों के मध्य में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिए। ईथर एक ऐसा पदार्थ हैं जिससे अधिक सूक्ष्म पदार्थ सृष्टि में नहीं है। जो कुछ स्थूल या सूक्ष्म रूप से विद्यमान है, सभी ईथर से प्रादुर्भूत है। इसे यदि सृष्टि का वीज कहें तो अत्युक्ति

नहीं । विद्युत, आकाश, उष्णता, गुरुतत्वाकर्षण स्नेहाकर्षण, विचार शक्तियाँ जो संसार की संचालक हैं और जो इस मनोहर एवं विचित्र सृष्टि के आधार हैं, सभी ईथर के विकार हैं । ये शक्तियाँ ईथर के ही कम्पन से उत्पन्न होती हैं और तरंगों (Waves) के ही द्वारा एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र पर जाती हैं । आपने विद्युत् तरंग, चुम्बक तरंग, प्रकाश तरंग और उष्ण तरंग (Heat waves) के नाम सुने होंगे । ये सब तरंगें आकाश ( ईथर ) के माध्यम से ही उत्पन्न होती हैं । ये शक्ति (Energy) के विभिन्न रूप हैं । आकाश की सहायता से वहुरूपिये की तरह इस सृष्टि में शक्ति ने नाना रूप धारण किए हैं ।

ईथर के कणों के कम्पन का नाम शक्ति है और वह तरंगों के द्वारा एक केन्द्र से चारों ओर फैलती है । जैसे दीपक का प्रकाश चारों ओर फैलता है, और जैसे विजली उत्पन्न करने वाले यन्त्र से विजली की धारा सर्वत्र फैलती है, वैसे ही ये तरंग भी एक निर्दिष्ट केन्द्र से सब कहीं फैलती हैं परन्तु याद रहे कि जैसे जल ऊँचे धरातल से निम्न धरातल की ओर प्रवाहित होता है तथा उष्णता, अधिक उष्ण पदार्थ से कम उष्ण पदार्थ की ओर जाती है, उसी प्रकार विचार एक परि-पुष्ट दृढ़ एवं शक्तिशाली मस्तिष्क से, अधिक शक्ति सम्पन्न धरातल से न्यून शक्तिसम्पन्न धरातल की ओर जाते हैं । सारांश यह कि शक्ति चाहे जिस रूप में हो, वह स्थान परिवर्तन तभी कर सकती है, जव अन्य पदार्थों की अपेक्षा वह उच्च-शक्ति-सम्पन्न धरातल ( At a higher Potential stage ) हो । अतएव आकाश में कम्प या तरंगों का होना तभी संभव है जब दो स्थानों के मध्य में सम्भाव्य-शक्ति सम्पन्न धरातल का अन्तर हो । यदि सम्पूर्ण सृष्टि में सारे पदार्थ एक से धरातल पर प्रतिष्ठित हो जांय तो सृष्टि के सम्पूर्ण कार्य वन्द हो जांय । सूर्य प्रतिदिन ठण्डा होता जा रहा है । जब यह उतना ही ठण्डा हो जायगा जितने अन्य ग्रह हैं, तो सौर जगत् नाश को प्राप्त हो जायगा । सृष्टि व्यापार चलाने के लिए सम्भाव्य-शक्ति सम्पन्न धरातल के अन्तर की

आवश्यकता है। पदार्थ-विज्ञान वेत्ता यह भी कहते हैं कि शक्ति निम्न से उच्च धरातल पर स्वयं नहीं जा सकती। अवश्य कोई शक्ति या व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जो सदैव धरातल में अन्तर करता रहे। हम इस शक्ति को परमात्मा मानते हैं।

यही आकाश (ईथर) हमारे विचार का माध्यम है। यह हमें उन विचार तरंगों से मिलता है जो दूर दूर से हमारे सगे सम्बन्धी नित्य भेजा करते हैं। इस माध्यम के द्वारा हम पुष्ट विचार को जहाँ अन्य व्यक्ति हों, चिरकाल से दूर रहते हों सब स्थानों में भेज सकते हैं। आकाश हमारे सारे शरीर में व्याप्त है। आकाश में विचार की क्रिया का विचार करते समय पाठकों को आकाश अपने से बाहर की वस्तु न मान लेना चाहिए। विचार को एक अज्ञात, दुर्बल या साधारण सी निसत्व वस्तु न मान लें। विचार, आकाश के अद्भुत और अदृश्य माध्यम द्वारा, चुम्बक शक्ति और इसी प्रकार की अन्य ज्ञात वस्तुएँ विश्व ब्रह्माण्ड में से द्रव्य को अपने पास आकर्षित कर सकती हैं। इन वस्तुओं से भी कई गुनी शक्ति विचार में है। जितनी शक्ति विचार में है, इतनी अन्य किसी पदार्थ में नहीं है। संसार का कोई कोई पदार्थ इसके आकर्षण को नहीं रोक सकता, चाहे इसके और इसकी अभिलाषित वस्तु (केन्द्र) में कैसी ही बाधा क्यों न हो।

जितना बलवान् मस्तिष्क होता है, उसकी विचार तरंग का क्षेत्र उतना ही विस्तृत एवं वेगवान् होता है। जब किसी मनुष्य की विचार-धारा में शक्ति आने लगे, तब उसे समझ लेना चाहिए कि वह भी बड़ा व्यक्ति बनने वाला है। शक्ति सर्व प्रथम विचारों में आती है। तद्पश्चात् सम्पूर्ण मानव शरीर में व्याप्त हो जाती है।

जैसे जल में पत्थर से तरंग उत्पन्न होती है, वैसे ही जब हम विचार करना प्रारम्भ करते हैं तो आसपास के वातावरण में एक भयंकर थरथराहट उत्पन्न होती है। यकायक ईश्वर का समस्त वायुमंडल कंपायमान हो उठता है। विचार तरंगें इच्छा शक्ति के संयोग से छूटने

लगती हैं और आसपास के प्रदेश में व्याप्त हो जाती है। अपने गुणों से ये समस्त वातावरण को प्रभावित कर देती हैं। ऋपियों की इन्हीं विचार तरंगों के कारण बड़े बड़े हिंसक जन्तु एवं राक्षस भी उनका कुछ नहीं बिगाड़ पाते थे। इनका वेग, शक्ति, सामर्थ्य बड़ा उन्नत है। इन अदृश्य तरंगों के समस्त बड़े बली तथा धनाढच भी परास्त हो जाते हैं। इन्हीं शक्तियों का सामूहिक नाम "आत्म तेज" भी है। जो व्यक्ति इन तरंगों के क्षेत्र में आ जाता है, वह उनसे प्रभावित हुए विना नहीं रह सकता।

हम निर्देश कर आये हैं कि विचार की रचना परमाणु मयी है। हमारे विचार अत्यन्त छोटे-छोटे अणुओं के योग से विनिर्मित हुए हैं। विचार के सूक्ष्म अणु अत्यन्त द्रुतगामी हैं। विचार-संचालन में मुख्य वस्तु विचार परिमाणुओं के कद (Size) तथा रूप (Shape) के ऊपर निर्भर है। यदि ये परिमाणु छोटे छोटे हैं, तो आस पास के क्षेत्र में कम कम्पन थरथराहट उत्पन्न करेंगे। यदि ये कुछ बड़े तथा शक्तिशाली हैं, तो भीषण वेग से प्रवाहित होंगे, चारों ओर का ईथर मंडल क्षुब्ध हो उठेगा और ये चारों ओर व्याप्त हो जाँयेगे। इनका प्रभाव भी दूर-दूर तक फैल जायगा। यदि इन विचारों के पीछे दृढ़ इच्छा शक्ति एवं निश्चय बल है तो इनके क्षेत्र में आने वाला प्रत्येक व्यक्ति इनसे प्रभावित होता जायगा। प्राचीन योगियों के विचार एक प्रकार के कवच का कार्य करते थे।

आपके विचार वातावरण में भयंकर थरथराहट उत्पन्न कर देते हैं और विद्युत की तरंग मालिका की भांति अग्रसर होते हैं। ईश्वर तो समस्त वायुमंडल में व्याप्त है। हमारे मस्तिष्क में भी यह माध्यम प्रस्तुत है। अतएव विचार के सूक्ष्म परमाणु हमारे मस्तिष्क से प्रकाशित होकर वाहर निकल आते हैं। इस कम्पन से समस्त वायुमंडल थरथरा उठता है। एक मस्तिष्क से दूसरे तक ये कम्पनें पहुँच जाती हैं। जिस प्रकार रेडियो ध्वनि की तरंगों को खींच कर पुनः आवाज उत्पन्न

कर देता है, उसी प्रकार विचारों की लहरों के कम्पन भी पुनः विचार का ही रूप धारण कर लेते हैं और एक व्यक्ति का मनः सन्देश बखूबी दूसरे तक पहुँच जाता है। या यूँ समझिये कि सन्देश लेने वाले के मस्तिष्क की वही अवस्था हो जाती है, जो सन्देश भेजने वाले के विचार-यन्त्र की है। यदि विचारों में इच्छा का योग नहीं है तो उसकी थरथराहट कुछ ही दूर के आकाशमंडल में विस्तीर्ण होने के उपरान्त विनष्ट हो जाती है और वे दूसरे मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाती। यदि पहुँचते भी हैं तो वे इतने धुँधले होते हैं कि ग्राहक को समझ में नहीं आते।

क्या कारण है कि एक व्यक्ति सफलता पूर्वक अपना सन्देश दूसरे तक पहुँचा सकता है, किन्तु दूसरा नहीं? कारण स्पष्ट ही है। एक की विचार कम्पन प्रचंड है, तीव्र इच्छा एवं दृढ़ निश्चय के संयोग से वह पूर्ण परिपक्व है। उसके विचार परिमाणु अत्यन्त वेगवान् हैं। उनका रूप आकार अत्यन्त परिपुष्ट है। वे ईथर में दूर तक अपना क्षोभ उत्पन्न कर सकते हैं और तीव्र गति से विकीर्ण होते हैं। दूसरे के विचार निर्वल संशययुक्त हैं। उनमें दृढ़ इच्छा का मनोवल नहीं है। अतएव वे आसपास के वातावरण में ही तरंगें उत्पन्न करने के पश्चात् नष्ट हो जाते हैं। उनके विचारों के अणु परमाणु अपने केन्द्र स्थान से निकल कर थोड़ी दूर पर ही फीके निर्जीव से हो जाते हैं। अतः विचार संचालन के इच्छुक को अपने मनोवल तथा इच्छा शक्तियों को खूब परिपुष्ट करना चाहिए। मेरा अनुभव हैं कि जव तक साधक की विचार-शक्ति निरन्तर अभ्यास द्वारा जागृत होकर संगठित न हो जाय, तव तक कोई स्थायी फल प्राप्त नहीं होता। संगठित विचार ही एक मस्तिष्क से दूसरे मस्तिष्क तक फेंका जा सकता है। संगठित विचार एकाग्रता से प्राप्त हो सकता है। मन को एक ही वस्तु पर एक ही स्थान पर रोके रखना, जब तक कि समस्त वृत्तियां उसे ग्रहण न करलें सच्ची एकाग्रता से विचार संचालन मामूली योग की क्रिया है।

## १८-टेलीपेथी साधना की उच्च स्थिति-समाधि

वाह्य जगत् के कम्पनों द्वारा हमारे नेत्र, कान त्वचा आदि के स्पर्श से हम देखते, सुनते, तथा शीतोष्ण आदि का अनुभव करते हैं। सूक्ष्म अवस्था में पहुँच जाने पर ये कम्पन पारदर्शी होने से दूर देशों की यात्रा कराने वाले, दूर की दशा का ज्ञान करा देने वाले होते हैं। अन्तः करण निर्मल, एकाग्र करके परमतत्व की स्फूर्ति का अनुभव करते हुए स्थिति करना ही वास्तविक समाधि है।

मानलो तुम्हारा एक मित्र चीन में निवास करता है। उसे तुम स्थूल अवस्था में देख, सुन, वोल नहीं सकते किन्तु ईथर माध्यम के सूक्ष्म तत्त्व में जब स्थिति हो जाती है तो उस तत्त्व के प्रभाव से मनुष्य दूर के दृश्य देख सकता है तथा दूर की आवाज सुन सकता है। इसका क्या कारण है? प्रत्येक वस्तु में कम्पन होते हैं अथवा प्रत्येक वस्तु कम्पनमय होती हैं। यह समस्त संसार कम्पनों का समुद्र है। मनुष्य जिस वस्तु को जानना चाहता है, उसके कम्पनों का वह मस्तिष्क निश्क्रिय अवस्था में या ध्यानावस्था में स्पर्श करता है। उसी से उस वस्तु का उस समय प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। समाधि अवस्था के लिए उन्हीं साधनों की अवश्यकता है जिनका उल्लेख एकाग्रता, कल्पना एवं चिन्तन के अन्तर्गत वताया गया है। स्मृति, चिन्तन समाधि ये परस्पर इतने अभिन्न है कि इनमें भेद करना कठिन हो जाता है। एक ही वृत्ति तीनों स्थानों पर कार्य करती है। स्मृति द्वारा विगत दृश्यों को मूर्तिमान करते हैं। चिन्तन से उन्हें और अधिक स्पष्ट एवं पूर्ण (perfect) वनाते हैं और समाधिवस्था में इन कम्पनों द्वारा नवीन दृश्यों, वस्तुओं चित्रों, विभिन्न अवस्थाओं का अवलोकन करते हैं।

जिनकी स्मृति तथा कल्पना तीखी और क्रियाशील होती है, वे मानस चित्र (Mental images) खींचने में कुशल होते हैं। उन्हें समाधि अवस्था प्राप्त करने में कोई विशेष कष्ट नहीं होता। सर्व प्रथम

अपनी स्मृति को विशुद्ध एवं तीव्र बनाना चाहिए। इसके अभ्यास के लिए नियत समय पर किसी शान्त स्थान पर बैठ कर ध्यान करना चाहिए, स्मृति पट पर एक एक कर चित्र खींचने चाहिए। क्रमशः मानस चित्रों में कुशल होने पर तुम देखोगे कि उस स्थान के दृश्य मूर्तिमान बना कर तुम्हारे स्मृति पट पर एक एक करके आने लगेंगे। इस अभ्यास से स्मृति विशुद्ध और तीव्र बनती है।

पं० शिवदत्त जी शर्मा ने स्मृति को पुष्ट करने से लिए यात्रा का अभ्यास बड़े महत्त्व का बताया है। नियत समय यात्रा करो। जैसे तुम अमुक स्थान पर जाना चाहते हो ऐसा सोच लो। फिर ऐसा ध्यान करो कि तुमने वस्त्र पहिने ट्रन्क, बिस्तर इत्यादि साथ लिया, तांगे में बैठकर स्टेशन पर आये, स्टेशन के प्लैटफार्म पर गाड़ी की प्रतीक्षा में बैठे, फिर ट्रेन आई, ट्रेन में सफर किया और ट्रेन से उतर कर निश्चित स्थान पर बैठे जिनसे मिलना भेंटना है, उनसे मिलो, बातचीत करो रहो, और फिर गृह को लौट आओ। इस प्रकार के अभ्यास से कल्पना की दूर दर्शन शक्ति शतगुण अधिक हो सकती है। इसका सूक्ष्म अंकुर प्रायः सभी के मस्तिष्क में आरम्भ से ही रहता है, जिसे प्रतिभा कह कर पुकारते है और जिसकी कवियों के लेख में पूर्ण उद्गार देखा जाता है। मानस चित्र के निर्माण में चातुर्य्य प्राप्त करने के लिए यह अभ्यास उत्तम है।

स्मरण रखिये, ध्यानाभ्यास के परिपक्व होने पर ध्याता और ध्यान की प्रतीति दुर्बल और ध्येय की प्रतीति बलवान् रहने लगे-ऐसी अन्तःकरण की स्थिर अवस्था का नाम समाधि है, यह अन्तःकरण की सम्यक् निश्चलता है। ध्यान के समय स्मृति पट का धुंधलापन धीरे-धीरे स्वच्छ होता है, धुंधलापन हटकर हृदयपटल साफ हो जाता है। इसी पर दूर की वस्तुओं के दर्शन होते हैं तथा विविध चित्र खींचे जाते हैं।

पं० हरिवल्लभ शर्मा कहते हैं कि समाधि का अभ्यास करने

वाला योगी अपने चित्त को पीछे खींच कर माया के प्रदेश में ले जाता है तथा माया को दूर करने का प्रयत्न करता है, जिससे माया योगी के अनुकूल व्यवहार करने लगती है। अभ्यासी की वाह्य स्थिति, शारीरिक स्थिति तथा अन्तःकरण और इन्द्रियों का सात्विक बल प्रशंसनीय होता हैं। उसकी इच्छा शक्ति इतनी बलवान् हो जाती है कि उसके अभिघात का प्रसंग कदाचित् ही आता हो।

---

## १६-समाधि के अभ्यास में सावधानी रखिए

(१) समाधि के अभ्यास करने वाले को विषयासक्ति से दूर रहना चाहिए। समाधि के साधक को इस लोक की सुन्दर स्त्रियाँ मोहित करने का प्रयत्न करती है। इनसे योग-प्रदीप की रक्षा कीजिए।

(२) समाधि के अभ्यास द्वारा मुझे कोई हानि होगी ऐसा भय त्याग देना चाहिए।

(३) मैं अवश्य अपना सन्देश, दूसरे मनुष्य तक भेज सकता हूँ, बातें कर सकता हूँ, उसका सन्देश ग्रहण कर सकता हूँ—ऐसा दृढ़ विश्वास रखना चाहिए।

(४) नेत्र मूँदने पर मन कों इधर उधर भटकने न देना चाहिए, प्रत्युत कल्पना को गंतव्य स्थान पर एकाग्र करना चाहिए। समस्त वृत्तियाँ उसी में लय हो जाना जरूरी है।

(५) सब दृश्य प्रपंचों को तुच्छ गिनने वाला, सबकी भलाई के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति, आत्मलाभ से भिन्न लाभ को मिथ्या मानने वाला साधक, समाधि के अनुष्ठान द्वारा उत्तरोत्तर आनन्दघन परमात्मा की समीपता में आ जाता है।

(६) तीव्र आकाँक्ष तथा दृढ़ विश्वास द्वारा मानस चित्र इधर उधर भेजे जा सकते हैं। इसी से परमात्मा का साक्षात्कार भी हो सकता है।

---

# २०-टेलीपेथी की उच्च साधना

टेलीपेथी वास्तव में एक मस्तिष्क में वैसी ही क्रियाएँ (Movements) उत्पन्न कर देना है, जैसी कि दूसरे के मस्तिष्क में हो रही हैं * दोनों में एक प्रकार के ही कम्पन उत्पन्न होने अनिवार्य हैं। विचार परमाणुओं से विनिर्मित है। प्रत्येक अणु कम्पन करता है। एक के मस्तिष्क जैसा कम्पन ही दूसरे में उत्पन्न होंने के क्रिया टेलीपेथी है, विश्व की सूक्ष्म या स्थूल वस्तुएँ कम्पनों से पूर्ण रहती हैं। अतएव चाहे काल और स्थान में वह वस्तु कितनी ही दूर होने पर भी प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक वस्तु से कम्पन सम्बन्ध रखता है। जैसा फ्रान्सिस थाम्पसन ने कहा है—वृक्ष से एक पुष्प तोड़ने का झटका तारा मण्डल तक को कम्पायमान कर देता है।

टेलीपेथी का अर्थ है एक मस्तिष्क का दूसरे निर्बल मस्तिष्क पर प्रभाव। मछलियों को लीजिए। झुंड का झुंड एक ओर चलते-चलते यकायक विचार संचालक से एकदम निश्चय करके एक ही ओर मुड़ता है। एक बड़ी मछली का मस्तिष्क तेजी से दूसरे मस्तिष्कों में एक ही प्रकार के विचार फेंकता है। जब हम किसी व्यक्ति के लिए कहते हैं कि अमुक व्यक्ति दूसरे के विचार ताड़ लेता है, तो हमारा अभिप्राय यह होता है कि वह अपने मस्तिष्क को इस प्रकार संवारता तथा उस दशा में (Adjust) रखता है कि वे कम्पन अनायास ही उसमें उत्पन्न हो जाते हैं। जब जल शान्त, नेश्चेष्ट, स्थिर अवस्था में होता है तो तनिक सा कम्पन समस्त धरातल पर फैल जाता है। इसी

---

* It is simply the induction in the brain of one individual of molecular movements corresponding with those taking place in the brain of another—

Joseph Sinel.

प्रकार जब मन शान्त, स्थिर और शिथिल होता है (Passive non thinking condition) सब प्रकार खाली (Blank) और भ्रान्ति से सर्वथा मुक्त होता है तो दूसरे के विचारों की परछाहीं बड़ी सरलता से उस पर अंकित हो उठती है। जितनी शान्ति होगी, शरीर एवं मन की जितनी शिथिलता होगी, विचार, चिन्ता, भ्रान्ति से जितनी मुक्ति होगी, उतनी ही आसानी से विचारों की तरंगें आती हैं और हम विचार जान लेते हैं।

मस्तिष्क के केन्द्रों में इतना प्रचंड बल है कि वह प्रायः सर्वथा स्थिर और शान्त प्रतीत होता हैं। इस स्थिर केन्द्र से विचार बाहर की ओर विकीर्ण होते हैं। इस विचार राशि और उसके दूर तक पहुँचने का आधार इच्छा शक्ति एवं मनोबल पर है। उत्पन्न करने कीं क्रिया मनुष्य के विश्वात्मा के प्रबल संयोग द्वारा होती है। शुद्ध रीति से श्वांस लेने से इस संयोग को प्रायः बहुत कुछ सहायताँ मिलती है। शुद्ध रीति से सांस लेने पर विचार की एकाग्रता पर बड़ा अद्भुत परिणाम होता होता हैं। जिस वस्तु पर ध्यान लगाया जाता है, उसकी ओर बलवान् और उन्नत इच्छा के जोर से विचार सीधा जाता है। यह ध्यान जितना अधिक प्रचंड होगा, उतना ही अधिक शीघ्र और सीधी उस विचार की यात्रा होगी। यह भली भाँति समझ लीजिए कि यदि असंगठित मन का चंचल और अनिश्चित विचार है, तो अपनी यात्रा में टेढ़े मेढे मार्ग का अनुसरण करता है। इसकी शक्ति बदलती रहती है और अन्ततः अपने लक्ष्य पर पहुंचे बिना ही यह नष्ट हो जाती है।

कुछ विद्वानों का विचार है कि मनुष्य के अचेतन मस्तिष्क में (Super-Conscious) नाम का एक और मानसिक स्तर है। यह बड़ा सूक्ष्म तथा ग्रहणशील है। विचार की कम्पन इसी में टकराकर पुनः विचार बन जाती हैं। समाधि अवस्था में अर्द्ध चेतन (Sub-Cons-eious) तथा चेतन (Conscious) मन तो निश्चेष्ट हो जाते हैं पर (Unconscious) अचेतन मन अत्यन्त क्रिया शील बन जाता है। इसका

Super conscious स्तर ही विचार ग्रहण एवं विचार संचालन जैसा अद्भुत कार्य किया करता है।

टेलीपेथी का आरम्भ करने के लिए तुम किसी वहुत मनभाती वस्तु को लो। आँख बन्द कर शरीर को निश्चेष्ट कर लो। एकान्त स्थान में शान्त चित्त होकर बैठ जाओ, शरीर और मन को शिथिल कर लो। सब ओर से विचार हटा कर अपने भीतर विज्ञानमय कोष में, जहाँ आत्मा का निवास है, उसमें प्रवेश करो। एक मिनट के लिए उस चुनी हुई वस्तु को मानसिक नेत्रों के सन्मुख रक्खो। उतावले न वनो, प्रत्युत धीरे-धीरे उसे और स्पष्टतर वनाओ, उसे अपनी कल्पना में विल्कुल साफ़ साफ़ देखने का प्रयत्न करो। प्रारम्भ में यह चित्र अन्दर धुंधुला-धुंधला प्रतीत होगा। अभ्यास से मानसिक चित्र खिंचने लगेगा, फिर स्पष्ट होता जायगा। यदि तुम्हें ऐसा करने में सफलता प्राप्त न हो, तो कुछ देर ठहर कर पुनः उद्योग करो। साफ़ साफ़ मानस चित्र खींचने का प्रयत्न करो।

अपने मस्तिष्क को एक महान् आकर्षण केन्द्र मानो। "मैं एक समुन्नत तेज पिंड हूँ, ज्योतिर्मय, सचेतन, चुम्वक हूँ। शक्ति की किरणों को, विचार की तरंगों को ईथर में फेंकता हूँ एकाग्रता द्वारा विचार वखेरता हूँ। मेरे सारे शरीर में ऐसे आकाश तरग व्याप्त हो रहे हैं, जो अनन्त में से सव चीज़ों के लिए माध्यम का काम देते हैं। मैं जीवन का नियम हूँ। शक्ति हूँ। प्रेम हूँ। मेरा सारा शरीर प्रेम से परिपूर्ण हो रहा है।" इस संकेत को स्वीकार करो, इसमें शरावोर हो जाओ। तुम्हारा मस्तिष्क एक सचेतन चुम्वक है और एक विशेष प्रकार के विचार को वाहर वखेर कर यह वैसा ही आकर्षण केन्द्र वन जाता है। "मैं वही प्रभावशाली केन्द्र हूं।" ऐसा उद्वोधन करते ही जिस विचार पर तुम मनः नेत्र एकाग्र करते हो, वे एक दम विशेष विचार अनुक्रम उत्पन्न कर देते हैं। ज्योंहि तुम एक विशेष प्रकार के विचार करने लगते हो, झट विचार तरंगे निरंतर चारों ओर छूटने लगती हैं। और

तुम्हारे लिए संसार के पास जो सर्वोत्तम पदार्थ हैं, उसके साथ तुम्हारा मानसिक संसर्ग उत्पन्न कर देती हैं। यह सर्वोत्तम पदार्थ कुछ भी हो सकता है। अपने विचारों की दशा निर्धारित अवश्य करो अन्यथा विचार तरंगें चारों ओर विकीर्ण होकर नष्ट हो जायेगी। तुम्हारे मन में जो मानस चित्र है. उसी को तुम लक्ष्य बना सकते हो। अपनी विचार किरणों को इसी केन्द्र की ओर तेजी से फेंकों।

क्रोध, ईर्षा, वैर, प्रतिशोध, दूसरे का अनिष्ट, पाप रूप, दोष रूप या अहितकर विचार बड़ा कलुषित वातावरण उत्पन्न कर देंगे। ये चुम्बकीय शक्ति को पंगु कर देंगे। अतः तुम्हें यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि शुभ भावना कल्याण की उच्च कल्पना में आरूढ़ हुए चित्र स्थूल रूप में विचार संचालन में सहायक होते हैं। इसीलिए वेदों में निर्देश किया गया है कि तुम्हारी कल्पना सदैव शिवसकल्पमयी हो। अपने अन्तःकरण में विशुद्ध पवित्र अनन्त स्वरूप चेतन सत्ता के प्रवल मानसिक चित्र की रचना करो। एकान्त स्थान में, रात्रि के समय सुखासन से बैठ जाओ और कुछ क्षण आकाश की ओर देखकर नेत्र मूंद लो और अपनी वृत्ति को मूर्धा में स्थिर करो। इन्द्रियों को विषयों से वृत्ति को हटा लो और ध्यान में ऐसे डूब जाओ कि सम्पूर्ण संसार तुम्हारे लिए अद्रश्य हो जाय। इस समाधि अवस्था में परावुद्धि जाग्रत होती है। दिव्य आध्यात्मिक योग की अद्भुत शक्तियाँ महान् व्यक्तियों को इसी उच्च लोक में प्रवेश करने से प्राप्त हुई हैं। ये गुप्त शक्तियाँ इतने तर्क या बुद्धि द्वारा प्राप्त नहीं होती जितनी किसी अज्ञात क्षेत्र (Unconscious mind) से ही अपने आप उतरती है।

डा० दुर्गाशंकर जी का निर्देश है कि—यह केवल उच्च कल्पना मात्र ही नहीं हैं किन्तु यथार्थ सत्य है। और शास्त्र में बतलाया गया है कि—"मूर्घ ज्योतिषिसिद्ध दर्शनन्"—"प्राति भाद्वा सर्वभ्"—मस्तिष्क में ब्रहरंध्र नाम का एक छिद्र है। यह प्रकाश का तेजोमय केन्द्र है। इस स्थान पर चित्त एकाग्र करने से सिद्ध पुरुषों का साक्षात्कार होता

है । मन में स्वयं स्फूर्ति से जो ज्ञान प्राप्त होता है, उसी से विचार संचालन होता है । जिसकी आज्ञा से प्राण जीवित रहते हैं, जिसकी प्रेरणा से बुद्धि कार्य करती है, जो वाणियों की वाणी है, जो आत्मा की आत्मा है, और समीप से भी समीप है, वह चेतन सत्ता है । यह गुप्त चेतन सत्ता हमें समाधि अवस्था में प्राप्त होती है । जो मनुष्य इस गुप्त सत्ता के उच्च शिखर पर पहुँच जाता है, उसमें विचार संचालन का गुण अनायास ही आ जाता है । वही एक सत् चित् आनन्द घन सर्वत्र भरा हुआ हुआ है, गतिमान सा प्रतीत होता है, वही बाहर भीतर सभी स्थानों में व्याप्त है, वही हमें दूसरे के विचार देता और हमारे ले जाता है । इसी आत्म तत्त्व पर विचार केन्द्रित करो ।

---

## २०-टेलीपेथी के आरम्भिक अभ्यास

रात्रि में किसी एकान्त स्थान में शान्त, ध्यानावस्थित हो बैठ जाओ । सुखासन सर्वोत्तम है । लेटना भी ठीक है । सम्पूर्ण शरीर को शिथिल कर लो, मन को निश्चेष्ट करो और खाली (Blank) कर दो । मांसपेशियों को ढीला छोड़ दो । शरीर में, मन तथा मस्तिष्क में किंचित भी तनाव न रहे । तुम्हारे मन में यह दृढ़ विश्वास रहे कि तुम अपना सन्देश दूसरे व्यक्ति को भेज सकोगे । जिसके पास तुम सन्देश भेजना चाहते हो उससे तुम्हें प्रेम तथा सौहार्द होना अनिवार्य है । यदि हो सके तो उसे पहिले ही से बता दो कि आज रात्रि में ९ बजे या अमुक समय पर हम तुम्हें अपना सन्देश भेंजेंगे ।

नियत समय पर शिथलीकरण कीजिए । श्वास धीरे-धीरे स्वभाविक गति से चलता रहे । मन से समस्त चिंता, व्याधि, वैर भाव निकाल कर उसे खाली (Blank) कर डालो । अब चित्त में अपनी सृजनात्मक कल्पना द्वारा उस व्यक्ति को मूर्तिमान करो जिसके पास तुम्हें अपना सन्देश भेजना है । उसका साफ बोलता-सुनता मानस चित्र (Mental image) अन्तर्जगत् में प्रस्तुत करो ।

अब पूरे विश्वास के साथ अपना संदेश इस मानस मूर्ति के सन्मुख कहो। धीरे धीरे शब्द दृढ़ता से निकालो जल्दी न करो। अपने सन्देश को दो से तीन बार तक इस मानसिक मूर्ति से कहते जाओ किन्तु आत्म श्रद्धा को ढीला न होने दो।

मान लीजिए आप किसी मित्र, सम्बन्धी, सुहृद, बहिन, पत्नि इत्यादि को बुलाना चाहते हैं। शिथलीकरण कर कल्याण से मानसचित्र खींचो और उसके पास यह सन्देश भेजो-"मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे पास आ जाओ ? मुझे तुम्हारी अत्यन्त आवश्यकता है। मैं अपने जीवन में पग पग पर तुम्हारी आवश्यकता प्रतीत कर रहा हूँ। विना तुम्हारे मेरे कई आवश्यक कार्य रुके पड़े हैं। अतएव बुलाने का यह सन्देश मैं तुम्हारे पर भेजता हूँ। तुम इसे मिलते ही तुरन्त चले आना। आओ ! तुम अवश्यमेव आओ।"

अब श्वास अन्दर खींचो तो इसी संदेश पर चित्त को एकाग्र रक्खो और उस व्यक्ति का मानस चित्र अपने आगे बनाये रहो। बारंबार इसी की पुनरावृत्ति करते रहो। अधीर मत हो। तुम इसमें शीघ्रता नहीं कर सकते। यह कला काफी अभ्यास चाहती है। इसके लिए दीर्घ कालीन अभ्यास चाहिए। हमारी सृजनात्मक कल्पनाशक्ति एकाग्रता (Concentration) और इच्छाशक्ति पर विचार गति का प्रवाह निर्भर है। इन तत्वों के उचित विकास से पूर्व विचार में कम्पन उत्पन्न नहीं होते। दो हफ्तों के अभ्यास से तुम्हारे सन्देश तुम्हारे सुहृद मित्र के पास पहुँचने लगेंगे।

शुरु-शुरु के प्रारम्भिक अभ्यास में तुम्हें यह करना चाहिए। अपने प्रेमी मित्र को अपने से दो गज दूरी पर कुर्सी पर बैठाओ। मेज उसके आगे रहे। कागज पेंसिल, लेकर उससे कहो कि जो कुछ तुम सन्देश उसे भेजो, वह लिखता रहे। तुम स्वयं विचार का सन्देश भेजने के लिए एक कागज का भौंपू, जैसा ग्रामोफोन वाजे में टीन का बना होता है, लेकर दूसरी ओर कुछ ऊँचे स्थान पर बैठ जाओ। इस

अभ्यास में आपस में इन्द्रिय स्पर्श की आवश्यकता नहीं है। इसमें केवल अपने आमने सामने बैठ कर एक दूसरे के मनोगत विचार आकर्षण द्वारा एक दूसरे को सूचित करने की आवश्यकता होती है। इसमें अपने विचार तेजी से दूसरे मस्तिष्क में फेंकने होते हैं। विचार भेजना (Project) या उन्हें ग्रहण करने (Receive) में शान्तवृत्ति और एकाग्रता की बहुत जरूरत रहती है।

कागज के भोंपू को एक आंख में लगा लीजिए। उसका खुला हुआ चौड़ा भाग बैठे हुए ग्राहक (Receiver) की तरफ कर लीजिए। एक नेत्र मूंद लीजिए। दूसरे नेत्र से एकाग्र दृष्टि कर देखना शुरू कीजिए। ग्राहक से कहिए कि वह भोंपू के चौड़े मुँह पर एकाग्र दृष्टि लगा कर एकाग्रता पूर्वक देखता रहे। पूर्ण एकाग्र हो जाने पर नेत्र मूंद कर दृष्टि की एकाग्रता वैसी ही स्थिर रखने का अभ्यास डालना चाहिए। "तुम्हारा कौनसा सन्देश कागज पर लिखूं ?"—ऐसा प्रश्न ग्राहक को शांत चित्त से पूछना चाहिए। उसका मन भी खाली (Blank) रहे। कुछ देर पश्चात् भेजने वाले की तरफ से विचार की लहरें ग्राहक के मन में प्रविष्ट होने लगेंगी। उस समय तुम्हारा दिमाग जो कुछ भी लिखने को प्रेरित करे, उसी सन्देश को नोट करते जाओ। आरम्भ में इन सन्देशों में गलती होना संभव है, किन्तु अभ्यास से धीरे-धीरे साफ विचार की लहरें समझ में आने लगेंगी।

मान लीजिए एक मित्र दिल्ली में है तथा द्वितीय कोटा में है। यह परस्पर एक नियत निश्चित समय में एक दूसरे को सन्देश भेजना चाहते हैं। यह मजे में विचार संचालन की रीति से यह किया जा सकता है, किन्तु ऐसा प्रयोग करने के लिए यह पहले ही निश्चित कर लेना चाहिए कि कौन सन्देश किस समय भेजेगा और कौन सुनेगा। ऐसी दशा में भोंपू का चौड़ा मुँह सन्देश ग्रहण करने वाले (Receiver) को अपने कमरे की सामने वाली दीवार पर अपनी तरफ चौड़ा मुँह करके टांग लेना चाहिए। और नियत समय पर उस पर एकाग्र चित्र से देखना

चाहिये। जब दिमाग में स्वयं विचार की लहरें (Waves) प्रारम्भ हों तो कागज पर लिखनी चाहिये। दूसरी ओर विचार विक्षेपक (Sender) को भौंपू का छोटा मुंह नेत्र पर लगाकर "सन्देश ग्राहक मेरे सामने है।"—ऐसी कल्पना करनी चाहिये और अपना मानसिक संकेत भेजना चाहिये।

# टेलीपेथी साधना को परिपक्व करने वाले अभ्यास २२

स्वयं रात्रि में एकान्त में बैठ जाइये और नेत्र मूंद लीजिये। शरीर और मन को शिथिल कर लीजिये। एक पुस्तक हाथ में ले लीजिये। अब नेत्र बन्द किए-किए पुस्तक का कोई पृष्ठ खोल लीजिये। फिर मन में सोचिये कि यह कौन सा पृष्ठ है। संख्या धीरे-धीरे खाली दिमाग में घूमने लगेगी। जो अङ्क प्रथम बार मन में उत्पन्न हो वही मन पर अङ्कित कर लो और आंख खोल कर देखो। तुम्हें आश्चर्य होगा कि कैसे वही अङ्क मन में आया। प्रारम्भ में चार पाँच अङ्कों का अन्तर संभव है, किन्तु धीरे-धीरे कम होकर अभ्यासी उस अङ्क को ठीक-ठीक बता सकता है।

विचार विनिमय की बुद्धि बढ़ाने का एक यह भी उपाय है कि दो मित्र एक कमरे में, एकान्त में एकाग्र चित्त करके स्वस्थ अन्तःकरण से बैठ जाँय। उनमें से एक अपने मन में विचार करना आरम्भ करे। दूसरा तीव्र मानसिक दृष्टि से जानने की चेष्टा करे। अभ्यास से मन की बात मालूम होने लगेगी। इस प्रकार अन्तःचक्षु खुल जायेंगे। यह अभ्यास छै महीने तक चलता रहे। दोनों मित्र हेर फेर कर विचार विनमय मौन रह कर करते रहें। एक बार सिद्ध हो जाने पर दोनों एक दूसरे से कितनी ही दूरी पर क्यों न हों, अपने विचार बखूबी भेज सकते हैं। प्रयोग और अभ्यास करते समय यदि अपनी विचार शक्ति

पंगु होती हुई या थकी हुई सी जान पड़े तो अभ्यास वन्द कर देना चाहिये ।

स्मरण रखिये, श्रद्धा पूर्वक जो शव्द तुम्हारे मन में मानस चित्र के सम्मुख दुहराये जाँयगे, उनमें वड़ा वल है । इस उद्वोधन से विचार तरंगें तुरन्त ईथर प्रदेश में हलचल पैंदा कर दूसरे से तुम्हारा मानसिक संसर्ग उत्पन्न कर देती हैं । फिर तुम्हारे विचार क्रमशः दूसरे के दिमाग में घुस जाते हैं ।

इस क्रिया से प्रेम, सहानुभूति, रक्षा, भलाई, शान्ति, आरोग्य, भ्रातृभाव, सुख के शुद्ध परिमाणु ही विखेरने चाहिए । यदि तुम इससे दूसरे को हानि पहुँचाने की कोशिश करोगे तो वे विचार उलट कर तुम्हीं को नुकसान पहुँचावेंगे । क्रोध, ईर्षा, व्याधि, लड़ाई, झगड़े के विचार स्वयं भेजने वाले के पास लौट आते हैं जिससे भेजने वाले पर वुरा प्रभाव पड़ता है ।

प्रत्येक साधक का यह कर्त्तव्य है कि वह जव कभी किसी के गृह में प्रवेश करे तो मन ही मन सुख, शान्ति, आरोग्य, भातृभाव और प्रेम के विशुद्ध परिमाणुओं को फैलाने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करे कि इस घर में शान्ति हो, शान्ति हो, शान्ति हो । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

## टेलीपेथी के विकसित प्रयोग २३

जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए, प्रेम भाव फैलाने, प्रभाव डालने, उन्नत होने के लिए यह विद्या बड़े महत्व की है । नित्य रात्रि में या प्रातःकाल तुम कोई उत्तम सन्देश लेकर ध्यान में प्रविष्ट हो जाओ । तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर में ऐसी किरणें हैं, ऐसी प्रभा मंडल है जिसका प्रभाव दूर-दूर तक पड़ता है । इस प्रभा मंडल को Light of the illuminated mind या विकसित मन की आभा कहते हैं । तुम्हारे व्यक्तिगत विचारों के अनुसार इसमें परिवर्तन चला करते हैं ।

इन्हीं अदृश आभामयी किरणों के प्रभाव से अच्छा या बुरा वातावरण उत्पन्न होता है।

तुम ऐसा ध्यान करो जैसे तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर से आकाश की तीव्र किरणें निकल रही हैं। तुम वातावरण से उत्तम तत्त्व खींच खींच-कर अपने अन्दर एकत्रित कर रहे हो। फिर उन एकत्रित किरणों को बाहर प्रकाशित कर रहे हो।

ध्यान करो कि 'मैं प्रेमपुंज हूँ। मेरा पूर्ण शरीर प्रेम तत्त्व से परिपूर्ण हो रहा है। संसार का प्रत्येक अणु परिमाणु मुझे प्रेम कर रहा है। मैं प्रेम का महान आकर्षक केन्द्र बन गया हूं।' इस प्रकार का एक उत्तम संदेश बना लो और उसे बार-बार श्रद्धा पूर्वक दुहराते रहो। तुम देखोगे कि तुम्हारी इस भावना से संसार के सभी व्यक्तियों का व्यवहार तुम्हारे साथ बदल जायगा। तुम्हारे आफिसर तुम्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगेंगे। तुम जैसी किरणें बाहर निकालते हो, उसी के अनुसार दूसरे तुमसे व्यवहार भी करते हैं। जिन तत्त्वों के संकेत तुम दुहराते हो कुछ काल पश्चात् वैसे ही बन जाते हो।

# टेलीपेथी के कुछ महत्वपूर्ण तत्व २४

विचार संचालन साधना का विषय है। इसके अध्ययन तथा अभ्यास में जितना परिश्रम और जितना समय जिज्ञासु लगायगा, उतना ही चिरस्थायी उसके फल होंगे, और उतना ही अधिक सफलता उसे प्राप्त होगी। इस लिए यदि प्रारम्भ में कुछ कम एकाग्रता हो तो घब-राना न चाहिये। यथाशक्ति मनोबल का संचय करते रहना चाहिये। नए अभ्यासी पहिले एकाग्रता का अभ्यास करें। यह मानना भारी भूल है कि मनोबल तथा मानसिक एकाग्रता केवल ईश्वर प्राप्ति के लिए ही उपयोगी है, वरन् यह स्मरण रखना चाहिये कि मानसिक एकाग्रता से विचार संचालन आसानी से हो सकता है। अध्यात्मिक विकास की यह उच्च स्थिति में प्रविष्ठ करना है।

जब कोई व्यक्ति किसी तुच्छ से तुच्छ विषय पर भी विचार करने बैठता है, तो उसके विचार परिमाणु एक दम ईथर में क्षोभ उत्पन्न करते हैं। इससे उनके चारों ओर का मंडल क्षुभित हो उठता है। यदि इन परिमाणुओं के पीछे दृढ़ मनोबल नहीं है तो यह कम्पन उसी स्थान तक रहता है किसी दूसरे पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। यदि कोई दृढ़ निश्चयी इन विचारों कोतेजीसे फेंकता है तो ये विचार भूमंडल के एक स्थान तक ढकेले जा सकते हैं।

जब टेलीपेथी के उद्देश्य से दो मस्तिष्क कार्य कर रहे हों, तब उनमें से एक का धनात्मक (+) तथा दूसरे का ऋणात्मक (—) होना आवश्यक है। परस्पर की सहानुभूति, प्रेम, शुभ विचार द्वारा वे आकाश पर दवाव डालते हैं और विचार क्षेत्र इस प्रकार कार्य करते हैं कि उनमें एक से परिवर्तन होने लगते हैं। ये परिवर्तन ही विचारों में परिणित हो जाते हैं। अतः भेजने वाला और विचार ग्रहण करने वाला परस्पर वैमनस्य न रक्खें।

जिन व्यक्तियों में अच्छे सम्बन्ध होते हैं, उन्हें आपस में विचार संचालन करना सुगम होता है। परस्पर का अच्छा परिचय और आत्मभाव दो व्यक्तियों को एक सम्बन्ध सूत्र बन कर बांधे रहता है। इस सम्बन्ध सूत्र के सहारे विचारधारा उसी प्रकार दौड़ती है, जैसे तारों के सहारे बिजली की धारा दौड़ा करती है। इसलिए आरम्भिक अभ्यासी को विचार प्रेषण का अभ्यास अपने घनिष्ट मित्रों या आत्मीयजनों पर करना चाहिये। जिनके साथ शिथिल सम्बन्ध हैं, साधारण परिचय है, भीतर ही भीतर मनोमालिन्य है, ऐसे लोगों पर आरम्भिक प्रयोग कठिनता से सफल होते हैं।

अच्छे साथी का चुनाव विचार संचालन विद्या के आरम्भिक अभ्यास के लिए बहुत जरूरी है। शान्त चित्त, सात्विक स्वभाव, श्रद्धालु तथा आत्मवाद पर विश्वास रखने वाले व्यक्ति का अन्तर्मन ऐसा लचीला होता है कि वह दूसरे के स्वल्प बल से प्रेरित किये हुए

विचारों को भी आसानी से पकड़ लेता है। इसके विपरीत अस्थिर चित्त, अविश्वासी तथा उच्छृंखल व्यक्ति सबल विचारों को भी ग्रहण नहीं कर पाते। यदि अभ्यास के लिए अच्छा साथी मिल जाता है तो सफलता बहुत शीघ्र और स्वल्प काल में ही प्राप्त होने लगती है।

अपने आत्मबल को बढ़ाना चाहिये, चित्त वृत्तियों को पवित्र एवं सात्विक बनाना चाहिये, स्वभाव में सरलता लानी चाहिये और सद्भावों से अन्तःकरण को ओत-प्रोत करना चाहिये। नित्य परमात्मा की उपासना करने से आध्यात्मिक गुप्त शक्तियों का विकास होता है और बढे हुए मनोबल द्वारा विचार संचालन की शक्ति आती है। इसलिए अपने जीवन को तपश्चर्या और ईश्वर परायणता में संलग्न रखना चाहिये।

विचार संचालन विद्या कोई खेल तमाशे की या बाजीगरी की वस्तु नहीं है। यह सुविकसित उच्च अन्तःकरण की एक महत्व पूर्ण क्रिया है। उसे तुच्छ मनोरंजन की बातों में खर्च न करना चाहिये। जिनके लिए भी जो भी विचार भेजे जांय, वे आत्मा को ऊँचा उठाने वाले हों, कल्याण मार्ग पर ले जाने वाले हों। साधारण काम काज की बातें जो एक पोस्टकार्ड से तार या टेलीफून से चन्द पैसे खर्च करके दूसरों के पास भेजी जा सकती है, उनके लिए यह श्रम साध्य शक्ति व्यय क्यों की जाय?

हमें सदा दूसरों के लिएऐसे' आध्यात्मिक भाव प्रेरित करने चाहिये जो उन्हें ऊँचा उठावें, महान् उद्देश्य के लिए दिव्य प्रयोजन के लिए विचार बल का उपयोग होना चाहिये। साधकों को विचार संचालन विद्या की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये, पर उसका उपयोग तुच्छ या नीच प्रयोजन के लिए नहीं, परमार्थ के लिए-स्वपर कल्याण के लिए-करना चाहिये।

# रोगों के भय से मुक्त हुए बिना स्वस्थ रहना असम्भव है । २५

एक भाई लिखते हैं, "गत वर्ष मैं बीमार पड़ा था । बड़ी कठिनता से ईश्वर की कृपा से बच गया, पर तब से कुछ-न-कुछ व्याधि दबा ही लेती है । आठ माह की बात है कि पता नहीं किस रोग से एक विद्यार्थी की आकस्मिक मृत्यु हो गई । फिर मैंने समाचार पत्र में एक और मृत्यु का हाल पढ़ा । इससे मेरा दिल थोड़ा घबड़ाने लगा । गर्मी के दिन थे । शाम के पांच बजे का टाइम था । मैंने सोचा शायद गर्मी के कारण मन घबड़ा रहा है । इसलिए स्नान किया, परन्तु मेरे मन की घबड़ाहट बढ़ती गई । हृदय में धड़कन इतनी बढ़ गई कि मुझे महसूस होने लगा कि मेरा हार्टफेल होने वाला है । वह घबड़ाहट मैं सहन नहीं कर सका । डाक्टर बुलाया गया । उन्होंने अच्छी तरह मेरे शरीर की परीक्षा की और अच्छी तरह देखभाल कर निर्णय किया कि मुझे कोई रोग नहीं है; न कोई दिल सम्बन्धी हलचल ही है । परन्तु मुझे शान्ति नहीं हुई । मैंने दूसरे डाक्टर को बुलाया; पर उन्होंने भी यही कहा कि मेरे शरीर में कोई रोग नहीं है । हृदय की हलचल दो-चार दिन में ठीक हो जावेगी । फिर भी धड़कन बन्द न हुई ।....इसके कुछ माह बाद मुझे दूसरे नगर में जाने का मौका आया । उन्हीं दिनों मैंने समाचारपत्र में पढ़ा कि एक युवक प्रसिद्ध स्टार बनने जाने के लोभ में रेल में कटकर मर गया । यह पढ़ते ही मुझे महसूस होने लगा कि जैसे मेरा हार्टफेल हुआ जा रहा है । धड़कन बढ़ गई । दवाई का उपचार हुआ । फिर सबसे बड़े डाक्टर को बुलाया तो उन्होंने कहा कि तुम्हारा हृदय मुझ जैसा ही सुदृढ़ है, निरोग है । तुम अपने मन से डर और मृत्यु के बुरे विचारों को निकालो । मुसीबत यह है कि मैं इन बुरे विचारों को छोड़ना चाहता हूँ; पर ये बुरे विचार मुझे नहीं छोड़ते और धीरे-धीरे मौत के

मुँह में ले जा रहे हैं।"

वास्तव में अनेक शरीरगत रोगों का कारण हमारा मन होता है। मनुष्य का शरीर उसकी प्रत्येक भावना के प्रतिक्रियात्मक प्रभाव को स्पष्ट करता है। कहा गया है—"मूलं नास्ति कुतः शाखा।" अर्थात् जहाँ मूल या जड़ नहीं, उस पौधे की शाखायें भी नहीं हो सकतीं। रोग का मूल मन में नहीं है, तो भला उसकी शाखाएँ-प्रशाखाएँ कैसे शरीर में पनप सकती हैं?

आप मन में एक विचार ले लीजिये, अच्छा या बुरा। फिर चेहरे को दर्पण में देखिए। जैसा विचार होगा, वैसा ही भाव चेहरे और शरीर के द्वारा प्रकट होगा। शरीर क्रियाओं द्वारा अन्दर के भाव को प्रकट करेगा। मन के विचार के साथ शरीर परिवर्तित होता है, खिलता और मुर्झाता है। गुप्त मन में सञ्चित भाव की प्रतिक्रिया शरीर पर चलती ही रहेगी।

कोई मधुर विचार, कोई प्रसन्नता की बात मन में लाइये, फिर दर्पण में चेहरा देखिये। चेहरे पर खुशी प्रकट हो जायगी, जैसे फूल खिल उठा हो। आनन्द, प्रसन्नता, उन्नति और सफलता का एक भी विचार मन में लाइये। फिर इसका चमत्कार और समूचे शरीर पर देखिये। आप पायेंगे कि वह विकसित हो रहा है। उसके अवयव, रगरेशे खिल रहे हैं, आपको जीवन का रस आ रहा है।

अब किसी बुरे विचार, क्रोध, घृणा, आवेश, वैर, द्वेष को मन में लाइये, आप पायेंगे कि चेहरा उदास हो गया है, या उत्तेजित होकर फड़क रहा है अथवा घृणा से सिकुड़ रहा है, या आवेश से काँप रहा है। इस प्रकार जैसे-जैसे विचार मन में आते जायेंगे, वैसे-वैसे चेहरे के रूप में परिवर्त्तन होता जायेगा। जब आप चेहरे में एक मामूली भाव रखने से इतना परिवर्तन देखते हैं, तब जरा अनुमान कीजिये कि बुरे विचारों से मनुष्य के जटिल शरीर के आन्तरिक अंगों में क्या-क्या सूक्ष्म परि-

वर्तन होते होंगे ? स्मरण रखिये, विचार एक बीज की तरह उत्पादक पदार्थ है। जैसे बीज अंकुर, डण्ठल, पत्तिएँ फल इत्यादि पनपते हैं, वैसे ही एक विचार के साथ अनेक नन्हें-नन्हें सूक्ष्म मनोभावों का उत्थान, पतन होता जायेगा और उसी की प्रतिक्रियाएँ शरीर में प्रकट हो जायेंगी। खेद की बात है कि आधुनिक अस्पतालों में साधारण बीमारी में शल्य-क्रिया तक कर दी जाती है, नाना दवाइयाँ दी जाती हैं, पर रोग और व्याधि के मनोवैज्ञानिक पहलू को बहुत कम चिकित्सक देखते हैं।

श्री शान्तिलाल एन० अमीन ने अपने लेख में लिखा है कि अमेरिकन अस्पतालों में मनोवैज्ञानिक और मानसोपचारक शास्त्रोपचारक के साथ रहकर अनेक अनावश्यक आपरेशनों से रोगियों को मुक्त कर देते हैं। न्यूयार्क के एस० डी० ए० अस्पताल में "सयको सेमटिक मेडिसन" का विशेष विभाग रखा गया है, जहाँ मानसिक रोगी, विक्षिप्त तथा दीर्घकालीन अवधि से चले आ रहे पुराने उदर रोगियों और विक्षिप्तों की एक विशेष प्रकार से चिकित्सा की जाती है। सर्जन की शक्ति और कुशलता की परख इस बात से होती है कि कितने रोगियों को मानसोपचार द्वारा आपरेशन से बचाया गया।

भय, शङ्का निराशा, उद्वेग, ईर्ष्या, क्रोध, आवेश आदि के विषैले विकार हैं, जो अन्दर ही अन्दर शरीर में विषैले रोगों की उत्पत्ति करते हैं। एक तनिक से भय या मानसिक आघात की प्रतिक्रिया शरीर में टूट-फूट कर देती है। जो दृढ़चित्त व्यक्ति होते हैं, तो ऐसे आघात आसानी से सह लेते हैं और उसके विषैले प्रभाव से से जल्दी छुटकारा पा जाते हैं, पर कमजोर, ढुलमुल स्वभाव के व्यक्ति इन आघातों से बुरी तरह विचलित हो जाते हैं। ये आघात उनके स्मृति-पटल पर स्थायी छाप छोड़ जाते हैं और उनकी जटिल और निगूढ़ प्रतिक्रियाएँ दिमाग में निरन्तर हरी रहती हैं। ऊपर जिस मानसिक रोगी का उदाहरण प्रस्तुत किया गया

है, उनके मन में एक के बाद एक इस प्रकार के कई कटु भय के मानसिक आघात पड़े हैं, मौत के स्मरण मात्र से वे अस्तव्यस्त हो जाते हैं। बराबर मौत, बीमारी और संसार छोड़कर चलने की भयमिश्रित मनःस्थिति ने उन्हें हृदय की धड़कन का रोगी बना दिया है। तनिक-सी बुरी घटना देखते या सुनते ही पुरानी बुरी घटनाएँ अन्तर्मन से कूदकर स्मृति पटल पर आ जाती हैं और दिमाग में जहरीलापन उत्पन्न कर देती हैं। यदि खोज की जाय तो प्रत्येक व्यक्ति के मन में बचपन की या यौवन के प्रारम्भ की कोई दुखद घटना मिलेगी, जो उनका पीछा नहीं छोड़ती। घटना का स्मरण ही हृदय की धड़कन का कारण बनता है। बहुत से भय तो मनुष्य के शरीर की आकृति पर स्थायी प्रभाव डाल जाते हैं। आप उनका चेहरा देखकर स्वतः मालूम कर सकते हैं कि ये किसी मानसिक आघात के शिकार हैं।

बुरे विचार विषैले पदार्थों की तरह हैं। जैसे विजातीय तत्त्व निकल जाने से शरीर में शान्ति मिलती है, उसी प्रकार बुरे विचारों को मन से निकाल कर ही मन की शान्ति प्राप्त की जा सकती है और स्वस्थ मानसिक जीवन व्यतीत किया जा सकता है। भय के भी अनेक रूप हैं जैसे निर्धनता का भय, आलोचना का भय, रोग का भय, प्रेम से वञ्चित होने का भय, बुढ़ापे का भय, मृत्यु का भय। इन सभी प्रकार के भयों से साहसपूर्वक युद्ध करना चाहिये।

रोग का भय शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य को बहुत जल्दी नष्ट करता है। मनुष्य का शरीर सौ वर्ष स्वस्थ और सशक्त रहने के लिये बना है। ग्रामीणों को देखिये। वे रोगों के विषय में कुछ नहीं जानते; तो काल्पनिक रोगों की बाबत सोचते भी नहीं, बीमार भी कम होते हैं। हम तनिक से बीमार होते ही मौत और अन्त की अनहोनी कुकल्पनाओं में फँस जाते हैं। ये कल्पनाएँ विषैले बीज हैं। अपनी जड़ें जमा लेते हैं। कालान्तर में जिन रोगों से डरते हैं, वे ही शरीर में

प्रकट हो कर रहते हैं। महामारी, हैजा, सर्प का काटना आदि अनेकों रोगों के हम मिथ्या भय से ही डर कर मरते हैं।

बुरे विचार रखना एक गन्दी आदत है। हीनता की भावना, रोग की कल्पना, पराजय की विचार-धारा, नैराश्य, शङ्का का परित्याग कीजिये। भगवान् कृष्ण ने स्वय ही इस मर्म को स्पष्ट कर दिया है, "याद्दशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति ताद्दशी।" मनुष्य अपनी अच्छी या बुरीभावना के अनुसार ही सिद्धि प्राप्त करता है। यदि वह रोगमूलक कुकल्पना में जकड़ा रहा तो समय आयेगा कि वह रोग के चंगुल में पड़ेगा। निर्बल रोग मूलक मनः स्थितिः स्वयं रोगों के रूप में प्रकट हो जायेगी। अतः बुरे विचारों से सदा दूर रहिये।

अथर्ववेद में कहा है 'त्वं नो मेधे प्रथमा" अर्थात् सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। जिसने अपनी विचार धारा शुद्ध करली है, उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। कानों से अच्छे विचार सुनो और श्रेष्ठ विचार ही मन में रक्खो। अपनी निन्दा या दूसरों की त्रुटियाँ सुनने में समय नष्ट न करो। "मा विदीध्यः" चिन्ता करना व्यर्थ है। चिन्ता में खून सुखाने की अपेक्षा कठिनाई का हल सोचना श्रेष्ठ है।

## स्वस्थ रहने के लिये अन्धविश्वास और भ्रमपूर्ण मान्यताओं का त्याग कीजिये। २६

सोनीपत (पंजाब) के एक प्रोफेसर मुझसे मनोवैज्ञानिक परामर्श करने आये थे। उनकी समस्या संक्षेप में इस प्रकार थी—

"जब छींक आती है, तो मैं यकायक अपना सब काम छोड़ देता हूँ। मुझे अन्दर से ऐसा अनुभव होता है, जैसे कोई अनिष्ट होने वाला है। जैसे जीवन पर कोई भावी आपत्ति आ रही हैं। घर बाजार, कालेज, या मार्ग में कहीं भी क्यों न रहूँ, छींक आते ही रुक जाता हूँ।

प्राय: मुझसे मेरा कार्य स्वयं ही छूट जाता है। जैसे किसी चलती हुई मशीन में ब्रेक लगते हैं और उसके पहिए एक दम रुक जाते हैं, ठीक उसी प्रकार मेरा मस्तिष्क और शरीर अपने कार्य से रुक जाते हैं। यह छींक चाहे मेरी हो अथवा मेरे आस-पास रहने वाले किसी अन्य व्यक्ति की हो, छींक की ध्वनि सुनते ही मैं गुप्त भय, आशंका और विपत्ति के डरावने विचार से भर जाता हूँ। छींक के भय से मैं बड़ा दुखी हूं और और यह डर मुझे आगे नहीं बढ़ने देता। कोई उपाय बताइये।"

जब इन महाशय से अधिक बातें हुई, तो उन्होंने सुनाया कि बचपन में जब कभी उन्हें छींक आती तो उनकी अशिक्षित माता उनके कोमल मस्तिष्क पर भय के विचार जमाया करती थी। वह कहतीं, "छींक भावी आपत्ति का चिह्न है। छींक आते ही हमें सावधान हो जाना चाहिए। छींक आ जाय, तो कोई नया कार्य नहीं करना चाहिए। यदि कहीं जा रहे हों, और छींक आ जाय तो रुक जाना चाहिए, अन्यथा काम सफल नहीं होता। कोई विघ्न अवश्य आ जाता है। सब दुर्घटनाएँ इसीलिए होती हैं कि हम छींकते ही बाहर चल देते हैं। सावधान! छींक आ जाये तो कोई काम न करो।" इस प्रकार के अनिष्ट विचार उनके गुप्त मन में गहराई से बैठ गये थे, जो बार-बार उन्हें अशान्त और दुःखी किए रहते थे। यह कमजोर-मस्तिष्क पर ग़लत संकेतों या सजेशनों का विनाशकारी प्रभाव है।

**गुप्त मन से अन्धविश्वास को निकालिये**—मैंने प्रोफेसर साहब को समझाया कि छींकने और अनिष्ट का कुछ भी पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। यह केवल मनुष्य का अन्धविश्वास मात्र है। छींक तो एक शारीरिक क्रिया है। हम जिस नली से साँस लेते हैं, उसका सम्बन्ध हमारे दिमाग से है। उस नली में जब कभी रुकावट आती है, तुरन्त इसकी खबर दिमाग के पास पहुँच जाती है और तभी जोर की साँस चलती है, जिसे हम छींक कहते हैं। मिर्च, तम्बाकू या और किसी तीखी-चीज की सुरसुराहट से भी छींक आती हैं। जुकाम सर्दी लग जाने से

छींक चलती रहती हैं । सूर्य की ओर नाक में सींक इत्यादि चलाने से छींक आ सकती हैं । लोग सुंघनी सूंघ कर प्रायः छींकें लिया करते हैं ? जब छींक आ रही हो, तब यदि नाक के निचले भाग को जहाँ हड्डी खतम हो गई है, दबा दो तो छींक रुक जायगी, लेकिन आती हुई छींक को रोकना नहीं चाहिए । यह नाक की संचित गन्दगी को साफ करती है । जिस तरह छींकना एक गहरी साँस छोड़ना है, उसी तरह जम्हाई लेना भी गहरी साँस लेने की क्रिया का ही नाम है ।

मैं बार-बार उपर्युक्त तर्कों को भिन्न-भिन्न तरीकों और भिन्न-भिन्न शब्दों में रोगी के सामने दोहराता रहा । स्वयं कई बार उनसे उच्चारण कराया । उनसे कागज पर लिखाया । कई दिन इसी छींक के कारणों पर विचार होता रहा । तब उनके गुप्त मन से छींक सम्बन्धी अन्धविश्वास दूर हुआ । अनेक बार ऊपरी मन से तो वे इस अन्धविश्वास की मूर्खता पर बिश्वास कर लेते थे, किन्तु उनका गुप्त मन मजबूरी से उस गलत विचार को दृढ़ता से पकड़े हुए था ।

जब कोई मानसिक रोगी किसी कल्पित रोग या भ्रम से परेशान होता है तो उसका कारण यही होता है कि वह रोग, विचार, रूढ़ि, जादू, टोना या अन्धविश्वास उसके गुप्त मन में एक जटिल ग्रन्थि का रूप धारण कर लेता है ।

रोगी को जब उसके कल्पित भयों या अन्धविश्वासों की तथ्यहीनता समझाई जाती है, तो वह ऊपरी मन से थोड़ी देर के लिए शुभ संकेत स्वीकार करता चलता हैं पर गुप्त मन में वह भय या दुष्ट विचार जमा ही रहता है । अतः शुभ संकेतों को बार-बार कई दिन तक सच्चे मन और पूर्ण आत्म विश्वास से दुहराना चाहिये ।

मानसिक विकारों की जड़ निर्बल, संदिग्ध और भयपूर्ण विचार में छिपी हुई है । जो व्यक्ति अपने प्रति ऐसे दूषित विचार रखता है, उसके गुप्प मन में अनेक कल्पित और मिथ्या भयों की गाठें बन्धी रहती हैं ।

## आप सदा यह मानिये--

"मुझ में प्रचुरता से धर्म और साहस भरा हुआ है। मुझे मिथ्या विश्वास या मिथ्या भय विचलित नहीं कर सकते। मैं व्यर्थ के रोग, क्रोध, आवेश, भय, निराशा आदि के विचारों को प्रश्रय नहीं देता; मेरा पथ कंटकाकीर्ण और अन्धकारमय नहीं हो सकता।"—यह विचार अपनी मानसिक बुनियाद में जमा लीजिए।

जैसा तुम अपने आपको गिनोगे, जैसा तुम्हें अपनी योग्यता पर विश्वास होगा, जैसे-जैसे तुम्हें अपनी गुप्त आध्यात्मिक शक्तियों पर विश्वास होगा, तुम संसार के लिए अपने आपको जैसे उपयोगी और वज़नदार गिनोगे, वैसा ही भाव तुम्हारे चेहरे पर और तुम्हारे आचरण में दीखने लगेगा।

यदि तुम अपने आपको रोगी मानोगे; तो सावधान! वे ही रोग धीरे-धीरे तुम्हारे शरीर में प्रगट होने लगेंगे। जिस रोग का विचार मन में जम जायेगा, वही रोग शरीर में प्रगट हो जायगा।

मन में एक कमजोर विचार रखना, अन्दर ही अन्दर किसी विशेष बात से डरते रहना, अपने चरित्र में कमजोरियाँ विकार या त्रुटियाँ देखते रहना बड़ा ही खतरनाक है।

सद् विचार मानसिक स्वास्थ्य की आधार शिला हैं। जिसने अपनी विचार धारा शुद्ध करली है, उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है। कहा भी है—

**त्वं नो मेधे प्रथमा—अथर्ववेद ६।१०८।१**

अर्थात् सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। बेकार और बुरी बातों को छोड़कर केवल उपयोगी को ही ग्रहण कीजिये—

**श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन्—ऋग्वेद १।६५।६६**

अर्थात् हंस की तरह गुण-ग्राहक बनिये। अन्ध विश्वास तथा मिथ्या को त्याग दीजिये।

———

# स्वस्थ रहने की एक अनुभव सिद्ध युक्ति-२७

अमेरिका का राक फेलर संसार का सबसे धनी आदमी था। धन का नाम सुनते ही आप सोचते होंगे कि उसी धन के अनुपात में राकफेलर सुखी, तृप्त और आनन्दित भी होगा। उसका जीवन पूर्ण प्रसन्नता से गुजरता होगा और उसे कोई रोग शोक न होंगे।

परन्तु वास्तव में सचाई इसके बिल्कुल विपरीत थी। राकफेलर अपने धन के बावजूद अतृप्त, असन्तुष्ट और दुःखी रहता था। उसे सारे दिन यह चिन्ता लगी रहती थी कि "मेरा धन कम न हो जाय, या मुझे कोई हानि न हो जाय, कोई मेरा धन हड़प लेगा तो मेरा कैसा बुरा हाल होगा? मेरे दिन गरीबी, बेबसी में व्यतीत होंगे, लोग मेरी हँसी दिल्लगी करेंगे, व्यापार में कहीं हानि न हो जाय, रुपया हाथ से न निकल जाय।"

धन की इसी चिन्ता में बेचारा पूंजीपति घुलने लगा। रुपयों से भरपूर, ऐश्वर्य और सम्पदा का मालिक, असीम पूँजी के स्वामी राकफेलर, संसार का सबसे धनी व्यक्ति होने का सम्मान प्राप्त करने वाले डा० राकफेलर ने आर्थिक चिन्ताओं से अपना शरीर जर्जर कर लिया था।

पचास करोड़ डालर के स्वामी होने पर भी उन्होंने एक पल की भी शांति नसीब नहीं की। एक भिखारी निश्चित हो उसकी अपेक्षा अधिक सुख की नींद सोता है। लङ्गोट बांधकर जिन्दा रहने वाला मजदूर हट्टा-कट्टा और प्रसन्न रहता है, पर बेचारे राकफेलर को न शांति थी, न सुख, न स्वास्थ्य, न निरोग शरीर।

अंत में डाक्टरों ने उन्हें साफ बता दिया कि यदि आप अपने रुपये-पैसे की चिंताओं की तरफ से अपना ध्यान बिलकुल नहीं हटायेंगे, तो किसी भी दिन आपके हृदत की गति बन्द हो जायगी।

मरता क्या न करता! मृत्यु का डर तो संसार में सबसे बड़ा

भय है। अब राकफेलर के सामने यह समस्या थी कि या तो अपने धन-सम्पदा का मोह और चिन्ता छोड़े अथवा मृत्यु को वरण करे!

निदान राकफेलर ने सब तरह की चिन्ताओ को दूर हटा कर एक वर्ष के लिए अपने सारे काम धन्धों से छुट्टी ले ली। अपने व्यापार का सारा हिसाब सेक्रेटरी को सोंप दिया। स्वयं निश्चित हो कर आनन्द और संतोष से प्रकृति की गोद में आनन्द और मनोरंजन के लिए निकल गये। वे फूलों के वातावरण में रहते, खेतो में मस्ती से घूमते, ग्रामीणों के साथ हँसते-गाते, मोटा सस्ता भोजन और फल खाते दूध पीते और सङ्गीत में मस्त, रात्रि में गहरी निद्रा में सोते थे।

धीरे-धीरे उनका मानसिक बोझ कम हो गया। रुपये पैसे की चिंता जो गुप्त मन में चिपक गई थी, छूट गई। वे प्रसन्न रहने लगे। वे ईश्वर की शक्ति और दिव्य चिन्तन में लगे रहते। उन्हें अनुभव हुआ कि मनुष्य का गुजारा तो बहुत थोड़े से अनाज, फल दूध, शाक तरकारी से हो सकता है। वह व्यर्थ ही इधर-उधर भ्रांति में हाथ पांव पटकता और चिन्तित रहता है। हम उन बातों का मानसिक बोझ अपने ऊपर लिये फिरते हैं जो वास्तव में कभी पैदा नहीं होती। सर्व-व्यापक, सर्वशक्तिमान परमात्मा स्वयं हमारे कार्य कर रहे हैं। परमात्मा की कृपा से हमारे हर रोग दूर होते हैं। ईश्वर की दुनियाँ है। ईश्वर स्वयं सबको सब कुछ देता है। जो व्यर्थ ही चिंता करते हैं, उनके मन में कुहरा-सा छाया रहता है, ईश्वरीय आदेश कुछ क्षीण हो जाते हैं। इस-लिये हमें अपना कर्त्तव्य करना चाहिये।

राकफेलर ने यही किया। ईश्वरीय प्रार्थना की और निश्चित हो गया। फल यह हुआ कि वह ९३ वर्षों का लम्बा जीवन व्यतीत करता रहा।

जो व्यक्ति चिंता के कारण पचास वर्षो में ही मरने के स्वप्न देख रहा था उसे बहुमूल्य और सुखी जीवन के ४३ वर्ष और मिल गये।

राकफेलर के जीवन का निचोड़ था, "व्यर्थ की चिन्ताओं को

छोड़ो और सौ वर्ष जियो ।"

## कठिन समस्याओं के भी हल निकल आते है –

आप सच मानें, हमारी वहुत-सी चिन्तायें विल्कुल बेकार हैं, जो वास्तव में कभी होने वाली नहीं होती ।

न्यूयार्क के मेयर ला गार्डिया आन इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति हैं । उनका अनुभव वड़े काम का है ।

आप इसे बड़े वड़े सुवाच्य अक्षरों में लिख कर शीशे पर चिपका लें, जहाँ प्रतिदिन उस पर आपकी दृष्टि पड़ती रहे—

'आप निराश न हों । संसार की कटिन से कठिन समस्या का भी हल निकाला जा सकता है ।"

ला गार्डिया न्यूयार्क शहर की अनेक उलझनों में फँसे रहते थे । ये समस्यायें प्राय: बड़ी पेचीदा होती थीं और कभी-कभी वे बुरी तरह परेशान हो उठते थे, पर उन्होंने प्रण किया था कि वे कभी कोई चिन्ता नहीं करेंगे ।

प्राय: वे कहते, "चिन्ता को मन में रखने से मुझे कभी-भी इन समस्याओं को सुलझाने में सहायता नहीं मिली है । फिर बताइये इस बुरी आदत को मन में स्थान क्यों दूं ? चिन्ता से कुछ नहीं मिलता ।"

ला गार्डिया के अनुभव पर विचार कर ही रहा था कि मुझे स्मरण हो आया प्रसिद्ध चीनी दार्शनिक लिन युताङ्ग की प्रसिद्ध पुस्तक "जीने की कला" का । उन्होंने जिन्दगी भर संघर्ष किया और अन्त में लिखा—

"संसार में व्यक्तिगत और पारिवारिक अशांति का मुख्य कारण व्यर्थ की चिन्ता है और चिन्ता का कारण है–अकर्मण्यता तथा कर्त्तव्य-पालन में कोई त्रुटि और शिथिलता ।"

तनिक उनके शब्दों पर गौर कीजिए ।

चिन्ता का कारण हैं अकर्मण्यता अर्थात् कुछ भी काम न करना और अलस्य में पड़े रहना । चिन्ता करने वाला आलस्य में पड़ा रहता

है। वह समस्या को निबटाने का कोई तरीका नहीं सोचता।

चिन्ता की आदत से हम अपना कर्तव्य भी पूरा नहीं कर पाते। चिन्ता करने से शिथिलता आती है। अतः हमें चिन्ता छोड़ देनी चाहिये।

गाँधी जी ने चिन्ता का जो हल निकाला, वह हमें सदा गाँठ में बाँधे रखने योग्य है—

"विपत्तियाँ उन्हें ही प्रायः पकड़ती हैं, जो अपने को गफलत में खोये रहते हैं। जो कल के काम की तैयारी आज से ही शुरू कर देता है, उसे भावी विपत्ति की चिन्ता कैसे सतायगी ?"

ईश्वर को स्वयं हमारे दुख दर्द दूर करने की चिन्ता है। उनके इस संसार में किसी चीज की कमी नहीं है। हमें सदैव उस पर आशा रखनी चाहिए और कर्तव्य करना चाहिए।

# चिन्ता छोड़िये स्वस्थ रहिये

ऐसे अनेक व्यक्ति मेरे देखने में आये हैं जो इसी कारण सदैव बीमार रहते हैं कि वे हद से अधिक अपने शरीर के बारे में सोचा करते हैं। जरा-जरा-सी व्याधियों को बढ़ा-बढ़ाकर दिखाना या देखना इनके स्वभाव का एक विशिष्ट अङ्ग हो जाता है। मामूली दर्द में हाय-हाय कर ये तिल को ताड़ बनाया करते हैं। यदि आप इन वहमी व्यक्तियों का मानसिक विश्लेषण करें तो आप को ज्ञात होगा कि ये चिन्ता के पंजे में हैं और इन्हें सदैव यही डर बना रहता है कि कहीं ऐसा न हो कि हम बीमार हो जाँय। इस बात का भय रखने से कि कहीं हम असफल, नाकामयाब न हो जावें मानव जीवन के किसी शत्रु के शिकार न हो जावें, हजारों मनुष्य अपनी इष्ट सिद्धि से, अर्थात् उन पदार्थों से जिनकी वे चाह करते हैं बिलकुल कोरे हाथ रह जाते हैं।

दूसरे शब्दों में, ये लोग निषिद्ध विषयों के चिन्तन में मग्न हैं। अपने कष्टों, बीमारियों तथा नाश के घातक विचारों की कल्पना से अपना संसार शून्य-सा बना लिया है। उनके मस्तिष्क में धीरे-धीरे दुःख, विपत्ति एवं संशय के विचारों ने अपना सिक्का जमा लिया है और छूत के रोगियों की तरह जिन-जिन व्यक्तियों से इनका काम पड़ता है, उन सब में अपनी खिन्न-वृत्ति और थोथी विचार-धारा फैला रहे हैं।

यदि मनुष्य अपने शरीर की फिक्र और चिन्ता करना भुला दे और तमाम दिन उसी के विषय में सोचना छोड़ दे तो सहस्रों शरीरों की दशा सुधर जाय। प्रकृति का कुछ ऐसा नियम है कि जो लोग अपने शरीर पर बहुत कम ध्यान देते हैं और उस ओर से लापरवाह से रहते हैं, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। सर्वाङ्गपूर्ण स्वास्थ्य तो मानव-जीवन की साधारण और स्वाभाविक दशा है। हमारे अनन्त जीवन के दूसरे छोर तक दुःख, पीड़ा और रोगों का नाम निशान तक नहीं है। इधर-उधर से सुनकर और देखकर हम रोगों के आदी-से हो गए हैं और अब यह समझने लगे हैं कि ऐसा तो होता ही है। वास्तव में हमारे संशय, हमारे भय, हमारी आत्म-विश्वास की न्यूनता—हमारी डरपोक और निषेधात्मक प्रकृति हमारे मन को निषेधात्मक बना कर हमारी निश्चयात्मक, उत्पादक और स्वाभाविक शक्ति को सम्पूर्णतया नष्ट कर देती है और हम बीमार पड़ जाते हैं।

प्रिय पाठक! अपने शरीर की चिन्ता में क्यों पड़े हो? शरीर को यथेष्ट खुराक, व्यायाम, स्वच्छ हवा और धूप—ये तत्व जिनकी उसे परम आवश्यकता है, पहुँचाते रहो, स्वच्छ रखो, फिर जहाँ तक बने उसकी बहुत कम चिन्ता करो। तुम्हारे मस्तिष्क और आत्मा में स्वयं ऐसी आश्चर्यजनक शक्तियाँ मौजूद हैं कि वे शरीर की साधारण सँभाल रखेंगी। अपने विचार और बातचीत में शरीर के निषिद्ध विषयों पर जोर न दो, और रोग व कष्ट की चर्चा करने की तो सौगन्ध ही खा लो। इस

प्रकार अवश्य स्वास्थ्य और वल उत्पन्न कर सकोगे और दुर्बलता तथा रोग को दूर कर दोगे।

हाल ही में अमेरिका के एक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने सुख और शान्ति के लिए तड़फड़ाती हुई मानव-जाति के लिए यह सन्देश दिया है कि अपने विषय में अधिक चिन्ता कर सोचते-विचारते रहना बड़ा घातक है। सैकड़ों उदाहरण और अनुभव-जन्य सिद्धान्तों के वल पर वे इसी महान् तत्व पर आ टिके है कि हमें सुखी रहने के लिए फक्कड़पन और मस्ती की सिलॉसफी का अनुसरण करना चाहिए।

तुम मृत्यु के सब विचार, बीमारी के सब चित्र, संशय की सब बातें हमेशा के लिये मन से बाहर निकाल डालो। ये हमारी उत्पादक शक्ति को नष्ट करते हैं, हमारी अभिलाषा को पंगु और शक्ति-हीन कर देते हैं। अपने स्वास्थ्य के विषय में ऐसी कोई बात न सोचो जिसको तुम नहीं चाहते। अपनी बीमारियों और कमजोरियों पर जोर न दो, और उनके लक्षणों का ख्याल करना छोड़ दो। औषधालय न जाओ, डाक्टरों से जहाँ तक बन पड़े न मिलो, रोगियों को न देखो और कभी दवाइयों के इश्तहार न पढ़ो, न दवाइयों की दुकानों पर जाओ। इस बात को हरगिज अपने मन में स्थान न दो कि तुम बीमार हो या बीमार पड़ सकते हो। हमेशा अपने मन में यही विचार रखो कि हम सफलता के लिए, पूर्ण विजय के लिए सुन्दर स्वास्थ्य के लिए बनाये गये हैं और हमें इनसे कोई विहीन नहीं रख सकता। अपनी अन्तिम विजय पर निश्चयात्मक विचार प्रकट करने की आदत डालो। फिर आपको मालूम होगा कि आपका मनोवाँछित पदार्थ किस तेजी से आपकी ओर खिचता चला आता है, किन्तु यहाँ एक बात का स्मरण रखो कि तुम्हारे उद्‌गारों में तिलमात्र भी संशय न घुसने पावें।

# सुन्दर स्वास्थ्य के लिए सात्विक विचारों का आवाहन कीजिए

क्या आप जानते हैं कि मनुष्य के स्वास्थ्य, यौवन और दीर्घ जीवन का आदि-स्रोत कहाँ है ? यदि वह दूषित होता है, तो वह स्वयं अपने मूल उद्‌गम स्थान से ही होता है और समग्र शरीर को रोगग्रस्त कर डालता है।

मनोवैज्ञानिकों ने नवीन अनुसंधान करके इस सत्य का पता लगाया है कि हमारे स्वास्थ्य का आदि-स्रोत हमारा मन है। वही समस्त जड़ चेतन का कारणभूत है। मानव जीवन और स्वास्थ्य के समग्र पहलू प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से उसी केन्द्र के इर्द-गिर्द चक्कर लगाते हैं। हमारी मानसिक अवस्था तथा विचारों से हमारा भौतिक शरीर निरन्तर प्रभावित होता रहता है। हमारी विशिष्ट मनोवृत्तियों का हमारे विशिष्ट अवयवों पर अच्छा या बुरा परिणाम होता है। अपनी कुटिल या दूषित मनोवस्था के कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिक वेड़ियाँ दृढ़ करता या सुखद उत्साहवर्धक स्थिति से उनसे मुक्त होता है।

जब मन महत्ता तथा विजय के शक्तिदायक प्रेरक विचारों से परिपूर्ण होता है, तब विश्व के शक्ति-कोष से, संसार की चारों दिशाओं से, आस-पास के वातावरण से वह शक्तियाँ खींचता है। इस आन्तरिक मनोवस्था से हमारे जीवन की बाह्य अवस्थाओं का निर्माण होता है। संसार के अनेक अस्थिर और आत्म-विरोधी मन वाले व्यक्ति अपने दुर्बल अन्तकरण और अशुद्ध अन्तरङ्ग के कारण मन के अनेक छोटे-मोटे रोगों, कुवासनाओं और मिथ्या भयों से परेशान रहते हैं। वह इस अहितकर मनःस्थिति के कारण अपनी जीवनी शक्ति क्षय कर डालता है। इसके विपरीत यदि उसी शक्ति को सुखद सृजनात्मक निर्माणकारी पहलू की

ओर लगाया जाय, तो पूर्ण स्वास्थ्य और अक्षय यौवन सुख लूटा जा सकता है।

दूषित मनोवृत्तियों से मानसिक व्याधियाँ और जटिल रोग उत्पन्न होते हैं। इसके विपरीत जहाँ शुद्ध भावना का अक्षय राज्य है, वहाँ स्वास्थ्य, आरोग्य और शान्ति का निवास है। मानसिक संतुलन का नाम सुख और स्वास्थ्य है, इसके विपरीत असंतुलन और अशान्ति का नाम रोग और व्याधि है।

मन और शरीर का अटूट सम्बन्ध है। जो हमारा मन चुपचाप करता है, वही हमारा शरीर प्रकट करता है। मानसिक जर्जरता, मानसिक अशान्ति, थकान, उद्वेग, आवेश, वासना अनिष्ट, कल्पना, चिन्तन की अकल्याणकारी मूर्ति, ईर्ष्या, द्वेष, इत्यादि दूषित मनःस्थितियाँ शरीर और स्वास्थ्य को गिराये रहती हैं। दुष्ट मनोविकार निरन्तर हमें नाच नचाया करते हैं। काम, क्रोध इत्यादि षटिरिपु हमें समूल नष्ट करने पर तुले रहते हैं। अनेक व्यक्ति सर्वत्र इनके मिथ्या प्रलोभनों में ग्रस्त होकर अनेक स्नायु रोगों के शिकार बनते हैं।

एक मनोवैज्ञानिक ने नवीन प्रयोगों से सिद्ध किया है कि अधिक स्वार्थपरता, लोभ, द्वेष, आदि का हमारी प्लीहा और यकृत पर एक विशेष प्रकार का परिणाम होता है। जिस व्यक्ति को गुरदे या मूत्राशय की कोई बीमारी हो, वह यदि किसी के साथ अधिक घृणा करे अथवा किसी पर बहुत अधिक क्रोध करे, तो उसका वह रोग बहुत अधिक बढ़ जावेगा। मत्सर और डाह का हमारे जिगर या पित्ताशय और हृदय पर दूषित प्रभाव पड़ता है। यदि हमारे मन में किसी प्रकार का भय या चिन्ता हो, तो तुरन्त ही हमारे हृदय को ठेस लगती हुई प्रतीत होगी, हृदय की गति या तो तीव्र हो जायगी, या मन्द-पड़-जावेगी। इन दूषित विकारमयी मनःस्थितियों का सामूहिक प्रभाव यह होगा कि हमारी पाचन-क्रिया ठीक तरह न हो सकेगी। इसी प्रकार खिन्नता और द्वेष आदि का भी कुछ ऐसा ही दुःखद परिणाम देखने में आता है। संसार

में हजारों लाखों आदमियों की मृत्यु केवल इसी प्रकार के हृदय सम्बन्धी रोगों से हो गई है, क्योंकि उनका मन सदा अनेक प्रकार की ऊलजलूल कल्पनाओं, मिथ्या, भय, अहितकर चिन्तन में फँसा हुआ है। कलुषित भावनाएँ ही हमारी व्याधियों की जड़मूल हैं। पहले तो मानसिक रोगी इन दूषित कल्पनाओं से युद्ध करता है, पर लड़ते-लड़ते उसकी इच्छा-शक्ति इतनी कमजोर हो जाती है कि फिर स्थायी मानसिक रोग दवा लेते हैं। बुरे विचारों को मन में आने से रोकने की कोई शक्ति ही नहीं रह जाती।

उत्तम स्वास्थ्य के लिये क्या करें ? जिस प्रकार बुरी भावना को मन में रखने से हानि होती है, उसी प्रकार शुभ सात्विक बलदायक विचार मन में रखने और आत्म-संकेत पद्धति का अभ्यास करने से मन में इच्छा-शक्ति फिर बलवती हो जाती है। सद्विचार के अभ्यास से दृढ़ इच्छा-शक्ति का निर्माण होता है। एक बार शक्ति, साहस, उत्साह और पुष्ट विचार आने से, वैसे ही और विचार वातावरण में से खिंचकर आ जाते हैं, और मनुष्य का दूसरा जन्म हो जाता है।

सोचने का नया तरीका यह है कि आप मन में उन भावों को स्थान दें, जिनसे आपका आन्तरिक मानसिक संस्थान मजबूत बने। इसके लिए यह जरूरी है कि आप कुछ ऐसे शब्द चुनकर दोहरायें, जिनके पीछे साहस और उत्साह के मङ्गलकारी भाव जुड़े हुए हैं। जैसे आप प्रसन्नता के भाव की आदत डालिये और अनेक बार चुपचाप अपने आप से कहा कीजिए, "मैं प्रफुल्ल हूँ। मेरा रोम-रोम हर्षित है। मेरा उत्साह कभी मन्द नहीं पड़ता। जिन्दादिली मेरा मुख्य गुण है। मेरा कण-कण आन्तरिक प्रसन्नता से उल्लसित है। मैं सदा पर्याप्त आनन्द और आशा के मधुर वातावरण में विचरण करता हूँ।" इन शब्दों को ऊँची ध्वनि से भी दुहरा सकते हैं। कहीं लिखकर ऐसे स्थान पर रख सकते हैं, जहाँ दृष्टि बार-बार पड़ती रहे।

इसी प्रकार "हिम्मत" शब्द को सदा साथ रखिये। इस एक शब्द

के साथ आपके मन में बहादुरी, विश्वास, आत्म-निर्भरता, स्थिरता, लगन और निश्चय आदि गुण बढ़ जायेंगे। धैर्य नामक गुण के अभ्यास से सहनशीलता, सन्तुलन और सुस्थिरता आयेगी।

एक उत्तम भाव है स्वास्थ्य का भाव—"मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मेरा अङ्ग-अङ्ग अपना निर्धारित काम पूर्णता से करता है। मुझ में तेजस्विता का भाव पर्याप्त है। मेरा जीवन क्रियाशील है। मैं कठोर जीवन व्यतीत कर सकता हूँ। मैं शक्ति-सम्पन्न हूँ। मैं पूर्ण हूँ। मैं दीर्घजीवी हूँ।"—इन संकेतों का दृढ़ता और धीरे-धीरे उच्चारण करने से स्वास्थ्य का भाव स्वतः प्रकट हो जायगा।

इसी प्रकार ईमानदारी के भाव को विकसित कीजिए। बुद्धिमत्ता, समझदारी, लगन, सावधानी, विज्ञता और सतर्कता के गुणों का अभ्यास करते रहिये। जितनी देर तक आप इन स्वास्थ्यप्रद भावों को मन में स्थान देंगे, उतनी देर तक नव-निर्माण का कार्य होता रहेगा। शान्ति-पूर्ण जीवन बिताने के लिये प्रार्थना, प्रेम और स्नेह के मधुर भावों का चिन्तन किया कीजिये। आपकी जिह्वा जिस शब्द को दुहरायेगी और मन जिसे मजबूती से पकड़े रहेगा, वही भाव चरित्र में प्रकट हो जायगा। दीर्घजीवी महापुरुषों के स्वास्थ्य का यही रहस्य था कि वे उत्तम भावों और मजबूत विचारों पर ही अपनी समग्र मानसिक शक्तियों को एकाग्र किये रहे। अपने लक्ष्य के अलावा विरोधी विचारों को मस्तिष्क से बाहर फेंकते रहें। यह अभ्यास आप भी कर सकते हैं।

# मानसिक रोगों से दूर रहना हो तो विचारों की जटिलता कम कीजिए

आप शरीर की दृष्टि से तगड़े हैं। शरीर में कोई विकार नहीं दीखता आपके समस्त अवयव पूर्ण रूप से अपना कार्य कर रहे हैं। शरीर बुखार, पेचिश, दमा, सिर दर्द, निर्बलता आदि कोई भी रोग नहीं है। देखने में बाहर से तन्दुरुस्त प्रतीत होते हैं।

पागलखाने में जाकर देखिए। शरीर से हट्टे-कट्टे मजबूत अनेक व्यक्ति आपको दिखाई देंगे। यदि आप उनसे कुश्ती लड़ें, तो वह अपनी शारीरिक शक्ति से अनेक बार आपको पछाड़ सकते हैं। वे बार-बार खिड़की से लगे सीखचों से जूझते हैं। कुछ के जंजीरें भी बँधी हुई हैं। वे अपनी शारीरिक शक्ति से जंजीरों को तोड़-फोड़ सकते हैं। मनुष्य की निर्मम हत्या कर सकते हैं। कभी चीखते हैं, कभी चिल्लाते हैं, कभी हीन भावना से प्रताड़ित हो डरते हैं। रोग विफलता और मृत्यु के विचार उनके मन में हरदम तूफान मचाये रहते हैं। पागलखाने के अधिकारियों को यह विश्वास नहीं कि वे जो कुछ करेंगे, ठीक होगा।

लेकिन हम में से प्रत्येक व्यक्ति मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ नहीं है। हम चाहें पागलखाने में न भेजे जायँ, पर अनेक बार हम ऐसे अजीब और विकृत कार्य कर बैठते हैं, जिनसे हमें मालूम होता है कि जरूर हमारे मन में कोई मानसिक कमजोरी बैठी हुई है। व्यर्थ ही हम, क्रोधित या उत्तेजित हो उठते हैं, भय से काँपने लगते हैं, भावुकता से भर जाते हैं।

**अजीब मानसिक परेशानी**--हमारे शहर के एक परचून के दूकानदार को एक अजीव-सी मानसिक बीमारी थी। वह अपनी टोकरियों

की वस्तुएँ एक टोकरी से दूसरी में सारे दिन उलटते रहते थे। ऐसा दीखता जैसे कुछ खोज रहे हों। बहुत अध्ययन के उपरान्त मालूम हुआ कि वे खुफिया चोरों से सस्ता चोरी का गहना खरीदते रहे। वे पुलिस के भय से उसे अनाज की बोरियों या डलियों में छिपाते रहे थे। पुलिस का भय उनके गुप्त मन में बैठ गया था। मुकदमे के भय से वे सदा अपने द्वारा छिपाये हुए सोने को ढूँढ़ते ही रहते थे। भ्रांति-रोग मानसिक रोगों में सबसे भयङ्कर रोग है। भय मनुष्य के जीवन का सबसे बड़ा शत्रु है। एक दिन हमने बड़े विस्मय से सुना कि डर कर उन्होंने उस्तरे से गला काटकर आत्म-हत्या कर ली है। भीति-रोग उनकी आत्म-हत्या का कारण बना। इस मानसिक रोग ने उन्हें अन्दर से खोखला बना दिया।

श्री गुलाबचन्द विश्वकर्मा ने मानसिक क्षोभ द्वारा कैसे स्वास्थ्य खराब होता है, इसका वि तृत उल्लेख किया है। आप लिखते हैं, "आज लोगों को जो नई-नई बीमारियाँ होती हैं, उनके मूल में कोई न कोई आन्तरिक क्षोभ (या दुःख, संशय, भय, उत्तेजना, लोभ, चिन्ता आदि) छुपा रहता है। टी० वी०, गठिया, पागलपन, सिर दर्द, सिर का चक्कर देना, सोते समय उठकर चलने लगना या बड़बड़ाते रहना, एकाएक चौंक उठना आदि मानसिक रोग आज बूढ़ों की अपेक्षा नवयुवकों में अधिक देखे जाते हैं। पहले यह रोग सर्दी, गर्मी, दूषित रक्त, नम जमीन पर सोने आदि के कारण हुआ करते थे, परन्तु आजकल मन में बसी हुई क्षोभ, ईर्ष्या, डाह, द्वेष, चिन्ता, भय, शङ्का, क्रोध, पारिवारिक कलह आदि के कारण नाड़ी-मण्डल में उत्पन्न तनाव इसके फलस्वरूप होते हैं।"

हमारे यहाँ एक पागल वृद्धा हैं। वे सारे दिन पागलपन में धार्मिक श्लोक दुहराया करती हैं। पूजा का अभिनय करती रहती हैं। बार-बार अपने मरने की बातें कहकर सबसे अपने कसूरों की क्षमा माँगती रहती हैं। वास्तव में घर की बड़ी सम्पत्ति के नाश और दो बाल-बच्चेदार

कन्याओं की मृत्यु से उनका मानसिक संस्थान विकृत हो गया है । पूजा-पाठ द्वारा उन्होंने अपने मानसिक दुःख को भूलने का प्रयत्न किया, पर विफल रहीं । पागलपन में पुरानी स्मृतियाँ मानस पटल पर लाया करती हैं । सारे दिन दुःख, निराशा और ग्लानि में डूबी रहती हैं ।

**कल्पना-जन्य मानसिक परेशानियां**—श्रीमती शान्ता कुमारी जैन ने अपनी एक सहेली की मानसिक व्याधि का इन शब्दों में उल्लेख किया है—

"एक बहन में मैंने एक विचित्र प्रकार का रोग देखा है । वह जब भी किसी रोगी के पास जाती है, तब उसका रोग देखकर उन्हें यह अनुभव होने लगता है कि वह स्वयं इस रोग की शिकार हैं । देखे हुए रोग के लक्षणों को वह कल्पना से अपने शरीर में अनुभव करने लगती हैं और यह समझने लगती हैं कि प्रत्येक लक्षण उन पर सही उतरता है । थोड़े दिन तक वह एक रोग के भ्रम में घिरी रहतीं तथा फिर जहाँ वह किसी दूसरे रोगी को देखतीं, पिछला रोग कुछ भूल-सी जातीं, तथा नया रोग उनके मस्तिष्क में छा जाता ।

एक बार तो इस भ्रम-रोग का बड़ा भीषण दुष्परिणाम हुआ । वे किसी रक्तचाप के रोगी को देखने आईं । मार्ग में उन्हें लगा कि इस रोग के सब लक्षण उनमें विद्यमान हैं । बस फिर क्या था, वहम के कारण चारपाई की शरण तो उन्होंने ली ही, खाना-पीना भी आधा कर दिया । बस सारे दिन यही कहती रहतीं—"मेरा चेहरा सुर्ख हो रहा है । मेरा सर घूम रहा है । मेरा हृदय बुरी तरह धड़क रहा है । बस मेरा ब्लड प्रेशर बढ़ रहा है ।"

जब उनका भय चरम सीमा पर पहुँच गया, तब उन्हें एक विशेषज्ञ को दिखाया गया । उसने पूरी तरह शरीर की परीक्षा करके बताया कि रक्तचाप ऊँचा नहीं वरन् उन्नीस-बीस कम ही है । फिर भी डाक्टर की बातों पर उन्हें तब विश्वास हुआ, जब वह स्वयं रक्तचाप देखना सीख गईं ।"

**प्रेम-व्याधि : एक मानसिक जटिलता**—उपर्युक्त उदाहरणों में मानसिक परेशानियों के बहुत से और भी जोड़े जा सकते हैं। श्री गुलाब चन्द विश्वकर्मा ने प्रेम-व्याधि जैसे एक मानसिक दुःख का उदाहरण निम्न प्रकार लिखा है—

"एक बीस वर्षीया युवती परम सुन्दरी थी। अपनी विद्या-अध्ययन के सिलसिले में उसका परिचय एक ऐसे युवक से हो गया जिसकी आयु पच्चीस वर्ष की थी और जिसे हाल में ही एक अच्छा सरकारी पद भी मिल गया था। वह युवती उस युवक को बहुत चाहती थी और वह युवक भी उसे बहुत चाहता था। परिचय के दो सप्ताह के भीतर ही दोनों में घनिष्ठता हो गई और वे ऐसा अनुभव करने लगे कि एक दूसरे को हृदय से प्यार कर रहे हैं। दोनों साथ-साथ अपने अवकाश का समय परस्पर मनोविनोद में बिताते। दोनों के मन-सागर में प्रेम की बहारें हिलोरें लेतीं। युवती ने उस युवक को अपना भावी पति मान लिया था और उस युवक ने उसे भावी पत्नी। लगभग पाँच महीने तक दोनों में गाढ़ा प्रेम रहा।

किन्तु उसके बाद क्रमशः युवक में परिवर्तन दीख पड़ने लगा। युवक वायदे टालने लगा। वह कुछ कटा-कटा-सा रहने लगा। अन्त में उसने कह दिया कि उसका विवाह एक अन्य युवती से सम्पन्न हो गया, अतः मैं इस प्रेम-लीला को समाप्त करना चाहता हूँ। सुनते ही भावी दम्पत्य जीवन का सुख स्वप्न देखने वाली उस युवती पर मानो वज्रपात हो गया। उसकी आशा-लता कुम्हला गई। उस दिन से वह अपने स्वप्नों का संसार उजड़ा हुआ देखकर खोई-खोई-सी रहने लगी। उसकी भूख-प्यास सब जाती रही। शरीर पीला पड़ने लगा। वह सदा चिन्ता में खोई खोई-सी रहती थी और रह रहकर रोने लगती थी। एक दिन एकाएक उसके मुँह से ढेर-सा खून आया और फिर उसका सिलसिला बराबर जारी रहा। चिकित्सक ने बतलाया कि उसे मानसिक दुःख के कारण टी० बी० हो गयी है।

वास्तव में इस प्रकार के असंख्य मानसिक रोगी हमारे आस-पास के परिवारों में, घरों, पड़ोस में भरे पड़े हैं। आजकल का संघर्षमय जीवन मानसिक स्वास्थ्य के लिए बहुत सङ्कट का है। हमारे समाज के नियन्त्रण, महँगाई, जाति-पाँति का भेद और सभ्यता के बन्धनों ने मनुष्य के मानसिक जीवन में अनेक विकृतियाँ उत्पन्न कर दी हैं। मानसिक दृष्टि से हम पूर्ण स्वस्थ नहीं हैं।

**अपनी मानसिक गुत्थियों को जानिये**—या तो स्वयं अपने बाह्य और आन्तरिक जीवन का अध्ययन कीजिये अथवा किसी योग्य मानसिक चिकित्सक को अपनी समस्याएँ समझाइए। स्मरण रखिए, यदि आप अपनी कमजोरियों को नहीं जानते, तो ये मानसिक विकृतियाँ रोगों के रूप में बदल कर आपको परेशान रखेंगी। आपका व्यवहार अजीब-सा प्रतीत होगा। चिन्ता, वहम, भय, लोभ इत्यादि दुष्ट मनोविकार दब कर या उमड़कर मानसिक रोग पैदा करते हैं। हमें अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये अधिक शारीरिक या मानसिक श्रम करना पड़ता है। सामर्थ्य से अधिक थककर हम मानसिक रोगी बनते हैं। आज की विषम परिस्थितियों के अनुकूल हमारा न बदलना हमारे मानसिक अस्वास्थ्य का मूल कारण है।

दुःख तो यह है कि अस्वस्थ होने का कारण हमें ज्ञात नहीं हो पाता। जब मानसिक विकृतियाँ कम होती हैं या प्रारम्भ ही होती हैं, तब तो हमें ज्ञात नहीं होतीं। जब वे बढ़कर पागलपन का रूप धारण करने लगती हैं, तभी हमें उनका ज्ञान होता है।

आवश्यकता यह है कि जैसे ही कोई मानसिक विकार प्रारम्भ हो, तभी से उसकी रोकथाम और उचित इलाज होना चाहिए। ऐसा वातावरण बनाया जाय जिससे हमारी विकृतियाँ प्रचण्ड रूप धारण न करें। मानसिक विकृतियों को निकलने के लिए स्वस्थ मार्ग खोले जायें। उद्वेग या भावुकता इत्यादि से बचा जाय। कल्पित भयों से मुक्त रहा जाय। हमारी अधिकांश चिन्ताएँ कल्पित होती हैं। हम ऐसी बातों के लिये

परेशान रहते हैं जो जीवन में कभी नहीं घटतीं। हम व्यर्थ ही व्याकुल या उत्तेजित होकर अपने जीवन को खतरे में डाल लेते हैं, जब कि अनेक संकट स्वयं ही आते हैं और टल जाते हैं।

**अपनी भ्रान्तियों को छोड़िये**--आपको रोगों का या बुरे नक्षत्रों, फूटे भाग्य का भ्रम तो नहीं हो रहा है ? आपको देखे सुने या पढ़े रोगों का वहम तो नहीं है ? आपको ज्वर, सिर दर्द, भूख का भ्रम तो नहीं है ? मोटापा से तो परेशान नही हैं ? यदि आप अपने किसी कार्य से प्रशंसा नहीं पाते हैं, तो क्या आप अचानक दुःखी तो नहीं हो जाते हैं ? क्या आप अन्दर ही अन्दर परेशान-से रहते हैं ?

आप सोच कर देखिये, क्या आप संकट और व्यापार में हानि, किसी प्रियजन की मृत्यु या परीक्षा में फेल होने पर उस मानसिक कष्ट को आसानी से सहन कर लेते हैं ? या उस आघात को सहन न कर सकने से परेशान हो उठते हैं ?

अपने जीवन की भूल पर केवल पछताना ही जानते हैं, या संसार से भाग कर आत्म-हत्या की बात सोचते हैं ?

क्या आप काफी उम्र के होने पर भी बचपने की कच्ची आदतों से घिरे हुए हैं ? छोटे-मोटे कष्टों से बुरी तरह विक्षुब्ध और त्रस्त हो उठते हैं ?

क्या आप दूसरों को सदा शक शुबे की संशयात्मक दृष्टि से देखते हैं ? आप में विकलता से पैदा होने वाली ग्लानि तो नहीं है ?

उपर्युक्त सभी प्रश्नों पर विचार करने से यदि आप अपने व्यक्तित्व में कोई मानसिक कमजोरी या विकृति पाते हैं, तो आपको सावधान हो जाना चाहिये। मानसिक रोगों से बचने के लिए आप निम्न सुझावों से लाभ उठायें।

**विवेक को जीवन का आधार बनाइये**—आप भावना की अपेक्षा अपनी बुद्धि, विवेक, तर्कशक्ति, भले-बुरे की पहिचान से जीवन को चलाइये। किसी कार्य या वस्तु के लिए आपका मन चाहे कितना ही

क्यों न ललचाये, मिठाई खाना, सिग्रेट, पान या सिनेमा देखने को कितना ही मन क्यों न करे, अपनी सर्वोत्कृष्ट शक्ति, विवेक से पूछ कर ही पग आगे बढ़ाइये। जिस बात को विवेक उचित कहे, उसको कीजिए या अपने से अधिक समझदार विद्वानों से सहायता लीजिए। चिकित्सकों से परामर्श कीजिये। भावुकता मनुष्य की एक भारी कमजोरी है। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप भावुकता के क्षणिक आवेश में कुछ कर बैठ रहे हैं, जिसका भविष्य में दुष्परिणाम हो सकता है। सोच-समझकर ही किसी विचार या तथ्य को ग्रहण कीजिए।

विवेक हमारे जीवन को सही मार्ग में संचालित करने वाला पथ-प्रदर्शक है। यह वह दिव्य ज्योति है, जो पथ-भ्रष्ट होते हुए व्यक्ति को सही कर्त्तव्य मार्ग पर लाती है। जब अर्जुन भावुकतावश अपने कर्त्तव्य को भूलने लगे थे, तो भगवान् श्रीकृष्ण के विवेक ने ही उन्हें कर्त्तव्य दिखाया था। आप विवेक के नेत्रों से देखेंगे, तो आपको अपने अनेक रोग और शोक निःसार निष्प्रयोजन, क्षणिक और शीघ्र ही दूर होने वाले प्रतीत होंगे।

विवेक हमारी भ्रान्त, असद् तथा गलत धारणाओं का खण्डन करता है। यह सामाजिक रीति और प्रवचनों के, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक प्रथाओं के दोषों और त्रुटियों को प्रकाश में लाता है।

जैसे-जैसे हमें अपनी व्यर्थ की भ्रान्त धारणाएँ, थोथी भ्रान्तियों का ज्ञान होता है, वैसे-वैसे हमारी अनेक भ्रामक तथा तर्कहीन बातें क्रमशः छूट जाती हैं। सदोष विचारों के परित्याग से दोषपूर्ण कार्यों को करने या दुःखी होने की संभावना कम हो जाती है।

विवेक हमारे परम कल्याण और सर्वोच्च व्यक्तिगत और सामाजिक हित को स्पष्ट करता है। इसके शुभ्र प्रकाश में हमें अपने विश्वासों की अच्छाई और बुराई का ज्ञान होता है। विवेक हमारे जादू टोना तथा अन्य अन्ध-विश्वासों को दूर कर उचित आचरण की ओर लगाता है। विवेक ही सच्चा धर्म है। विवेक के नेत्रों से देखने से मनुष्य की अनेक

मानसिक परेशानियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं। कल्पित दुःख, मानसिक कष्ट, अन्ध-विश्वास विवेक के प्रकाश से दूर होते हैं।

**मन के द्वार खुले रखिये**—जब व्यक्ति संकुचित दृष्टि से देखता है, तब वहम उत्पन्न होता है। संकीर्ण मन से सोचने से हम बीमार पड़ते हैं। अतः नये ज्ञान और विस्तृत भावना विकसित कीजिए। खुले मन से सोचिये। जातीयता, प्रान्तीयता, या किसी संकुचित रीति-रिवाज की दृष्टि से सोचने पर आदमी को संसार में बहुत-सी कमजोरियाँ दिखाई देती हैं और वह बीमार पड़ता है। लेकिन उदार बनने से वह संकुचितता की कोठरी में से निकलता है। अतः जीवन में सदा नई बात सीखने की भावना रखिये। आत्म-विस्तार की मनोवृत्ति से लाभ होता है। नये परीक्षणों के लिए तैयार रहिए। खान-पान, यात्रा, मनोरंजन, पूजा-पाठ, नई पुस्तक पढ़ना, नये स्थानों पर टहलने, नये व्यक्तियों से मिलने पर प्रचुर लाभ होता है।

**कठिन परिस्थितियों में प्रसन्न रहने की अनुरूपता विकसित कीजिये**—आप प्रायः कठिन परिस्थिति आते ही अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। विरोध में आपका व्यक्तित्व असन्तुलित हो जाता है। उससे चिन्ता बढ़ जाती है और घबराट पैदा होती है। अपने मन में झाँक कर देखिए कि कहीं आपको कल्पित भ्रम या व्यर्थ की चिन्ता तो नहीं है। कहीं ऐसा तो नहीं कि आप किसी अन्तरर्द्वन्द्व से पीड़ित हों, उससे छुटकारा पाना चाहते हों, या अन्दर ही अन्दर घुटे जा रहे हों। इन चिन्ताओं का आपके शरीर पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इनके भयानक दुष्परिणामों में त्वचा रोग भी है। कठिन परिस्थितियों में प्रसन्न रहने की आदत डालिए।

**भावनात्मक परिपक्वता विकसित कीजिए**—हमारी असंख्य मानसिक बीमारियों का कारण यह है कि हम भावना की दृष्टि से बालक बने रहते हैं। हम तनिक-सी कठिनाई पड़ने पर बच्चों की तरह अस्त-व्यस्त, विचलित, चिन्तित या दुःखी हो उठते हैं। हम उस परिस्थिति से,

डट कर मुकावला नहीं करते । हम अपनी परिस्थिति का विश्लेपण नहीं करते । वालक, युवक, प्रौढ़, वृद्ध इन सबको मानसिक अवस्थाओं में जो भावात्मक परिपक्वता आनी चाहिये, वह हमें प्रतिदिन विकसित करनी चाहिए । वृद्ध को प्रौढ़ से, प्रौढ़ को युवक से, युवक बच्चों से अधिक साहसी होना चाहिए । विरोधी परिस्थिति में अधिक साहस का परिचय देना चाहिए । बच्चों की तरह तनिक-सी मुसीवत को पर्वत की तरह दुर्वह नहीं समझना चाहिए । तनिक-सी विषमता या कटुता से उत्तेजित नहीं हो उठना चाहिए । अति भावुकता भारी कमजोरी है । इससे साव-धान रह कर मानसिक संतुलत, विचारों की शान्ति कायम रखना चाहिए ।

**दूसरों का हित दृष्टि में रखकर व्यवहार करें**—स्वयं हम अपने आप में पूर्ण नहीं हैं । दूसरों के सहारे, सहयोग, मित्रता और परा-मर्श से हमारी कठिनाइयाँ दूर होती हैं । आप यथासंभव दूसरों से मिलें, उनकी जो कुछ वन सके सहायता करें और उनका हित भी करें । इससे हमारी ईर्ष्या और अहंकार का नाश होता है ।

मन को सदा शान्त अवस्था में रखिए । शान्त भावना के अभ्यास से मनुष्य संशयात्मक वृत्ति से मुक्त रहता है । शान्त दृष्टिकोंण हमको वीमारी, रोग, शोक, चिन्ता और व्याधि के विचारों से मुक्त रखता है ।

एक विचारक की वहुमूल्य सम्मति याद रखिए. "शान्त भावना का अभ्यास अपने आपको शान्ति चित्त ध्यान में लाने से, शान्त ज्योति का अपने हृदय में ध्यान करने से, ऊषा दर्शन से अथवा मन के श्वास प्रच्छ्-वांस पर एकाग्र करने से होता है । जो मन को शान्त अवस्था में रखने के रहस्य को जान लेता है, वह त्रिकाल में भी सदा शान्त रहता है । इस प्रकार वह विचार और भावों के प्रवाह से ऊपर उठ आता है ।" इस अभ्यास से मनुष्य निरोग रहता है ।

**बुद्धि स्थिर इस प्रकार कीजिए**—मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ रहने का नुस्खा भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में स्पष्ट कर दिया है । यदि

मनुष्य स्थितप्रज्ञ रहे तो निःसन्देह वह पूर्ण स्वस्थ रह सकता है। स्थितप्रज्ञ रहने का अभ्यास करते रहना चाहिए।

स्थितप्रज्ञ कौन है?

दुखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः।
वीतराग भय क्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते॥

—गीता २।५६

जो व्यक्ति दुःखों की प्राप्ति में उद्वेग रहित है, जिसका मन सुखों में उन्मत्त नहीं होता, जिसकी छोटी-बड़ी इच्छाएँ दूर हो गई हैं, जिसके भय, क्रोध, राग इत्यादि नष्ट हो गये हैं, ऐसे व्यक्ति को स्थिर बुद्धि कहते हैं। ऐसा व्यक्ति ही मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ और संतुलित कहा जा सकता है।

त्वं नो मेधे प्रथमा।

—अथर्ववेद ६।१०८।१

सद्बुद्धि ही संसार में सर्वश्रेष्ठ वस्तु है। जिसने अपनी विचारधारा शुद्ध कर ली है और मानसिक विचार त्याग दिये हैं, उसने सब कुछ प्राप्त कर लिया है।

याद रखिए—"न वा उ एतन्म्नियसे न रिष्यते।"

—यजुर्वेद २३।१६

आपकी आत्मा न कभी मरती है, न उसकी कभी क्षति होती है। अतः सन्मार्ग पर चलते हुए मरने से मत डरो, विपत्तियों से मत घबराओ, हानि की भी चिन्ता मत करो। सब प्रकार के काल्पनिक भयों से मुक्त रहो।

अग्निनां अग्निः समिध्यते।

—ऋग्वेद १।१२।३

याद रखो, अग्नि से अग्नि और आत्मा से आत्मा प्रदीप्त होती है। स्वस्थ और दीप्तमान आत्माओं के सम्पर्क में, उत्तम धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन कर, पवित्र स्थानों में रह कर, यज्ञ, पूजन, भजन, कीर्तन द्वारा

अपनी आत्मा को प्रदीप्त करो। धर्म में विश्वास लाने, धार्मिक कृत्यों को करने और धार्मिक जीवन व्यतीत करने से मनुष्य मानसिक विकारों से मुक्त रहता।

# मानसिक आरोग्य के लिए आनन्दमय विचारों पर मन केन्द्रित कीजिए

शुक्रोऽसि आजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि।

—अथर्ववेद

"तू शुद्ध, तेजस्वी, आनन्दमय एवं प्रकाशवान् है। इसलिए हे जीव! पतित होकर कुमार्गगामी मत बन। प्रसन्न रह!" मनुष्य दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है, एक तो वे जो कुछ न होने पर भी प्रसन्न रहते हैं, दूसरे वे जो सब कुछ होने पर भी उदास और खिन्न रहते हैं।

प्रसन्न रहना या उदास रहना संसार की वस्तुस्थिति, घोर और विषम परिथिति पर इतना निर्भर नहीं है, जितना मनुष्य की स्वनिर्मित आदत के ऊपर। आनन्द, प्रसन्नता, विषाद, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध अदि मानसिक अवस्थाएँ हैं जो हम स्वयं ही बनाया करते हैं। हमारी प्रत्येक भावना एक आदत है जिसे खुद हमने अभ्यास द्वारा बनाया है।

वह मनुष्य बड़ा भाग्यवान है, जिसने सदा अच्छी और विषम सांसारिक स्थिति में प्रसन्न रहने की आदत बनाई है। प्रसन्नता, सन्तोष,

उल्लास, हर्ष, उत्साह वे मनः स्थितियाँ हैं जो मनुष्य के मानसिक आरोग्य की द्योतक हैं।

जिस व्यक्ति ने उदासी की आदत बना ली है, वह एक ऐसे पिशाच के पल्ले पड़ गया है जो सदा सर्वदा उसकी जीवन-शक्ति को चूसता रहेगा। इस आदत से परेशान रहने वाला व्यक्ति मीठे पदार्थ को भी कड़वे रूप में देखेगा, उसे प्रिय और उपयोगी वस्तु भी अप्रिय और अनिष्ट-कारी ही दिखाई देगी। उसे संसार घोर दुःख में डूबा, नाना व्याधियों से परेशान दिखाई देगा। यदि किसी ने उदासी का काला चश्मा नेत्रों पर लगा लिया है, तो उसे समस्त समाज, मित्र, नागरिक, जीव उदासी की काली छाया से ढके हुए प्रतीत होंगे। वास्तव में बात यह है कि मनुष्य बाहरी वातावरण से इतना परेशान नहीं रहता, जितना स्वयं अपने मन की दुःखपूर्ण और गलत आदतों से परेशान रहता है। संसार स्वयं दुःख-पूर्ण नहीं है। वह तो गलत मानसिक स्थिति और त्रुटिपूर्ण दृष्टिकोण से देखने का दुष्परिणाम है।

ईश्वर स्वयं आनन्दमय है। उसमें उल्लास. उत्साह प्रसन्नता है। आप भारत के देवी-देवताओं के चित्र देख जाइये। सभी का मुखमण्डल आन्तरिक सद्‌भाव की आभा से देदीप्यमान है उससे अमित आनन्द बरस रहा है। दूसरे शब्दों में वे चुपचाप हमें यह मौन सन्देश दे रहे हैं—

'संसार के स्त्री-पुरुषो ! सदा आनन्दित रहो। चिन्ता एक क्षणिक मानसिक अवस्था है। उसे दूर करने का उपाय हम से सीखो ! हमारे मुख-मण्डल से जो आनन्द की वर्षा हो रही है,उसे तुम भी अपने स्वभाव में धारण करो। संसार आनन्द का घर है। प्रकृति में चारों ओर से आनन्द की रसधारें प्रवाहित हो रही हैं। आनन्द के इस निरन्तर प्रवा-हित होने वाले स्रोत को अपने अन्दर धारण करो। संसार आनन्दमय है। तुम स्वयं आनन्द की राशि हो। आनन्द से ही संसार की सृष्टि हुई है। जीवन में प्रतिदिन साँस लेते, खाते-पीते उठते-बैठते दिन रात अपने मुख-मण्डल से आनन्द की किरणें विकीर्ण करो।"

प्रसन्नता का स्वाभाव निरन्तर खुशी की मनःस्थिति में रहकर उत्पन्न किया जा सकता है। जो चेहरे की खिन्नता से मुक्ति पा लेगा, वह मन से क्षोभवृत्ति को दूर कर सकेगा। चेहरे की प्रसन्नता का सम्बन्ध पवित्र और आनन्दमय विचारों से है। स्थायी रूप से ईश्वर और प्रकृति के आनन्दमय रूप को मन में धारण कर लेने से वैसी ही मुख-मण्डल की स्थिति हो जाती है।

आनन्द ईश्वर का एक महत्वपूर्ण गुण है। यह आप में प्रचुर मात्रा में भरा हुआ है। आपकी आत्मा ईश्वरीय गुणों से परिपूर्ण होने के कारण स्वतः आनन्दानुमुख होती है। आनन्दमय रहना तो हमारी प्रकृति का एक अंश है। प्रसन्न रहने से आत्मा तृप्त रहती है, उदास रहने में मानसिक ग्रन्थियों के ऊपर जोर पड़ता है। उदास स्वभाव रखने से अन्दर से नाना प्रकार के विष निकला करते हैं, जो वातावरण को दुःख-पूर्ण वना देते हैं। उदासी का कारण कुविचार और कुकर्म हैं। उनका परित्याग कर देना चाहिए—

अप दुष्कृतान्य जुष्टायारे।

—ऋग्वेद

"कुविचारों और कुकर्मों से दूर रहो।"

ये दुष्ट भावनाएँ इन विकारों को धारण करने वालों को ही नष्ट कर देती हैं।

अपास्यत् सर्व दुर्भूतम्।   —अथर्ववेद ६।७।७

अन्दर के सव दुर्भावों को निकाल वाहर करो। वाहरी शत्रु उतनी हानि नहीं कर सकते जितनी अन्तः शत्रु करते हैं।

"अपेहि मनसस्पतेऽपक्राम परश्चर।"

—अथर्ववेद १०।६६।२४

"मानसिक पापों का परित्याग कीजिये।"

वास्तव में मन में जमी हुई वासना और कुविचार ही उदासी पैदा करते हैं।

**निराशावादिता एक रोग है**—उदासी एक मानसिक रोग है। स्वयं मनुष्य अपने दुर्भाव को मन में स्थायी रख चुपचाप चिन्तामूलक विचारों के अभ्यास के द्वारा उदासी का मानसिक रोग बढ़ा लेता है। कठिन परिस्थितियों से संघर्ष न कर सकने की भावना कल्पित भय से मनुष्य को भर देती है। इस गुप्त-भावना के कारण व्यर्थ की नाना चिन्ताएँ हमें चारों ओर से घेरे रहती हैं।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक लेखक प्रो० लालाजीराम शुक्ल का तो विचार है कि जब तक मनुष्य अपने दृष्टिकोण को नहीं सुधारता अर्थात् जब तक उसकी वासना का रेचन अथवा शोधन नहीं होता, तब तक वह रोग का रूप धारण करके प्रकाशित होती है। यह वासना मनुष्य को कोई भी रचनात्मक कार्य नहीं करने देती, मनुष्य को निराशावादी बनाये रहती है। यह निराशावादिता एक दर्शन का रूप धारण कर लेती है।

उदासी की आदत दूर कीजिये और प्रसन्नता का स्वभाव बनाइये। बातचीत में अधिक से अधिक हँसिये। प्रसन्न व्यक्तियों के साथ सङ्ग कीजिए . सङ्ग से ही मनुष्य अच्छा या बुरा बनता है। उदास व्यक्तियों से बचिये और फूल की तरह खिले हुए व्यक्तियों के साथ रहिये। यह सत्सङ्ग आप में प्रसन्नता का स्वभाव पैदा करेगा।

मन में प्रसन्नता के, यौवन और उल्लास के विचार प्रचुरता से आने दीजिये। मन में सोचिये कि मेरा स्वभाव आनन्द से परिपूर्ण है तथा भगवान का आनन्द और प्रसन्नता नित्य निरन्तर मेरे मन और जीवन को भर रहा है। मैं इस दृढ़ विश्वास से अग्रसर हो रहा हूँ कि भगवान का दैवीय आनन्द सदा मेरे साथ है। मैं प्रकृति से आनन्द की किरणें खींचता हूँ।

जब मेरे मन में कुछ शिथिलता का अनुभव होता है तो मैं भगवान के आनन्दमय रूप को ही मन में धारण करता हूँ। भगवान के दैवीय आनन्द से भरे चित्रों को ही देखता हूँ। मेरा सम्बन्ध आनन्द से है। मैं अपने अन्दर से आनन्द ही प्रकाशित करता हूँ।

यदि आप उदासी की मानसिक स्थिति से निकलना चाहते हैं तो उस प्रकार के विचारों का प्रवाह रोक दीजिए। दूसरे प्रकार के उत्फुल्लकारी विचारों को प्रचुरता से अपने गुप्त मन में आने दीजिये। जो विचार अधिक देर तक मानसिक क्षेत्र में घूमता रहेगा, वही आपके मानसिक स्वभाव का एक अङ्ग बन जायेगा।

स्वामी कृष्णानन्द के शब्दों में "प्रसन्नता, स्वास्थ्य और सफलता का भोजन है—ईश्वर चिन्तन, सहृदयता, आशा और शुभेच्छा। यदि आप मुक्तहस्त होकर यह मानसिक भोजन वितरित करेंगे तो स्वास्थ्य, प्रसन्नता और सफलता आपका अनुगमन करेंगी। विचार भावनाओं का भोजन है। दुःख, रोग और असफलता—भय, विषाद, दोष-दर्शन और स्वार्थपरता सम्बन्धी विचारों के भोजन पर पलते हैं। जब आप उन्हें उनका भरपूर भोजन देते हैं अर्थात् गलत अनर्थकारी चिन्तन करते हैं, तो वे आपके जीवन में प्रवेश करते हैं। प्राणी की तरह वे भी वहीं रहते हैं जहाँ उन्हें उनका अनुकूल भोजन मिलता है।"

दुःख, भय, रोग, असफलता, विषाद के दुष्ट विचारों को कदापि मनोमन्दिर में न आने दीजिये। उत्तम मनःस्थिति का चुनाव कीजिये और स्थायी रूप से उन्हीं विचारों में निवास कीजिए। भय, परेशानी और उत्तेजना के ध्वंसकारी विचारों पर विजय मनुष्य की एक बड़ी सफलता है।

# मानसिक रोगों से बचने के मनोवैज्ञानिक उपाय

आज के युग में हम असंख्य प्रकार के मानसिक रोगियों और दुखी व्यक्तियों को पाते हैं। कुछ पत्र देखिये—

**भिन्न-भिन्न प्रकार की मानसिक निर्बलतायें**—"मैं कई सालों से मानसिक रोगों से पीड़ित हूँ। मौत और बीमारी के अनेक विचार निरन्तर मन में विद्रोह मचाये रहते हैं। हर समय कुछ-न-कुछ चिन्ता बनी रहती है। घर, परिवार, व्यापार में हानि का डर लगा रहता है। नींद तक नहीं आती। स्मरणशक्ति क्षीण हो गयी है। काम में मन नहीं लगता। मानसिक शांति के लिए कई गण्डे-तावीज करा चुका हूँ, परन्तु कोई लाभ नहीं। मन जीवन से ऊब गया है। डर लगा रहता है कि मैं कहीं पागल न हो जाऊँ। आप कोई इलाज बतायें।"

**सरकारी उपेक्षा**—एक विद्वान् प्रोफेसर का मानसिक रोग इस प्रकार है—"मैं कभी बहुत अच्छा व्यक्ति समझा जाता था, पर मुझे सरकार की ओर से पदोन्नति नहीं मिली। मुझसे कम योग्यता के व्यक्ति मुझसे ऊपर सिफारिश और रिश्वत के बल पर चढ़ गये। मैं जहाँ-का-तहाँ हूँ। इस अत्याचार का मानसिक आघात मुझ पर लगा है। फलस्वरूप पिछले नौ वर्षों से अनिद्रा, चिन्ता-शोक से दग्ध हो रहा हूँ। मन काम में नहीं लगता। चारों ओर जैसे अन्धकार-ही-अन्धकार है। कोई प्रयोग मेरे लिए बतायें, तो आजीवन ऋणी रहूँगा।"

**आर्थिक कठिनाइयां**—एक व्यापारी लिखते हैं—"मुझे व्यापार में हानि-ही-हानि हो रही है। हाथ की सारी पूँजी स्वाहा होकर कुछ ऋण भी चढ़ गया है। इधर घर के खर्च वैसे-के-वैसे हैं। विवाह के योग्य सयानी कन्याएँ हैं। मन बड़ा भारी-भारी-सा रहता है। खर्चे पूरे होने की कोई सूरत नहीं आती है। बतलाइये मैं क्या करूँ?"

**पारिवारिक कलह**—एक सास बहू की शिकायत करते हुए लिखती है—"मेरा पुत्र लेक्चरार हुआ। कमाने लगा, विवाह किया, पर बहू जैसा मैं चाहती थी, वैसी नहीं आयी। वह ठीक समय पर सोकर नहीं उठती, घर का कार्य नहीं करती, जिम्मेदारी नहीं सँभालती, खुले हाथ खर्च करती है और अपने देवर के साथ दुर्व्यवहार करती है। मेरा भी समुचित आदर नहीं करती, मेरा पुत्र उसके हाथ में है। घर तू-तू

मैं-मैं से नरकधाम बना हुआ है। मैं तो ऊब गयी हूँ और किसी तीर्थ-स्थान पर भाग जाना चाहती हूँ। मन दुःख और रोग से भारी रहता है। यह संसार दुःखों से भरा है। जीवन का क्या लाभ है ?"

**मानसिक परेशानियों के कारण**—ऊपर कुछ दुखी व्यक्तियों की मानसिक परेशानियों का उल्लेख है। संसार में ऐसे और भी हजारों मानसिक दुःख हो सकते हैं। मानसिक रोग आज के सभ्य युग के अभिशाप हैं। मनुष्य का 'अहं' तनिक-सी बात से कुण्ठित हो जाता है। यही गुप्त मन में दबकर भावना-ग्रन्थि का रूप धारण कर लेता है। मन की प्रत्येक भावना जैसे क्रोध, नैराश्य, द्वन्द्व, अतृप्ति, आतुरता, कामवासना, विक्षोभ, डर, उद्वेग, अभिमान, अहंभाव, अपराधवृत्ति गुप्त मन में दबकर विकृति के रूप में फूट निकलती हैं। कुण्ठित भाव दबकर मानसिक रोग बनता है। प्रत्येक उत्तेजक भाव सीमा से अधिक बढ़कर मानसिक विकृति बन जाता है।

कुण्ठा मानस जटिलताओं की जड़ है। हमारे जो भाव पूर्ण नहीं होते, वे ही मानस रोगों का रूप धारण करते हैं। कोई मनोविकार देर तक गुप्त मन में ठहर कर रोग का रूप धारण कर लेता है। क्रोध, भय, मद, शोक, लोभ, हिंसा, प्रतिशोध, द्वेष, दम्भ, निन्दा, आलस्य, प्रमाद, संशय, दीनता, कायरता इत्यादि कोई भी दुष्ट मनोविकार जब गहराई से गुप्त मन में जड़ पकड़ लेता है, तो मनुष्य का अन्तःकरण वैसे ही दूषित वातावरण से ढक जाता है। वही विकार उसे चारों ओर नजर आता है। समाज से भी उसी भाव को खींचता रहता है। उसकी बुद्धि संकुचित होकर कुण्ठाओं को अधिकाधिक जटिल करती जाती है। इस प्रकार मनुष्य का प्रत्येक विकार मानस रोग उत्पन्न कर सकता है। विषय-भोग तमोगुण की प्रधानता, सांसारिक चिन्ताएँ, अपनी शक्तियों के प्रति अज्ञान और क्षोभों को न सँभाल पाना मानसिक रोग उत्पन्न करते हैं।

**मानसिक आघातों को मनमें मत बैठने दीजिए**—मानसिक रोगों से बचने के लिए मन में किसी आघात या ठेस को गहराई से स्थान

मत दीजिये । जैसे चट्टान पर पानी बह जाता है, चट्टान को कोई असर नहीं पड़ता, वैसे ही सांसारिक विघ्नबाधाओं को वह जाने दीजिये। उनसे अपनी आन्तरिक शान्ति भङ्ग मत होने दीजिये।

कठिनाइयाँ, व्यापारिक हानियाँ, परिवार के क्लेश धीरे-धीरे समय के साथ स्वयं नष्ट हो जाते हैं। बड़ी-बड़ी मुसीबतें खुद टल जाती हैं, प्रतिकूलताएँ गायब हो जाती हैं। बस, आदमी को उतावला नहीं होना चाहिए। साहस तथा विश्वास के साथ मुसीबतों का सामना करना चाहिए।

हमारी सैकड़ों कठिनाइयों का कारण हमारी क्षणिक भावुकता तथा उत्तेजनाएँ हैं। हमारा मन हमारे वश में नहीं रहता, इसलिए कल्पना द्वारा हम छोटी विघ्न-बाधाओं को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर अधीर हो जाते हैं। यदि हम कुछ ठहरें, समय को गुजरने दें, तो स्वयं ही हमारी समस्याएँ सुगम होती जाती हैं। इसलिये कहा गया है कि—

मनस्तापं न कुर्वीत आपदां प्राप्य।

(गरुड़पुराण ११११२३)

"विपदा आने पर मन को दुःखी नहीं करना चाहिए।" यदि हमें यह ज्ञान हो जाय कि यह विपदा स्वयं टलने वाली है, धीरे-धीरे उत्तम समय आने वाला है, हम प्रकाश की ओर चल रहे हैं, हमारी समस्याएँ अपने-आप हल होने वाली हैं, तो हमारी बहुत-सी पीड़ाएँ स्वयं दूर हो जायेंगी। समय की गति के साथ अज्ञान, मोह और विषम-कामनाएँ समाप्त हो जाती हैं।

किसी भी मनोविकार के तीव्र होने पर उसके विरोधी शुभ सात्विक आत्मिक गुण का चिन्तन और अभ्यास करना चाहिये। अगर क्रोध से परेशान हैं, तो प्रेम का चिन्तन कीजिये। यदि विषयवासनाओं से परेशान है तो ब्रह्मचर्य, संयम, त्याग का चिन्तन कीजिये। भय के विचार आने पर निर्भयता, साहस, शौर्य का चिन्तन कीजिये। लोभ के विचार आने पर त्याग और निस्पृहता का अभ्यास कीजिये। प्रत्येक सद्गुण फैलकर

मनमें शांति और संतुलन पैदा करता है। सत्सङ्कल्प से मनमें स्वस्थ स्थिति उत्पन्न होती है।

स्वतन्त्र मन रखिये। नये ज्ञान, विवेक और नये तरीकों से सोचने से मन स्वस्थ रहता है। कठिन परिस्थिति में भी प्रसन्न, तृप्त और संतुलित रहने की आदत बनाइये। यह स्थिति धीरे-धीरे अभ्यास से आती है।

भावात्मक परिपक्वता बढ़ाइये। अर्थात् जो आपकी उम्र है, उसी के अनुसार मनकी भावनाओं का विकास करते चलिये। वड़े होकर बच्चों जैसी आतुरता, उत्तेजना, तनिक-तनिक-सी बातों से परेशानी ये सब बचपन की आदतें छोड़ दीजिये।

किसी शौक की आदत डालिये। बागवानी, गौसेवा, पक्षियों से प्रेम, घर की स्वच्छता, सङ्गीत, सत्साहित्य-पठनपाठन, लेखन इत्यादि की आदत डालिये। व्यर्थ की चिन्ता से मन हटाकर कहीं घूमने, किसी भले मित्र से मिलने, कोई अच्छा दृश्य देखने, स्नान करने, थोड़ी देर पृथक हट कर कहीं बाहर चले जाने से समस्या स्वयं हल हो जायगी।

चिन्ता पर विजय प्राप्त करने का सर्वोत्तम उपाय धार्मिक विश्वास है। संसार में मंगलमय प्रभु का ही शुभ विधान चल रहा है, ईश्वर स्वयं हमारा भला ही करने में लगे हुए हैं, उनके द्वारा भविष्य में हमारी भलाई ही होने वाली है, इस प्रकार का विश्वास सब भयों से सुरक्षित रहने का रामबाण उपाय है। ईश्वर सब निराशाओं की आशा, असहायों, का सहाय है। जो कष्ट के समय ईश्वर का चिन्तन करता है, उसे बड़ी मानसिक शांति प्राप्त होती है। जितनी देर ईश्वर-चिन्तन, भजन, पूजन, शुभ चित्रों का दर्शन बना रहेगा, उतनी देर सांसारिक चिन्ताएँ, घबराहट और समस्त क्लेशों से मन मुक्त रहेगा। ईश्वर-चिन्तन आदिकाल से संसार के दुःखों को दूर करता रहा है।

मन को निरुद्देश्य मत भटकने दीजिये। कोई उपयोगी, कोई नया, कोई अच्छा-सा काम चालू कीजिये। यदि आप अपने को थका हुआ

अनुभव करते हैं, तो सोकर तरोताजगी और नयी शक्ति प्राप्त कर लीजिये। जिन बातों पर आपका कोई वश नहीं उनकी चिन्ता छोड़ दीजिए।

बाहरी विषमताएँ, ये हानि-लाभ, ये कष्ट और पीड़ाएँ आते जाते ही रहेंगे। हमें चाहिए कि परिस्थितियों की विषमताओं को आने-जाने वाला समझकर उन्हें सहन करें। कठोर परिस्थितियों की उपेक्षा करें। बाहरी उथल-पुथल को महत्व न दें। पीछे मुड़कर केवल अतीत को देखने से कोई लाभ नहीं। अतः आगे बढ़िये। विरोधी परिस्थितियों में भी अविचल रहिये।

**शुभ चिन्तन किया कीजिये**—प्रातः सायं अपने मनमें दृढ़ता से स्वास्थ्य, आरोग्य और शान्ति के विचार तेजी से लाया कीजिए। उन्हें मन में अधिक-से-अधिक ठहराइये। सुख के विचारों, हर्ष, उत्साह और प्रसन्नता के भावों तथा सफलताओं की कल्पना से उत्तम वातावरण बनता है। अतः पूरे दृढ़ विश्वास से निम्न विचारों को मनमें बैठाइये—

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद युयोतनोरुणः शर्म यच्छता स्वस्तये।।

हे दिव्य शक्तियो ! रोग को दूर करो। सब प्रकार की अश्रद्धा को दूर करो। पाप प्रिय (लोगों) की कंजूसी और बुरी कमाई को दूर करो। शत्रु-भाव को हमसे दूर करो। हमें उदार शान्त-भाव प्रदान करो। जीवन सफल हो। (ऋ० १०।६३।१२)

स्वस्तिरिद्धि प्रथमे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति।
सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा।।

सत् जीवन का मार्ग विशाल है। वह ऐश्वर्य का बीज और सौन्दर्य-लक्ष्मी का द्वार है। देवता उसके रक्षक होते हैं। वह हमारे अन्दर पैदा होकर हमारा साथ दें। हम घर पर हों या बाहर, वही हमारी रक्षा करे। (ऋ० १०।६३।१६)

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽ-
दब्धासो अपरीतास उद्भिदः ।
देवा नो यथा सदमिद् वृधे
अन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ।।

सब ओर से भले भाव हमें प्राप्त हों । उनमें कोई धोखा न हो सके । उनमें कोई रुकावट न पड़ सके । वे सदा उन्नत होते रहें ताकि प्रमाद रहित देवताओं से प्रेरणा पाते हुए हम प्रतिदिन अधिक-अधिक वृद्धि को प्राप्त होते रहें । (यजु २५।१४)

संसार के कोलाहल, हानि-लाभ, जीवन-मरण, कष्ट-पीड़ा से हमें व्यग्र नहीं होना चाहिए । ईश्वर के इस अनन्त साम्राज्य में हमें सभी समृद्धियाँ, यश और आरोग्य प्राप्त होते हैं । परमात्मा से हम जितना ही अपना सम्बन्ध जोड़ेंगे, उतनी ही मनमें गुप्त शक्तियाँ और शान्ति प्राप्त होगी, क्योंकि सब की सब शक्तियों का आदि स्रोत परमात्मा ही है । संसार के सत्य, त्याग, प्रेम और सद्विचार परमात्मा के आधार पर ही टिकते हैं ।

ईश्वर के साथ अटूट सम्बन्ध हो जाने पर मनुष्य की भीरुता, सङ्कीर्णता, सन्देह, अशान्त, विभीषिका और पीड़ाएँ दूर हो जाती हैं । उसकी सब आशायें पूर्ण हो जाती हैं ।

# हृदय रोग से बचने के व्यावहारिक सुझाव

साठ वर्ष के समृद्धिशाली अमीर जमीदार किसी की गमी के सिल-सिले में जा रहे हैं । उनका शरीर खूब स्वस्थ है, दो बार दूध पीते हैं,

सुबह कसरत करते हैं, घूमते-फिरते हैं। बाहर से तृप्त दीखते हैं। उनके किसी निकट सम्बन्धी की मृत्यु हो गई है सम्वेदना प्रकट करने जा रहे हैं, पर उनका मन मृत्यु, क्षण-भंगुर शरीर, जगत् की निस्सारता की उधेड़बुन में लिपटा हुआ है। वे सब में बैठे हुए सफर कर रहे हैं। पर उनके मन भी जैसे मोटर के पहियों के चलने जैसी आवाजें आ रही हैं। साथी को पुकार कर कह रहे हैं, "न जाने क्यों मेरा दिल घुटता जा रहा है। धकधक कर रहा है। माथे पर ठण्डा पसीना आ रहा है। मैं बड़ा बेचैन हूँ। मुझे अस्पताल ले चलो। मुझे दिल का दौरा पड़ रहा है। जल्दी करो, बेचैन हूँ।"

सुन कर सब घबरा जाते हैं। उन्हें अस्पताल के वार्ड में दाखिल दिया जाता है। डाक्टर केस सीरियस बताता है। उनका ब्लड प्रेशर बढ़ा हुआ है, मन की घबराहट बढ़ती जा रही है, ठण्डा पसीना नहीं रुक रहा है, दिल घटता जा रहा है।

उफ् ! यह कैसा दर्दनाक दृश्य है। दो घण्टा पहले जो व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ था, वही डाक्टर की चिकित्सा के बावजूद हार्ट-ट्रबुल से चलता बना। उनके शरीर में बाहर से कोई विकार नजर नहीं आता, उसे दिल के दौरे ने नष्ट कर दिया। सभी उसे याद कर दुःखी हो रहे हैं।

उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके छिपे हुए मानसिक दुःख की छान-बीन की जाती है, तो मालूम पड़ता है कि वे घर-बार की, कन्या के विवाह की तथा रुपये की वसूली की चिन्ता में बुरी तरह परेशान थे। उनका मन इन्हीं समस्याओं को सुलझाने में निरन्तर लगा रहता था। जब मन ने परेशानियों को अपनी ताकत से भारी महसूस किया, तभी दिल का दौरा और उनका काम तमाम कर गया।

दिल को धक्का लगे और कई व्यक्तियों से मेरा परिचय हुआ तथा उनकी मानसिक परेशानियों के विश्लेषण का अवसर मिला है।

× × ×

एक डाक्टर साहब अपनी नौकरी के छूटने से बुरी तरह घबरा उठे। चिन्ता मन में ऐसी बैठी कि दिल का दौरा आ गया। छः महीने चारपाई पर पड़े रहे और बड़ी मुश्किल से बचे हैं। बहुत दुबले और निराश-से हो गये हैं।

एक ईंटों के भट्टे के मालिक को दिल का दौरा हुआ। वे शरीर से जवान और अमीर हैं। मोटर में बैठ कर इधर-उधर सफर करते हैं। आलीशान कोठी में रहते हैं। किसी प्रकार का अभाव उन्हें नहीं है, क्योंकि वे एक अमीर जमींदार के इकलौते पुत्र हैं। रुपया खूब आता है और वे शाहजादे की तरह खर्च करते हैं।

इन्हें भी हुआ दिल का दौरा।

"अरे भाई, दिल का दौरा तो बूढ़ों को होता है। इस जवान को आखिर दिल का दौरा क्यों हुआ ?"

मुझे भी उत्सुकता हुई। उनके मन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया तो मालुम हुआ कि इनकमटैक्स अधिक लग जाने के मानसिक धक्के के कारण उन्होंने बड़े दुःख का अनुभव किया था। कमाई का आधा भाग इनकमटैक्स वाले ले गये। उन्हें ऐसा लगा कि जो धन बड़े परिश्रम, संयम और सूझ-बूझ से उन्होंने कमाया था, वह अन्याय से उनसे छिन गया, लूट लिया गया मानों उन्हीं का नुकसान हो गया। बस वे कई दिन तक इस घाटे की चिन्ता मन में लिये बैठे रहे। मन ही मन कलपते रहे, परेशान रहे। चिन्तन का सामूहिक प्रभाव यह हुआ कि उन्हें दिल का धक्का लगा और वे अब भी चारपाई पर अशक्त और बीमार पड़े हैं। शरीर से पहलवान हैं, पर मन रोगी है। व्यापारिक हानि के धक्के ने उन्हें हृदय रोग का बीमार कर दिया है।

× × ×

एक दिल के दौरे से बीमार रोगिणी को देखने के लिए हमें बुलाया गया। युवती को दिल का भारी धक्का लगा था। वह अशक्त और निराश-सी दिखाई दी। मुँह मुरझाया हुआ था। चेहरे से निराशा, पीड़ा

और मानसिक परेशानी टपक रही थी। थकी हारी-सी दुःखी बैठी थी, जीवन का झरना मानो सूख चुका था।

"आखिर आप मन ही मन किस परेशानी से व्याकुल हैं ?" मैं बोला।

"नहीं, कोई विशेष बात नहीं है"—उन्होंने उत्तर दिया।

'अवश्य, कुछ न कुछ मानसिक दु:ख, परेशानी, गुप्त मन में बैठी हुई कोई चिन्ता आपके मन में जड़ जमाये हुए हैं। बतलाइये, पिछले दिनों विशेषत: दिल के दौरे से पहले आप किन बातों, समस्याओं, गुत्थियों में उलझी हुई रही हैं ?"

रोगिणी का मेरे प्रति विश्वास जगा। उसने अपनी व्यथा सुनानी प्रारम्भ की:—

"मेरे पति का देहान्त एक मोटर दुर्घटना में हो गया था। मुझे पहला दौरा उस दुर्घटना के बाद ही पड़ा था। मैंने अपने आपको दीन-हीन बेसहारा अनुभव किया था। मैं दिन–रात सोचा करती, "अब मेरा पति चला गया, तो अब कौन रह रह गया है ? अब मुझे कौन जीविका देगा। मेरे चार पुत्र और दो कन्याएँ हैं। वे सब छोटे-छोटे हैं। कोई भी कमाने योग्य नहीं है। हाय, अब मेरा क्या होगा।" इन्हीं विचारों ने मुझे परास्त कर दिया और तभी हुआ दिल का दौरा। उससे किसी प्रकार बची लेकिन फिर दिल का दौरा बार-बार होने लगा। वह मुझे कितना अशक्त छोड़ जाता है।"

":आपने अपने रोग का निदान भी कर डाला। आप जानती हैं कि हार्ट ट्रबुल किसी दुःख, चिन्ता, हानि, परेशानी, समस्या को मन में स्थायी रूप में बसाने से उत्पन्न होती है। मन बड़ा सशक्त है। साधारण परेशानियों से वह युद्ध करता है। एक बहादुर की तरह उन्हें निरन्तर परास्त करता जाता है, पर जब परेशानियाँ हद से ज्यादा बढ़ जाती है, तो बहादुर मन को परास्त कर डालती हैं। अनेक छोटी-बड़ी चिन्ताएँ गुप्त रूप से मन में जोंक की तरह चिपक जाती हैं। उन्हीं से हार मान

कर हार्ट-ट्रबुल उत्पन्न होती है। इसलिए कभी मन में कोई चिन्ता मत बसने दीजिए।"

मेरे इस सुझाव से युवती को मानसिक शान्ति मिल रही है। वह किसी भी चिन्ता को स्थायी रूप से मन में टिकने नहीं देती। चिन्ताओं के जमघट से बचती हैं। यह जमघट ही हमें परेशान करता है। यदि एक-एक कर चिन्ताओं को अलग-अलग किया जाय, तो मानसिक बोझ नहीं रहता। हार्ट ट्रबुल दूर हो जाती है।

× × ×

हमारे एक सम्बन्धी किसी की बरात में जयपुर गये। रात का भोजन डट कर खाया, चारों ओर हँसी मजाक का वातावरण था, कोई विशेष कष्ट नहीं था। रात के बारह बजे एकाएक उन्हें शौच की हाजत हुई। वे पाखाने गये। वहीं उन्हें दिल पर बोझ का अनुभव हुआ। उनका दिल बुरी तरह धकधक करने गला चेहरे पर ठण्डा पसीना आ गया।

उन्होंने पास लेटे हुए एक मित्र को जगाया और कहा, "दिल पर दर्द है। हार्ट-ट्रबुल शुरू हुआ। अब शायद न बचेंगे। मेरे परिवार का ध्यान रखियेगा ?"

संगोग से वह पहले से ही हार्ट-ट्रबुल के रोगी थे। उनके पास चिकित्सा की कई दवाइयाँ थीं। एक के बाद एक वे दी गईं। भाग्य अच्छा था, उनके प्राण बच गये।

"हार्ट-ट्रबुल सिर्फ शारीरिक रोग नहीं है। इसका एक मानसिक पहलू भी है। आप किसी मानसिक परेशानी से दुःखी रहे हैं ?"

"नहीं, भला उस विवाह के मौके पर मुझे क्या परेशानी हो सकती थी ?"

"आप फिर सोचिये, जरूर किसी मानसिक आघात ने आपको विचलित किया था-?"

वे सोचने लगे। फिर बोले—

"मेरे पाँच कन्याएँ और दो पुत्र हैं। मैं दो कन्याओं का विवाह तो कर चुका हूँ, पर शेष को मैं बसा नहीं पाया हूँ। मेरे पुत्र पूरी कोशिशों के बावजूद कुछ भी नहीं पढ़ सके, मामूली से रह गये। उनको व्यापार की ट्रेनिङ्ग दे रहा हूँ, पर वे उसमें कोई दिलचस्पी नहीं लेते हैं। कन्याएँ विवाह के योग्य हो गई हैं। उनके वैवाहिक सम्बन्धों की चिन्ताएँ बराबर लगी रहती हैं। कहाँ से बड़े दहेज का प्रबन्ध करूँगा? आज के समाज में बिना रुपये के अच्छे वर क्यों कर मिलेंगे? आखिर इस बढ़ी उम्र में इतना रुपया कहाँ से एकत्र करूँगा?"

"बस, ये पारिवारिक समस्याएँ ही इकट्ठी होकर आपके दिल के धक्के का कारण बनी हैं।"

"कुछ हद तक आप जो कहते हैं, वह ठीक है"—वे बोले।

"यदि आप इसी समस्या को धर्म-भावना के दृष्टिकोण से सोचें तो बहुत कुछ यह समस्या और छिपी हुई चिन्ता दूर हो सकती है। भगवान् की इस विशाल सृष्टि में किसी भी वस्तु की कमी नहीं है। हमें जितनी फिक्र नहीं, ईश्वर को हमारी परेशानियाँ दूर करने की बड़ी फिक्र है। वह स्वयं हमारी तकलीफें दूर करने में प्रयत्नशील है भला ऐसा भी कोई हुआ है जिसकी कन्या कुँवारी छूट गई हो! विवाह हर एक का होता है। पुत्र हर एक का अपनी जीविका जुटाता है, कोई कम कोई अधिक। देर-सवेर सभी के कार्य पूर्ण होते हैं। दैवी विधान है कि सबके कार्य पूर्ण हों। आपके भी हो रहे हैं। आगे और भी अच्छे दिन आ रहे हैं—ईश्वर सब की समस्याएँ निपटाने में लगे हुए हैं यही मान कर चलना चाहिए। इस धर्म-भावना से आपकी परेशानी दूर होगी।"

सचमुच, प्रतिदिन आत्म चिन्तन, गायत्री पाठ और शुभ विचारों को दृढ़ता से गुप्त मन में बसाने से उनकी हार्ट-ट्रबुल बहुत कुछ कम हो गई है।

× × ×

चण्डीगढ़ के बड़े डाक्टर श्री जीतसिंह, डाइरेक्टर आफ हेल्थ की हार्ट अटैक (दिल के दौरे) से मृत्यु हो गई। उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। अपने पेशे में बड़े कुशल थे और चार हजार रुपया मासिक वेतन पाते थे। एक बार पहले भी इन्हें हार्ट अटैक हो चुका था।

जिस दिन उन्हें हार्ट अटैक हुआ, उस दिन उन्हें कुछ खाँसी आई और उसमें कुछ रक्त आया। वे डर गये। उनके भाई पटियाला में थे। उनने पटियाला अपने भाई को टेलीफोन काल बुक कराया। संयोग से काल मिल गया और बातचीत हुई।

"मुझे कै आई है। दिल बेचैन और परेशान है। तुम फौरन चले आओ"—उन्होंने टेलीफोन पर भाई से कहा।

"भाई, आज तुम्हारी आवाज कमजोर है। आखिर क्या बात है? लो, मैं अभी आया"—उत्तर मिला।

लेकिन शोक, जब तक भाई पहुँचे, तब तक जीतसिंहजी की मृत्यु हो चुकी थी। उनके दिल के दौरे ने उन्हें समाप्त कर दिया था। बड़ा मातम मनाया गया। पचास हजार व्यक्ति उनकी अर्थी के साथ थे।

एक उच्चतम डाक्टर भी अपने आपको हार्ट अटैक से न बचा सका। क्या उनके पास दवाइयों की कमी थी? नहीं!

क्या उनके पास अन्य योग्य डाक्टर सहायता के लिए नहीं थे? वहाँ सब प्रकार की मेडिकल सहायता होते हुए भी कोई औषधि योग्य डाक्टर को न बचा सकी। इसका कारण क्या था?

रोग शरीर में न होकर डाक्टर के गुप्त मन में छिपा हुआ था। वे दवाइयों से चिकित्सा करते रहे, जब कि मन के भय ने उन्हें धर दबाया। हृदय-रोगों का एक प्रधान कारण यह छिपा हुआ डर ही तो है।

मनोवैज्ञानिकों की राय सही है—"भय के अतिशय या अधिक हो जाने से मनुष्य का मन विकृत होकर निश्चेष्ट होता है। भय शरीर के

रोगों की जड़ में मौजूद रहता है। मनुष्य की जीवन-शक्ति का सब से बड़ा शत्रु है।"

डाक्टर उस कै (उलटी) में आये हुए रक्त से एकाएक इतने भयभीत हो गये कि मृत्यु की कुकल्पना करने लगे।। वह कुकल्पनाएँ उनके दिल के चारों ओर बुरी तरह जकड़ गईं और एक बड़े दिल के दौरे का कारण बन गईं। जीवन-दीप बुझ गया।

यदि डाक्टर यह सोचते कि "यह तो साधारण-सा विकार है। कोई मामूली खरोंच मात्र है। ईश्वर द्वारा निर्मित यह शक्तिशाली मानव शरीर यों तनिक-सी रक्त की बूँद के दिखाई देने से नहीं जा सकता। हमें सौ वर्ष जीवित रहना है। परमात्मा की दिव्य शक्ति सदा मेरे साथ है। मैं स्वस्थ हूँ, जीवन हूँ, प्राण हूँ, ओज हूँ। दिव्य संकल्प शक्ति पर मेरा पूरा विश्वास है।"

इन शुभ संकेतों को मन में बसाये रखने और उनमें पूरी आस्था रखने से निश्चय ही डाक्टर दिल के दौरों से बच सकते थे। ईश्वरीय शक्ति, सफलता, जीवन और यौवन के विचार मन में रखने से मनुष्य को दिव्य दैविक शक्ति प्राप्त होती है।

हार्ट ट्रबुल के अनेक रोगियों को देख कर मैं इन नतीजों पर पहुँचा हूँ: —

१—नब्बे प्रतिशत दिल के दौरे मोटे आदमियों को होते हैं, जो प्रायः पैंतालीस से पचपन-साठ वर्ष के होते हैं।

२—रात्रि में ये लोग बहुत ठूँस-ठूँस कर भोजन करते हैं। मध्य रात्रि में अधिक भोजन के फलस्वरूप दिल के दौरे उत्पन्न होते हैं।

३ - ये व्यक्ति अपनी घरेलू या व्यापारिक परेशानियों की उधेड़बुन में बुरी तरह जकड़े रहते हैं। रुपये-पैसे की चिन्ता विशेष रूप से इन्हें परेशान किये रहती है।

४—गर्मी के दिनों में विशेष रूप से ये दौरे होते हैं।

५—जो लोग अधिक भोजन करते हैं, चिकनाई वाले पदार्थ जैसे घी, दूध, चर्बी, मिठाई, रबड़ी आदि गरिष्ठ पदार्थ अधिक प्रयोग में लाते हैं, वे हार्ट ट्रबुल जल्दी उत्पन्न कर लेते हैं।

६—अधिक सिगरेट या शराब हृदय-रोगों को बढ़ाते हैं और मन को अस्त-व्यस्त रखते हैं।

हम हृदय-रोगों से बच सकते हैं। हमें चाहिये कि ऊपर जिन त्रुटियों का उल्लेख किया गया है, उनसे बड़े सावधान रहें। व्यर्थ की घबराहट से बचें और चिन्ता को मन में न बैठने दें।

कोई भी समस्या इतनी बड़ी नहीं है कि हल न की जा सके। कोई चिन्ता इतनी उग्र नहीं कि आगे स्वयं ही दूर न हो जाये। हम चिन्ता करके अपने मन को पंगु बना लेते हैं। यदि वह ठण्डा रहे तो अनेक चिन्ताओं को दबा कर शरीर को स्वस्थ रख सकता है।

अधिक चिकनाई, ठूँस-ठूँस कर अधिक भोजन करना, आलस्य का जीवन, नशाबाजी, अधिक चाय इत्यादि त्याग दीजिये।

**धर्म-भावना से लाभ**—अपना दृष्टिकोण धार्मिक बनाइये। यह सोच कर चलिए कि आपके जीवन के पीछे ईश्वर की अनेक शक्तियाँ कार्य कर रही हैं। सर्व शक्तिमान् ईश्वर की आप पर छत्र-छाया है। वे ही आपकी अन्त तक रक्षा करेंगे। प्रतिकूल परिस्थिति में सहायता करने वाला परमात्मा सदा आपके साथ है। अतः संसार, परिवार या समाज की विकट प्रतिकूलता से आपको विचलित नहीं होना है।

ये सब आत्म-संकेत आपकी अचेतन (गुप्तमन) वृत्ति को ग्रहण कर लेने चाहिये। ईश्वरीय शक्ति और न्याय में विश्वास हमारे अचेतन मन के भण्डार खोल देता है।

धर्म-भावना, ईश्वर की पौष्टिक भावनाएँ हमारे गुप्त मन में उत्पन्न हुआ करती हैं। यही दैवीय संकट के समय हमारे काम आती हैं। इस अमृत-भावना से मनुष्य आशा की डोर नहीं छोड़ता।

धार्मिक व्यक्ति समझता है कि संकट क्षणिक है । अच्छे दिन आ रहे हैं, जिनमें यह कठिनाइयाँ खुद दूर हो जायेंगी । अपने जीवन के कुछ घंटे भगवान् की शरण में, ईश्वरीय चिन्तन, भजन, पूजन, कीर्तन तथा धर्म-ग्रन्थों के अध्ययन में व्यतीत कीजिये । धार्मिक व्यक्ति सदैव शान्त और संतुलित रहता है । मामूली कठिनाइयों को क्षणिक समझता है ।

# टेलीपेथी और स्वास्थ्य (१)

## विचार-शक्ति से स्वास्थ्य संरक्षण :

नाना प्रकार की सांसारिक उलझनों, असंख्य आवश्यकताओं की दासता खान-पान तथा जीवन के असंयम, मानसिक विकारों तथा विषम परिस्थितियों के कारण आज का मनुष्य प्रायः अहितकर चिन्तन करता रहता है । अपने विचार-यन्त्र का दुरुपयोग करता है । अहितकर भोगवृत्ति की प्रधानता के कारण वह असंख्य शारीरिक और मानसिक रोगों का शिकार हो गया है । आज के मानव का मन चिन्ता और व्याधि के कारण अशान्त है । रोग मन में है । रोग का कारण गुप्तमन में छिपा हुआ है । मन के व्याधिग्रस्त हो जाने से शरीर रोगी हो जाता है । मन के स्वस्थ होने से मनुष्य का स्वास्थ्य सुधर जाता है और वह बलवान बन जाता है । यदि मन रोगी न हो, तो शरीर रोगी हो ही नही सकता । रोग का मन से घनिष्ठ सम्बन्ध जुड़ जाता है और गिरे हुए बीमार मस्तिष्क का सारे शरीर पर दूषित प्रभाव पड़ता रहता है । पागलखाने बिगड़े हुए मन के सैकड़ों रोगियों से भरे पड़े हैं । दूषित मस्तिष्क के कारण उनका शरीर बेकार हो जाता है । मन ही मनुष्य को मारता है क्योंकि आत्म-हत्या के हानिकारक विचार पहले मन को

ही दबोचते हैं। मारपीट, हत्याएँ, उत्तेजना, अपराध, झगड़े, कत्ल मन की बीमार अवस्था की प्रतिक्रियाएँ हैं। जिसका मन बीमार है, उसका शरीर जल्दी बीमार हो जाता है। रोगी मन आदमी को रसातल में पहुंचा देता है, स्वस्थ मन मनुष्य को उन्नत बनाता है। हम देखते हैं कि सैकड़ों लोग रात-दिन डाक्टरों के पास अपने शरीर का परीक्षण कराते रहते हैं, जबकि उनके मन में ही रोग छिपका रहता है। जो रोग मन में है, वह कार्य रूप में कभी न कभी अवश्य प्रकट होगा। राग, द्वेप, क्रोध, भोगलिप्सा, इन्द्रिय व्यसन मानसिक रोगों के रूप में फूट निकलते हैं।

उत्तम बीज से बढ़िया खेती होती है। इसी प्रकार सद्विचार से सुन्दर स्वास्थ्य उत्पन्न होता है। सुस्वास्थ्य के लिए सादा आहार, जल, वायु, व्यायाम ब्रह्मचर्य के साथ साथ मनोबल पवित्र विचारों तथा ईश्वर चिन्तन की आवश्यकता है। अतः जब कभी शरीर में विकार हो तो रोगी के मन में बैठे हुए अशुद्ध विचारों जैसे घृणा, द्वेप, ईर्ष्या, प्रतिशोध चिन्ता, रोग, मृत्यु आदि दुर्विचारों को मन से निकाल दो। इन मनोविकारों से रक्त और फिर शरीर दूषित होता है। दूषित माँस बन जाता है। कालान्तर में रोग अपनी जड़ें गुप्तमन में जमा लेता है। मन ही सारे शरीर पर राज्य करता है। इस दृष्टि से संसार के समस्त रोग मानसिक हैं। विषैली औषधियों को शरीर में भर कर दूषित करने से स्वास्थ्य नहीं प्राप्त होगा, उत्तम विचार अनन्य सद्भाव तथा शुभ भावना से बढ़ कर और औषधि नहीं है।

पीड़ित जन-समुदाय को स्वस्थ और सुखी करने, शान्ति और संतोष देने का कार्य धर्म प्रवर्तकों, सन्यासियों, ऋषि, मुनियों, साधुओं और विद्वानों का रहा है। ऐसे लोकोपकारी महात्माओं के पास बड़ा विकसित और सशक्त मस्तिष्क रहता है जिसमें पिछड़े हुए लोगों को आगे बढ़ाने वाले शक्तिशाली विचार भरे पड़े रहते हैं। उनके नव-निर्माणकारी विचार अविकसित मस्तिष्कों में पहुंच कर नए अव्यक्त ( Un-Conscious )

मन का निर्माण करते हैं। वे निरन्तर अपने पुष्ट मस्तिष्कों से उत्तम स्वास्थ्यप्रद सृजनात्मक विचार फेंकते हैं जिन्हें वीमार या अल्प-विकसित मस्तिष्क ग्रहण कर प्रखर और तेजस्वी बनते हैं। उनके वौद्धिक विकास में साधु-महात्माओं की शुभ्र मानसिक प्रेरणाएँ क्रिया-शील रहती हैं। महात्मा ईसा के पास अनेक अपङ्ग, रोगी, निराश, हतोत्साहित व्यक्ति आते थे। महात्मा ईसा अपने आशीर्वादात्मक पुष्ट स्वस्थ विचारों को रोगियों के अस्वस्थ मस्तिष्कों में जमा देते थे। स्वस्थ उत्साहवर्द्धक विचार अव्यक्त प्रदेश में जम कर बढ़ते जाते थे, क्योंकि विचार शक्ति सूक्ष्मातिसूक्ष्म होती है। कालान्तर में उनके स्वस्थ विचार दूषित भावनाओं को दवा देते थे। ज्यों-ज्यों स्वास्थ्यप्रद विचार जमते जाते थे, शरीर भी उसी अनुपात में स्वस्थ्य और निरोग होता जाता था। ईसा ने अपने शुभ चिन्तन से अद्‌भुत प्रभाव दिखाये थे। एक वार ईसा के पास दस कोढ़ी मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त करने के लिये आये थे। उन्होंने उन रोगियों को स्वस्थ निर्माण-कारी विचार दिये थे। नयी स्वीकृतियाँ ( Affirmations ) मस्तिष्क में जम जाने पर वे कोढ़ी स्वस्थ हो गए। परमार्थ परक परोपकारी तथा सेवा पूर्ण विचारों की ऐसी ही अद्‌भुत शक्ति होती है। ईसा 'महान्' इसीलिए कहलाये क्योंकि वे विचार शक्ति की दवाई से रोगियों को पुनः स्वस्थ किया करते थे और निराश व्यक्तियों को आशा की नव ज्योति देते थे। उनके विचार औषधि का काम करते थे।

## यदि मन रोगी, तो शरीर बीमार :

सर सैम्युएल वेकर ने ब्रिटिश मेडीकल रिव्यु के अपने एक लेख में लिखा है,

"अफ्रीका का यदि कोई निवासी अत्यन्त क्रोध, शोक या आवेश में आ जाता है, तो परिणाम स्वरूप उसे वुखार होता पाया गया है। उद्विग्न मानसिक अवस्था का दूषित प्रभाव एकदम शरीर पर पड़ने लगता

है। मानसिक दुरावस्था में शरीर से रोग प्रकट होता है।" सर बी० डब्ल्यू० रिचर्डसन शरीर पर मन की शक्ति विषय पर लिखते हैं, "मधु-मेह अचानक मानसिक आघात का सीधा और सच्चा परिणाम है। मन के तनाव से बचना चाहिये।" डा० सर जार्ज पेजेन्ट लिखते हैं, "कई जीर्ण रोगियों में मुझे यह विश्वास करने के प्रमाण मिले हैं कि कैंन्सर की उत्पत्ति लम्बे समय तक चिन्ता करते रहने से होती है। चिन्ता शारीरिक बीमारियाँ पैदा करती है।"

डाक्टर मरकिसन अपने अनुभव लिखते हुए कहते हैं, "मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ है कि यकृत के केन्सर का कारण बहुतायत से बार बार कई दिन तक शोक करना पाया गया है शोक की स्थिति रोग पैदा करने वाली है।"

प्रो० एलमर ग्रेट्स ने मानसिक रोगों के सम्बन्ध में लिखा है, "मेरे प्रयोग मुझे बतलाते हैं कि उदासीन, क्रोधायुक्त तथा ईर्ष्यालु विचार मन में बनाये रखने से रोगी के शरीर में ऐसे तत्व उत्पन्न हो जाते हैं जो अत्यन्त विषैले होते हैं, जबकि आनन्दमय तथा रुचिकर विचार हमारे शरीर में पोषक तथा स्फूर्तिदायक जीवाणुतत्व उत्पन्न करते हैं। ईर्ष्या द्वेषवासना के विचार खतरनाक होते हैं।" डाक्टर एफ० डब्ल्यू साउथवर्थ का अनुभव है, "यदि मानसिक आवेश हमारे शरीर के भिन्न-भिन्न श्राव को जहरीला बना सकते हैं जैसे कि हमारे मुँह में लार को तथा माता के स्तनों में दूध को, क्रोध, चिन्ता, और भय विषैले बना देते हैं, तो क्या इस प्रकार के दूषित भाव रोग उत्पन्न नहीं कर सकते? मन को विकारों से सुरक्षित रखिये।"

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि बीमारी की मानसिक अवस्थाएं शरीर में रोग उत्पन्न करती हैं। यदि बीमारी के विचार मन में जम जायें, तो शरीर में वह रोग प्रकट होना अवश्यम्भावी है। मन के दूषित विचार निकाल कर ही स्वास्थ्य यौवन और सौन्दर्य का संरक्षण किया

जा सकता है । हमारे मन के दो भाग हैं, पहला बहिर्मन दूसरा अन्तर्मन । दोनों मन सब कार्य नहीं करते । अन्तर्मन से रोग, शोक, व्याधि कष्ट, भय, क्रोध, ईर्ष्या के विचार निकाल कर ही शरीर को स्वस्थ किया जा सकता है । 'मैं स्वस्थ हूँ ।'' यह भाव बार बार दुहराना चाहिए ।

## स्वीकृतियों (Affirmation) और संकेतों (Suggestions) से स्वास्थ्य का सुधार एवं संरक्षण :

त्वामग्ने पुष्करा वध्यथर्वा निरमन्थम ।
मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः ॥

—सामवेद

अर्थात् परमात्मा ज्ञानियों के हृदय में प्रकाश स्वरूप तथा विकसित मस्तिष्कों में सद्शक्तिवान विचार-रूप में प्रकट होता है ।

संसार में जितने जीव हैं, उन सब में मानव-मस्तिष्क सब से अधिक विकसित है । वह अद्भुत सूक्ष्म शक्तियों का अनन्त भंडार है । शरीर स्थूल है, किन्तु मस्तिष्क सूक्ष्म । मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाला शक्तिशाली पदार्थ—विचार-समग्र मानव शरीर को अधिक से अधिक प्रभावित और नियन्त्रित करता है । मनुष्य के मस्तिष्क में जो जो विचार तरंगें, संकल्प विकल्प, मानसिक स्फुरणाएं जल-तरंगों की भांति उठती रहती हैं, वे हमारे शरीर का संचालन करती हैं । हमारा प्रत्येक विचार सृजनात्मक या ध्वंसात्मक प्रभाव डालता है । हमारे विचारों की शक्ति पर जीती-जागती चेतनाशक्ति है । पूरी आस्था और निष्ठा से प्रकट किये हुए विचार मनुष्यों और जनता को प्रभावित करते रहते हैं, क्योंकि कम विकसित मस्तिष्क उन्हें ग्रहण कर तदनुसार बनते या सुधरते रहते हैं । समाज की उन्नति का इतिहास सामूहिक विकासशील विचारों का इतिहास है । राजनीति के क्षेत्र की चकाचौंध करने वाली प्रगति विश्व के विचारकों के विचारों का व्यवहारिक रूप है ।

मनुष्य जैसा विकसित, अविकसित, स्वस्थ अस्वस्थ, निरोगी या त्रुटिपूर्ण मस्तिष्क रखता है, उसका शरीर भी वैसा ही स्वस्थ या अस्वस्थ वनता है। जैसा मस्तिष्क का स्वास्थ्य होता है, तदनुरूप उसके शरीर की दशा होती है। जैसा चिन्तन होता है, वैसा ही मन का जगत् होता है। जैसा विचार वैसी ही शारीरिक क्रिताएँ रहती हैं। विचार यदि वीज है तो मानव शरीर उसका विकसित रूप अर्थात् वृक्ष। परमात्मा ने कहा 'एकोहं वहुस्यामि' अर्थात् मैं जगत् में एक से बहुत हो जाऊँ। समस्त विश्व में, समस्त जीवों में, समस्त मनुष्यों में फैल जाऊँ—यह मूल विचार ही समस्त जगत् के निर्माण का आधार है। उत्तम विचार में निर्माण की सूक्ष्म शक्ति है। चुने हुए शव्द अर्थात् मंत्र ऐसी ध्वनियाँ हैं जो उपयोगी कम्पन या थरथराहट उत्पन्न करते हैं जिनका जादू जैसा असर मानव के शरीर पर पड़ता है। इस प्रकार के अनेक मंत्र हैं जिन्हें रोग निवाराणर्थ प्रयोग में लाया जाता है। भारतीय मंत्रविज्ञान मानसिक चिकित्सा के लिए सर्वाधिक प्रवल और उन्नत रही है।

## रागात्मक झुकाव से विचार अन्तर्मन का अभिन्न अंग बनते हैं :

यों तो सारे दिन मानव मस्तिष्क में समुद्र की चपल तरंगों की भांति नाना प्रकार के विचार आते और जाते रहते हैं। संकल्प-विकल्प वनते बिगड़ते रहते हैं। तरह तरह के जैसे स्नेह, प्रेम, सेवा, करुणा, दया, उपकार, संतोश, त्याग वलिदान उन्नति अथवा दूसरी ओर दुष्टता अपराध ईर्ष्या द्वेष के विचार उत्पन्न होते रहते हैं और कुछ काल के उपरान्त विलीन हो जाते हैं, तथापि कुछ ऐसे विशेष विचार होते हैं, जिन्हें हम खास तौर पर पसन्द करते हैं। जिस ओर हमारी भावनाओं का स्त्रतः झुकाव होता है, वैसे ही विचार पकड़ कर हम अपने मस्तिष्क में इकट्ठे कर लेते हैं। यह रागात्मक झुकाव ही हमारे गुप्तमन का निर्माण करता रहता है। मानसिक चिकित्सा में अन्तर्मन में ही स्वस्थ

संकेत या भावनाएं जमाई जाती हैं। ये संकेत स्वयं भी दिये जा सकते हैं। दूसरे भी आपको दे सकते हैं। कथन को बार-बार दुहराने से अन्तर्मन में नये संकेत जम जाते हैं।

यह आवश्यक है कि हम कुछ उपयोगी विचारों को पसन्द करें तथा उनके साथ अपना भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करें। अच्छे विचारों का चुनाव हमारी विवेक बुद्धि के द्वारा होता है। यह चुनाव बड़ी सूझ-बूझ और समझदारी से करना चाहिये। जैसे आप अपने उद्यान में सुन्दर और सुगन्धित पुष्पों या सुमधुर फूल वाले उपयोगी पौधे लगाते हैं और हानिकारक कटीले झाड़ झंखड़ों को उखाड़ फेंकते हैं, उसी प्रकार शुभ्र स्वास्थ्यप्रद और उपयोगी विचारों से ही अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करना ठीक रहता है और ध्वंसात्मक विचारों को उपेक्षा द्वारा उखाड़ फेंकना होता है। समझदार व्यक्ति उपयोगी विचारों या स्वास्थ्यप्रद विचारों के चयन करने में पर्याप्त समय लगाते हैं। बार-बार अपने विचारों को नियन्त्रण में रख कर एक ही केन्द्र बिन्दु स्वास्थ्य यौवन, दीर्घ जीवन, सुख, संतोष, आनन्द—की ओर मोड़ते रहते हैं। मस्तिष्क को इन्हीं सही मानसिक दिशाओं में लगाते रहते हैं। जिस केन्द्र पर मस्तिष्क को केन्द्रित किया जाता है, वह उसी दिशा में बढ़ता या विकसित होता जाता है। जिधर से उपेक्षा की जाती है, उधर का प्रभाव फीका और धीमा पड़ता जाता है। मस्तिष्क की शक्तियाँ जिस ओर क्रियाशील रहती हैं। उधर ही सृजन या नव-निवास होता जाता है। बार-बार वही विचार दुहराने या उच्चारण करने से वे मस्तिष्क की स्वाभाविक वृत्तियाँ बन जाते हैं। हमारे वे ही विचार स्थायी रूप ग्रहण करते हैं। जिनसे हमारा रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

पं० श्रीराम शर्मा के शब्दों में, "रागात्मक विचार निरन्तर मथित अथवा चिन्तित होकर इतने दृढ़ और अपरिवर्त्तन शील हो जाते हैं कि वे मनुष्य के विशेष यात्कित्व के अभिन्न अंग की भाँति दूर से ही ज्ञान-

कने लगते हैं। प्रत्येक विचार जो इस सम्बन्ध से संस्कार बन जाता है, वह उसकी क्रियाओं में अनायास ही व्यक्त होने लगता है।"

अतः आप जिन चुने हुए विचारों से अपने हृदय का रागात्मक या भावात्मक सम्बन्ध स्थापित करें और जो इस प्रकार आपके मस्तिष्क का अविभाज्य अंग बनाने जा रहा हो, उसके हर एक पहलू और आगे आने वाले शुभ या अशुभ परिणाम को पर्याप्त सोच-विचार लें। एक बार अव्यक्त या गुप्तमन का निर्माण हो जाने पर उन्हें बदलना असंभव हो जायगा। अपने व्यक्तित्व के नव-निर्माण या स्वास्थ्य संरक्षण के लिये शुभ और सृजनात्मक विचारों को ही स्थायी आधार बनाइये। ये स्थायी आधार ही आपका मनोबल बनाने वाले हैं।

प्रत्येक शुभ सात्विक स्वास्थ्य विचार गुप्तमन की नई रचना प्रारम्भ कर देता है। बार-बार एक विशिष्ट विचार मन में बनाये या जमाये रखने या दुहराते रहने से स्थायी बन जाता है। संकेत या सजैशन ये ही पुष्ट और स्वास्थ्यप्रद हैं जो नए गुप्त मन का निर्माण करते हैं।

दोषपूर्ण या रोग शोक से परिपूर्ण विचारों को निकालने का उपाय यह है कि उनके विरोधी पवित्र, उपयोगी, तथा उत्कृष्ट विचार बराबर दुहराये जायें मन में जमाया जाय निरन्तर पवित्र विचारों को पूरे विश्वास के साथ उच्चारण किया जाये। श्रद्धा पूर्वक उच्चता का मानसिक वातावरण निर्मित किया जाये। अपने विचार यंत्र (मस्तिष्क) को अशुभ या ध्वंसात्मक दिशाओं में जाने से रोका आत्मानुशासन और मर्यादा में बाँधा जाये। हानिकारक या पाप पूर्ण विचारों से सदैव बचा जाये। हम दोष, दुर्गुण त्याग कर जीवन शोधन करें।

असद् भूभ्योः सम्भवत् तद्द्यामेति महद्व्य चः।
तद् वै ततो विधू पायत प्रत्यक कर्तारमृच्छतु ॥

—अथर्ववेद ४।१९।६

दुष्टतापूर्ण कर्म चाहे छोटे हों या बड़े अन्त में करने वाले का ही सर्वनाश करते हैं। उनका प्रतिफल उन्हें भोगना ही पड़ता है।

मह्यं यजन्तां मम यावीष्टा कूतिः सत्यं मनसो में अस्तु ।
येवो मा नि गां कतभच्चनाहं विश्वेदेवा अभि रक्षान्तु मेह ॥
—अथर्ववेद ५।३।४

अर्थात् हम सदा विशुद्ध अन्तः करण से विचार पूर्वक नेक कर्म करने का संकल्प लिया करें और उसे पूर्ण किया करें (शुभ विचारों द्वारा) दुष्कर्म का त्याग और (सद्विचारों द्वारा सद्गुणों को विकसित करना ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य है।

सद्-विचारों रोग-शोक को दूर कीजिए। सद्संकल्प मूल्यवान सम्पत्ति है। सद्विचारों से स्वस्थ मस्तिष्क का निर्माण कीजिये। मल-विकारों से सुरक्षित रहिये।

## स्वीकृतियाँ (Affirmations) देना सीखें और स्वस्थ रहें :

मनोविज्ञान का अकाट्य और शाश्वत नियम है कि जो वाक्य, शब्द या विचार विश्वास पूर्वक दुहराये जाते हैं, वह गुप्तमन में स्थायी रूप से जम जाते हैं और शरीर को उसी दिशा में प्रभावित करने लगते हैं। जो अपने आपको जैसा अच्छा, बुरा, बीमार या निरोग समझता है, वह कालान्तर में वैसा ही बन जाता है। यदि कोई व्यक्ति पूरी निष्ठा के साथ अपने आपको स्वस्थ निरोग, सुन्दर, युवा, प्रसन्न और बलवान मानता है, तो मनोबल के कारण निरोग, सुन्दर और प्रसन्न बनता जाता है। इसे सकारात्मक सृजनात्मक (Positive and creative thinking) विचार करना कहते हैं। इससे गुप्तमन का निर्माण नये-नये उपयोगी रूपों में होता है। मैं प्रसन्न हूँ। मैं आनन्द से परिपूर्ण हूँ! मैं शक्तिशाली हूँ। मैं युवा हूँ। मैं सुन्दर हूँ। ये वाक्य उपयोगी हैं और सृजनात्मक-विचारधारा के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

दूसरी ओर जिन बातों को हम नापसन्द करते हैं और बचना चाहते हैं, उन्हें मन में बनाये रहने से मानसिक निराशा और कमजोरी आती है।

"मैं बीमार हूँ। मैं कुरूप हूँ। मैं वृद्ध हूँ। मैं दुःखी हूँ।" आदि वाक्य आयु और बल को क्षीण करने वाले हैं। इन्हें नकारात्मक चिन्तन (Negative thinking) की कोटि में रखा जाता है। इस अहितकर चिन्तन से सदा ही बचना चाहिए।

सकारात्मक और सृजनात्मक वाक्य दुहराने से मस्तिष्क में नये उपयोगी विचार स्वीकार करने होते हैं। बार-बार जिन वाक्यों को दुहराया जाता है, उसे अफर्मेशन कहते हैं। अफर्मेशन शब्द का अर्थ है गुप्तमन में अच्छे विचार को स्वीकार करना—मान लेना, मंजूर करना। जिस वाक्य को आप बार-बार कहते हैं, वैसा ही खुद अपने आपको मानने लगते हैं। जब ये वाक्य गुप्तमन में उतर जाते हैं, तो शरीर वैसा ही बनता जाता है। बात को बार-बार कहने (Repeat) से वह हमारे विश्वास के रूप में बदल जाता है और शरीर का हिस्सा बन जाता है। जैसा आपका विश्वास, वैसे ही आप बनेंगे। "मैं स्वस्थ हूँ। मैं निरोग हूँ। मैं सुन्दर हूँ।" आदि वाक्य अफर्मेशन या स्वीकृतियाँ हैं। इन्हें मंजूर करने से नये मस्तिष्क का निर्माण होता है। नई आदतें बनती हैं और विचार की सही दिशाएँ मिलती हैं। जैसी आन्तरिक भावना होती है, जीवन में वैसी ही सिद्धि मिलती है। जैसा मन बन जाता है, वैसा ही फल मिलने लगता है।

"मैं बीमार नहीं हूँ। मैं अप्रसन्न नहीं हूँ। मैं कमजोर नहीं हूँ। मैं पराजित नहीं हूँ।" ये (Denial) या नामंजूर करना कहते हैं। यद्यपि अफर्मेशन और डिनायल एक ही अर्थ और एक ही भाव प्रकट करते हैं तथापि अफर्मेशन अधिक प्रभावशाली है। स्वीकृति का असर जल्दी होता है। जितनी जल्दी गुप्तमन स्वीकार कर लेगा, उतनी ही जल्दी नवनिर्माण होगा। मनुष्य को इन्हें स्वीकार करने में ही भलाई है। यदि इनके प्रति शंका की जाय, तो स्वीकृतियों का असर कम हो जाता है। वितर्क करने से मनुष्य उन्हें निर्बल कर देता है।

स्वीकृतियों (Affirmations) और अस्वीकृतियों (Denials) का

नाम संकेत या सजेश्चन (Suggestion) है। सजेश्चन का अर्थ है स्वयं अपने गुप्तमन को या दूसरे के गुप्तमन को प्रभावित करना, उसमें नये उपयोगी विचार भरना, अच्छे इशारे देना। शुभ, सात्त्विक, स्वास्थ्यप्रद, उपयोगी सृजनात्मक भावनाओं में रमण करने से मस्तिष्क को विकसित होने की नई दिशाएँ मिलती हैं। श्रद्धा और विश्वास से भरे हुए उत्तम विचारों को गुप्तमन में बसाना ही सजेश्चनों को स्वीकार करना है। जिन विचारों से स्वास्थ्य बनता है, रोग शोक निराशा दुःख कष्ट दूर होते हैं, उन्हें दृढ़तापूर्वक गुप्तमन में जमा लेना ही स्वीकृति है।

अपने आपको जो शुभ भावनाएँ दी जाती हैं, खुद जिन विचारों को चुन-चुन कर हम अपने गुप्तमन में स्थान देते हैं, उन्हें स्वसंकेत या आटो सजेशन कहते हैं। आदमी स्वयं यह निर्णय नहीं कर पाता कि किन विचारों को अपने लिये चुने, इसलिए अपने लिए सजेशनों का निर्माण विद्वान् विवेकशील मनोवैज्ञानिकों से कराना चाहिए। जिस समझदार विवेकी बुजुर्ग पर आपकी आस्था हो, उसी से संकेत या उपयोगी भावनाएँ लेनी और बार-बार दुहराकर या पुनः-पुनः लिखकर दृढतापूर्वक गुप्तमन में बसानी चाहिए। अपने आप स्वसंकेत ( Auto suggestions) बना लेने से उनमें गलती होने की सम्भावना है। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि डाक्टर खुद अपना इलाज नहीं करता, दूसरों से अपनी चिकित्सा कराता है। एक बार हम खुद अपने साथ रिआयत कर भी दें, दूसरा डाक्टर कभी रिआयत नहीं करता। दूसरा विद्वान् आपके लिए आपकी कठिनाई या रोगशोक देखकर संकेतों का निर्माण करेगा।

दृढ़ इच्छा करने से, विश्वासपूर्वक संकेत देने से वे चमत्कारी फल मिलते हैं। आप ऐसे संकेत चुनें या दूसरे को दें, जो आपके सोये हुए आत्म विश्वास को जगाने वाले हों। शुभ भावना को मजबूती से गुप्तमन में जमाना चाहिए। पवित्र स्वीकृति से रोकशोक छूटकर श्रेष्ठता की

भावनाएं विकसित होती हैं। जिन भावनाओं में आप सदा रमण करते हैं, वे आपके मस्तिष्क के अङ्ग बनकर जीवन को ढालते हैं।

हम जिन संकेतों या विचारों से हृदय का सम्बन्ध स्थापित कर लेते हैं, उनसे व्यक्तित्व का विकास जल्दी होता है। भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाने से स्वीकृतियाँ ईश्वर की दिव्य शक्ति से संयुक्त हो जाती हैं। ईश्वरीय शक्ति से जुड़ जाने पर हमारी प्राणशक्ति बढ़ जाती है।

आपके मस्तिष्क के कई धरातल हैं १—अचेतन, २—अर्द्धचेतन, ३—सचेतन, ४—ऊर्ध्वचेतन। मस्तिष्क के विकास के प्रारम्भ में हमारा अचेतन मन हमारी विचारशक्ति के हाथ म रहता है। धीरे-धीरे अर्द्ध-चेतन अवस्था में नये संकेत जमते जाते हैं और जमकर सचेतन हो जाते हैं। बार बार दोहराने और मन को स्वीकृतियों पर एकाग्र करने से ये शुभ भावनाएं स्थायी जड़ जमाने लगतीं है। इस सचेतन अवस्था में कार्यक्रम की बागडोर अचेतन और जड़ से निकलकर सचेतन के हाथ में पहुँच जाती है और इस अवस्था में बुद्धि का प्राधान्य होता है। इसके आगे भी एक ऊर्ध्वचेतन की अवस्था आती है जिसे योगी 'समाधि' के नाम से पुकारते हैं। विकास के प्रत्येक स्थल पर विचारशक्ति का अस्तित्व मानना चाहिए। आधुनिक मनोविज्ञान ने इन्हें (१) Un conscious अचेतन, (२) Sub-conscious अर्द्धचेतन, (३) Super-conscious अविचेतन मानसिक अवस्थाएं (States of mind) माना है। प्राचीन भारतीय विचारकों ने इन्हें सुपुप्ति, स्वप्न, जाग्रत और समाधि अवस्थायें कहा है। ये हमारे मानसिक जीवन के नाना स्तर हैं। हमारा सुख, समृद्धि शान्ति, आनन्द, जीवन इस बात पर निर्भर करते हैं कि हम किस प्रकार के विचारों की संगति में निर्वाह कर रहे हैं। हमारे चिन्तन का क्या विषय है ? हमारे चेतन मन के विचारों का स्रोत अचेतन मन में रहता है। अतः हमें बार-बार नये विचारों के संकेत देकर अचेतन मन को शुद्ध करना चाहिए।

प्रतिदिन प्रातःकाल उठने पर तथा रात्रि में सोने से पूर्व शान्त चित्त

होकर एकान्त स्थान में आँखें बन्द कर बैठ जाइये। मन और शरीर को शिथिल कर लीजिये। सब ओर से मन को हटाकर केवल शुद्ध और पवित्र विचारों पर केन्द्रित कीजिये। पुनः-पुनः नये स्वास्थ्यनिरोग और आरोग्य देने वाले विचारों को दोहराइये। आगे जो भावनाएँ दी जाती हैं, उन पर दृढ़ता से चित्त को एकाग्र कीजिये। अभ्यास द्वारा निश्चय ही आप में स्वास्थ्य, सौन्दर्य, पवित्रता, निर्भयता, शान्ति और स्थिरता की भावना का संचार होगा। अपनी स्वीकृतियों (Affirmations) द्वारा विचार संयम कीजिये।

यहाँ विचारों पर संयम करने के लिये एक दिव्य भावना दी जा रही है। दस मिनिट इस पर चित्त एकाग्र कीजिये, तो आपको विकास की प्रथम अवस्था प्राप्त होगी। इसे बार-बार पूर्ण निष्ठा से दुहराते रहिये।

## विचार संयम की भावना :

"मैं अब यह स्वीकार करता हूँ कि मन ही सारी मानसिक और शारीरिक क्रियाओं का केन्द्र है। पहले मैं इसलिए दुःखी और रोगी था क्योंकि विचारों पर मेरा अधिकार नहीं था। रोग, शोक, व्याधि, भय, मृत्यु के विचार मेरे मन में उथल-पुथल मचाते रहते थे। मैं उन्नति करना चाहता था तो वे दुष्ट विचार मुझे घसीट कर चिन्ता के गड्ढे में गिरा देते थे और मैं ऐसा किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाता था कि कुछ भी निश्चय नहीं कर पाता था लेकिन अब मैं दृढ़ निश्चय करूँगा कि इन्द्रियों को रोककर अपने मन काबू करूँगा। मेरे शरीर पर पर मेरे मस्तिष्क का पूर्ण अधिकार है। मैं जिधर अपने मनको मोड़ूंगा, मेरा शरीर भी उधर ही मुड़ जायेगा।"

"अब मुझे यह अनुभव हो गया है कि इन्द्रियों से ऊपर मन है, मन से परे बुद्धि है, और बुद्धि से परे मेरी वास्तविक आत्मा है। मैं तो अपने मन को आत्मा का अनुयायी बना रहा हूँ। अब मेरे मन में व्यर्थ के रोग शोर व्याधि के दूपित विचार आने का साहस नहीं कर सकते। मेरा

मन, मेरा चित्त, मेरा जीव, व्यर्थ के विषयों में खूब भटकता रहा है, फजूल ही मारा-मारा घूमता फिरा है, किन्तु इसे कभी शान्ति और स्थिरता प्राप्त नहीं हुई है। अब प्रभु की दया से मेरे हृदय में सत्य की भावना का उदय हुआ है। मेरी आत्मा जागृता हो गई है और मैं ध्यानस्थ होकर आत्म शक्ति द्वारा अपने मन-बुद्धि चित्त और अन्तःकरण को परमात्मा के प्रति अभिमुख करता हूँ। मेरा मन, हृदय और आत्मा परमात्म प्रज्ञा से ज्योतिमय हो रहा है। प्रकाश रूप हो रहा है। इस पवित्र प्रकाश को अज्ञान और अन्धकार छू नहीं सकते।"

"मैं नित्य प्रति मन को आशा, उत्साह, शक्ति, स्वास्थ्य, यौवन जैसे विषयों पर एकाग्र करता हूँ। जो कार्य हाथ में लेता हूँ, उसको बड़े मनोयोग और रुचि पूर्वक करता हूँ। शुष्क से शुष्क विषयों पर भी अपने मन को एकाग्र कर सकता हूँ। मैं ध्यान की शक्ति से अच्छी तरह परिचित हूँ। मेरे मन में महती शक्ति है। जब मैं स्वाध्याय या ग्रन्थ अध्ययन में लगता हूँ तो अपनी समग्र मन की वृत्तियों को पूरी तरह एकाग्र कर देता हूँ। नित्य विचारों को एक ही विषय पर केन्द्रित कर चित्र का संयम करता हूँ। जल में व्यायाम, आसन, प्राणायाम करता हूँ तो समग्र वृत्ति को उसी में लगा देता हूँ। जिस विषय पर मन को एकाग्र करता हूँ, उसके अतिरिक्त दूसरे विचार मेरे मन में प्रविष्ट नहीं होते। मैं निरर्थक विचारों को अपने मन में उत्पन्न नहीं होने देता। मेरा मन कभी व्यर्थ की उत्तेजना और उद्वेग के वशीभूत नहीं हो सकता। मुझे अपने विचार-यन्त्र पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त हो गया है। मैं अब अहितकर चिन्तन से सुरक्षित हो गया हूँ।"

इन स्वीकृतियों को मंजूर करने से और अपने गुप्त मन में जमाने से मस्तिष्क स्वस्थ दशा में आता है। उसकी निर्बलता दूर होती है। आत्म विश्वास बढ़ता है। वह सृजनात्मक दिशाओं में अग्रसर होता है। जब आप पूरे विश्वास के साथ उच्चारण करते हैं, "मैं निरोग हूँ। मैं

पूर्ण स्वस्थ हूँ, मैं सुन्दर हूँ, मैं निर्भय हूँ, समस्त रोगों से सुरक्षित हूँ।" तो इन स्वीकृतियों द्वारा अपके अन्तर्मन पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पड़ता है। पुराने कुसंस्कार मिटकर अच्छे संस्कार वनती हैं। स्वास्थ्य, यौवन और आरोग्य उत्पन्न करने के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के भावयुक्त वाक्य को दुहराते रहना आवश्यक है। यह आत्म सूचनाएँ (Auto-Suggetsions) प्रेरणा भरी हुई होनी चाहिए। मव्य विचारों में रहना सत्संग में रहने के समान गुणकारी है। ऐसा प्रयत्न कीजिए कि आपके गुन्त मन में ये स्वीकृतियाँ मजबूती से बैठ जाँए। बुनियादी तौर पर जम जाँये यदि आप किसी रोगी की चिकित्सा कर रहे हैं, तो उसे भी बरावर उच्चारण करवा कर ये विचार स्वीकृत कराइये। उसके गुप्त मन में दृढ़ता पूर्वक बीजों की तरह वो दीजिए।

## दैनिक ध्यान करने के लिए स्वीकृतियाँ :

प्रतिदिन (प्रातः काल और सायंकाल) शान्त चित्त होकर एकान्त स्थान में शरीर और मन को नीचे लिखी भावनाओं में ओतप्रोत कर लें। पुनः पुनः पूरी निष्ठा से दुहराऐं। इन पर मन लगाने से आत्म वल और समार्थ्य बढ़ती है और गुप्त शक्ति प्रकट होती है—

"मैं रोग, व्याधि, शोक, निर्बलता से मुक्त हूँ, क्योंकि शुद्धबुद्ध निर्मल अन्तर्व्यापी परमेश्वर ने मुझे समस्त सांसारिक वन्धनों की भावनाओं से मुक्त कर दिया है।

परमात्मा ही जो स्वास्थ्य सौन्दर्य और यौवन का पुंज है, वही आरोग्य मेरे जीवन का सिद्धान्त है।

आज मैं शान्ति में स्थित हूँ, क्योंकि मुझे इस वात का पूर्ण ज्ञान हो गया है कि परमात्मा की शान्ति मुझ में विराजमान है। उसे कोई बाहरी उपद्रव भंग नहीं कर सकता।

मैं समस्त रोगों से मुक्त हूँ क्योंकि मेरी धारणा है कि परमात्मा सभी रोग शोक से युक्त है। उसी परमात्मा का मुझ में निवास है। मुझे

में स्थित परमात्म-सत्त मुझे इस बात का ज्ञान कराती है कि सर्व शक्ति-मान एक वही है और उसकी सारी शक्तियाँ मुझ में निवास कर मेरी सहायता कर रही हैं।

मुझे यह जानकर हर्ष होता है कि मुझ में स्थित ईश्वर पूर्ण निरोग हैं। चिर आनन्दमय है। वह सब के प्रति आनन्द का प्रकाश करता है। स्वर्ग का राज्य न तो अन्यत्र है और न भविष्य में है। वह वस्तुतः मुझ ही में है। सत्य का चिन्तन करते हुए परमात्म हृदय तथा आध्यात्मिक चैतन्य की प्राप्ति होती है।

मुझ में और मेरे समस्त कार्यों में जिस कल्याण की भावना का प्रसार हो रहा है, मैं शान्ति पूर्वक उसके कार्य का अवलोकन कर रहा हूँ। मुझ में ईश्वर की अप्रतिम साहस की स्थिति मुझे निर्भय बनाती है। ईश्वरीय विभूतियों का शुद्ध और पवित्र करने वाला तथा आत्मिक बल प्रदान करने वाला चरित्र मुझे शुद्ध और पवित्र बनाता है। मेरे जीवन को बल प्रदान करता है।

मैं प्रत्येक प्रातः काल में नवीन विचार, नई घड़ियों और नई आशा उल्लास को लेकर उठता हूँ। मेरे शरीर का प्रत्येक अवयव स्वस्थ है। शक्ति से फड़क रहा है। मेरा रोम-रोम लहलहा रहा है। मुझ में स्थित परमात्मा जो आध्यात्मिक पूर्णत्व है अब विकास पा रहा है और अब मैं अनुभव करता हूँ कि सचमुच मैं ईश्वर का शक्तिशाली पूर्ण स्वस्थ पुत्र हूँ।

मैं सब प्रकार की मानसिक और शारीरिक चिन्ताओं से दूर रहता हूँ क्योंकि में स्वीकार करता हूँ कि प्रत्येक कार्य का नैसर्गिक क्रम सुनिश्चित है। मुझ में निर्मल और निर्विकार ईश्वरीय सत्ता प्रतिक्षण बढ़ती जा रही है और मैं भी उसी प्रकार आध्यात्मिक चेतनता में विकास पा रहा हूँ।

परमात्मा की स्वास्थ्य और पूर्ण आरोग्य की भावना ने मुझे समस्त रोगों, आधि-व्याधि से मुक्त कर दिया है। मेरे समस्त विकार, रोग, चिन्ताएँ दूर हो गई हैं। अब मुझे पूर्ण स्वास्थ्य का ज्ञान है।

ऊपर लिखे विचार गुप्त मन में बस जाने चाहिए। रोग, शोक, चिन्ता, व्याधि, अपमान, अन्याय, पाप या दुराचार के विचार मन में आते ही सावधान हो जाना चाहिए और उच्च भावनाओं तथा सद्विचार द्वारा उन्हें गुप्त मन से निकाल बाहर कर देना चाहिए। इन भावनाओं के वातावरण में मस्तिष्क को रखने से स्वभाविक मनोबल प्राप्त हो जाता है।

## आरोग्य तथा आनन्द की भावना गुप्तमन में जमाइये :

नीचे लिखी भावना को कई बार धीरे-धीरे श्रद्धा पूर्वक उच्चारण करके दुहाइये, आपके दैनिक जीवन में आरोग्य तथा आनन्द की भावना का प्रादुर्भाव होगा—

'मैं आरोग्य हूँ। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मैं पूर्ण सुन्दर हूँ। मेरे अन्दर आनन्द रूपी परमात्मा का तत्त्व प्रचुरता से भरा हुआ है। मैं निरोग और दीर्घायु हूँ।

गन्दगी से भरे घर में कोई रहना पसन्द नहीं करता। ऐसे अस्वास्थ्यप्रद स्थान पर कोई सुखी, स्वस्थ या प्रसन्न नहीं रह सकता। मैं यह स्वीकार करता हूँ कि कूड़ा-कचरा बीमारी और रोग के अतिरिक्त कुछ नहीं फैला सकता! इसे दूर कर देना ही ठीक है। जिसे अच्छी तरह स्वस्थ जीवन जीना है, उसे स्वच्छता से स्वच्छ स्थान में रहना चाहिए। मैं अब सर्वत्र स्वच्छता की आराधना करता हूँ। बाहर से स्वच्छ और अन्दर मन से भी पूरी तरह स्वच्छ निर्मल!

मन का कूड़ा कचरा चिन्ता, द्वेष, घृणा, क्रोध, ईर्ष्या, निराशा के विचार होते हैं। ये अहितकर विचार हमारे शरीर-रूपी घर में रोग फैलाकर रक्त को दूषित करते रहते हैं। मुझे उत्तेजित करते हैं और रक्त को जलाकर शरीर के कोषों को निर्जीव करते हैं। अब मैं समझ गया हूँ कि यदि मुझे दीर्घकाल तक स्वस्थ रहना और अच्छी तरह जीना

है, आरोग्य और सुन्दर रहता है, तो अनिष्ट विचार रूपी कूड़ा करकट, अहित कर चिन्तत से मुक्त रहना होगा। रोग, शोक, निराशा के स्थान पर आशा, उत्साह, दृढ़ता, प्रेम की भावनाएँ रखना और इनका व्यावहार करना होगा। स्वास्थ्य दीर्घायु और आनन्द का उपयोग करना होगा। स्वास्थ्य के विचारों से स्वास्थ्य बढ़ता है। सौन्दर्य के विचारों से सौन्दर्य निखरता है। मैत्री भाव रखने से मैत्री प्राप्त होती है। रोग व्याधि के विचार रखकर करोड़पति होने की अपेक्षा स्वास्थ्य और सौन्दर्य की भावनाएँ कहीं अधिक मूल्यवान हैं। स्वास्थ्य और आरोग्य के विचार मेरा भविष्य बनाने वाले हैं। मैं आज से शारीरिक और मानसिक दोनों रूपों में पूर्ण निरोग रहना आरम्भ करता हूँ। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। मैं निरोग हूँ।

मेरे प्रत्येक श्वास के साथ विश्व का स्वास्थ्य आ रहा है। मेरे रक्त के अणु अणु में आरोग्य भरा है। मुझे बहुत दिन इस जीवन का आनन्द लूटना है। आनन्द तत्व के कारण मेरा सारा शरीर प्रफुल्लित हो रहा है। स्फूर्ति भर रहा है और मैं अनुभव करता हूँ कि मैं पूरी तरह तन्दुरुस्त हूँ। दिव्य हूँ।

अब मुझे रोग शोक की कोई चिन्ता नहीं है। किसी के प्रति कोई क्रोध, द्वेष, ईर्ष्या या घृणा नहीं है। क्योंकि सब लोग मेरे ही समान सुन्दर और अच्छे लोग हैं। मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ। दूसरे भी पूर्ण स्वस्थ रहें। मैं स्वास्थ्य, आरोग्य और प्रेम द्वारा उत्तम जीवन बना रहा हूँ।"

पहले एक बार समग्र भावना को पढ़ जाइये। फिर धीरे-धीरे एकाग्रता पूर्वक कई बार गुप्त मन में बैठाइये।

## स्वीकृति के प्रयोग में इच्छा शक्ति, भावना और विवेक का प्रयोग करें:

जब आप स्वयं अपने लिए या दूसरों के लिए स्वीकृति (Affirmation) का उपयोग करें, तो आपके मन की आदत बदलनी चाहिए।

उदाहरण के लिए इच्छा शक्ति से परिपूर्ण स्वीकृति में दृढ़ संकल्प मिला रहना चाहिए। भावनापूर्ण स्वीकृति में भक्ति की पुट होनी चाहिए। तर्क से पूर्ण स्वीकृति में अच्छी तरह विवेक सम्मिलित होनी चाहिए। आप जो कहें, मन से उसे स्वीकार भी करें।

जब आप किसी के रोग को दूर करने के लिए संकेत या सेजशन (Suggestion) का उपयोग करें, तो ऐसी भावना को काम लें जो आपके रोगी की भवात्मक, काल्पनिक या विवेकपूर्ण समझ बुद्धि से मेल खाती हो। चिकित्सा के लिए जो भावनाएँ रोगी के गुप्त मन को दी जांय, उनमें ध्यान की एकाग्रता (Intensity of attention) का पहला स्थान आता है, पर लगातार यह सजेशन देते रहना और उनकी भावनापूर्ण पुनरावृत्ति से बहुत लाभ होता है। उसे ऐसी भावनाएँ दीजिए जिसमें भक्ति, इच्छा शक्ति व विश्वास भरा हो। दूसरे का दुःख मिटाने, उन्हें सुखी करने का सच्चा भाव हो। याद रखिए, किसी प्रकार का मानसिक अथवा मनोविकार जनित शरीरिक रोग घृणा से बढ़ता और प्रेम से नष्ट होता है। रोगी दूसरे लोगों से और अपने आप से घृणा करने लगता है। जब दूसरों को हानि पहुँचाने वाली भावना अपने आप पर आरोपित हो जाती है, तो वह रोग के रूप में प्रकट होती है। मानसिक रोग गुप्त मन में ग्रन्थि के रूप में जमे हुए विकार को निकालने का प्राकृतिक उपाय है। आपके विशुद्ध सेवा और प्रेम से दिये हुए सजेश्चन रोगी के मन को शुद्ध करते हैं, प्रेम, दया, स्नेह, आशा के संकेतों से उसका रोग कम हो जाता है, या बिलकुल ही दूर हो जाता है।

प्रोफेसर लालजीराम शुक्ल की सलाह मानिये। वे लिखते हैं, "मनुष्य के भले अथवा बुरे मानसिक भाव संक्रामक होते हैं। जैसे प्रबल भाव एक व्यक्ति के होते हैं, वैसे ही उसके आस-पास रहने वाले व्यक्तियों के भाव हो जाते हैं। प्रबल घृणा के भाव आस-पास उन्हीं विकारों की उत्पत्ति करते हैं और प्रेम के भाव प्रेम की उत्पत्ति करते हैं। स्वयं रोगी का मन निर्बल होता है। अतएव उसमें बुरे विचारों से प्रभावित होने की

जिननी प्रवृत्ति होती है, भले विचारों से प्रभावित होने की नहीं होती। पर प्रबल प्रेम अथवा आशा के विचार रोगी की विचार धारा को बदल देते हैं और वह मानसिक चिकित्सक के सद्-विचारों से प्रभावित हुए विना नहीं रहता।

रोगी को अपने हृदय से स्निग्ध सकेत दीजिए। अपने प्रेम और आत्मीय भाव को भरिये। सच्चे स्नेह की भावना का चमत्कारी प्रभाव होगा। रोगी को स्वास्थ्य और आरोग्य की ही स्वीकृतियाँ दीजिए। उसके अच्छे गुणों पर ही अपने मनोवल को एकाग्र कीजिए। यदि रोगी की आत्महीनता को दूर करना है तो उसकी वीरता, धैर्य, पौरुष के संकेत दीजिए। क्रोध को दूर करने के लिए शान्ति की भावनाएँ गुप्त मन में बैठाइये। निर्बलता की भावना से मुक्त करने के लिए शक्ति की भावना जमाइये। रोग के स्थान पर स्वास्थ्य की ही चर्चा कीजिए। उसे समझाइये कि अभी उसे दीर्घकाल तक जीवन का आनन्द लूटना है। आप उसे निम्न भावनाएँ दे सकते हैं—

'तुम्हारे अन्दर ईश्वर है। तुम शरीर नहीं आत्मा हो। सत् चित्र आनन्द स्वरूप आत्मा हो, चेतन हो, दिव्य प्रकाशमान हो, ईश्वर तुम्हारा प्रकाश है। ईश्वर तुम्हारा प्राण है, तुम अमर हो।

ईश्वर की सारी ऊँची शक्तियां—स्वास्थ्य, यौवन, सौन्दर्य पौरुष तुम्हारे अन्दर है। तुम प्रेममय हो पूर्ण निर्भय हो। सनातन हो। ईश्वर तुम्हारा प्रेमी है, वह तुम्हारा पौरुष है, तुम्हारा अमरत्व है, तुम कभी न मरने वाली आत्मा हो।

तुम शरीर नहीं हो, तुम्हारे अवयव कोरे हाड़ मांस के पुतले नहीं हैं। तुम्हारा सम्बन्ध तो आत्मा से है। तुम्हारे भीतर जो है, वह दिव्य है, शुद्ध है, परम है, निर्लेप है, तुम्हारा रूप शाश्वत है।

तुम दिव्य स्वरूप हो, रोग,शोक, थकान, उलझन, भ्रान्ति व निराशा से कोई सरोकार नहीं है। तुम प्रकाश हो, तुम ईश्वर के सनातन स्वरूप हो। तुम ईश्वरीय अमरत्व हो। तुम परमात्मा के चेतन स्वरूप हो।

तुम सर्व शक्तिवान परमात्मा के अखण्ड अंश हो। तुम ईश्वर के प्रतिबिम्ब हो। तुम्हारा स्वास्थ्य, सौन्दर्य यौवन, ईश्वरीय प्रतिबिम्ब है। तुम दिव्य शक्तियों के स्थूल रूप हो। तुम्हारा शरीर सूक्ष्म शक्तियों का पुंज है।

तुम उत्तम स्वास्थ्य के प्रतिनिधि स्वरूप हो। तुम्हारे समाज और परिवार को तुम्हारी आवश्यकता है। ईश्वर की दिव्य शक्तियों को तुम में प्रकट होना और दिव्य कार्य करना है। तुम ईश्वर के सुन्दर चित्र हो। तुम परमपिता की उत्कृष्ट कला हो। दिव्य रचना हो। ईश्वर से अभिन्न हो। दैवी शक्ति से तुम्हारी एकता है। तुम ईश्वर के पुत्र हो। उसके उत्तराधिकारी हो। ईश्वर की सम्पूर्ण शक्ति, सम्पूर्ण यौवन, सम्पूर्ण सौन्दर्य तुम्हारा है। उत्तिष्ठत ! जाग्रत !! उठो जगो और अपना दिव्य रूप पहिचानो।

कैसा भी रोग हो, मानसिक दुःख या उलझन हो, ऊपर लिखी भावना से शान्ति, शक्ति और साहस प्राप्त होगा। रोगी की परिस्थिति देखते हुए नई भावनाएँ बनाई जानी चाहिए। कैसी भी प्रतिकूलता दुःख, कष्ट आयें, व्याकुल नहीं होना चाहिए। मन को सन्तुलित करने के लिए शान्ति की भावनाएँ दीजिए। उसी अवस्था में प्रतिभा बुद्धि और चरित्र्य बल तथा आध्यात्मिक सामर्थ्य प्राप्त होगी।

## जीर्ण रोगों का मानसिक उपचार :

जीर्ण रोगों में आपकी जिम्मेदारी और भी अधिक हो जाती है, क्योंकि रोगी के गुप्तमन में रोग की भावना जड़ जमा लेती है। रोगी की आदत, सोचने की प्रक्रिया में रोग के कीटाणु समा जाते हैं। बीमारी एक जीर्ण आदत बन जाती है। वह मन में सदा बीमारी के पंगु विचार बनाये रहता है। घबराहट (Nervousness) और चिन्ता, भ्रान्ति और निराशा, मानसिक आघात और दुःख उसके मस्तिष्क में ग्रामोफोन के रेकार्ड की लकीरों की तरह लकीरें बनाते रहते हैं। निराशा (Despre-

ssion) का प्रत्येक विचार मस्तिष्क की नलिकाओं में रक्त के संचार को रोकता है। रोगी को फौरन अपनी निर्बलता अनुभव होती है।

गुप्तमन में बैठा हुआ रोग का विचार उसे स्वस्थ नहीं होने देता। जीर्ण और पुराने बैठे हुए उपद्रवी विचार अवचेतन को असंतुलित बनाये रखते हैं। इन अप्रिय और अवांछनीय विचारों को निपटाने के लिए आप आशा, उल्लास और आत्मविश्वास की भावनाओं को रोगी के मन में दृढ़ता से देर तक बैठाइए। इसमें काफी समय लगेगा। बार-बार उच्च विचार बोलने और उसके गुप्तमन में जमाने होंगे। पहले रोगी इन भावनाओं में कम दिलचस्पी लेगा, किन्तु धैर्यपूर्वक उन्हें दुहराने से, बार-बार उन्हें स्वीकार कराने से गुप्तमन स्वच्छ होगा। स्वास्थ्य का मानसिक वातावरण बनेगा।

अपना रोग हो, या सामने पड़े दूसरे किसी व्यक्ति का हो उत्तम शब्द या प्रभावोत्पादक मंत्र इत्यादि उच्चारण कीजिए जो दूसरा स्वीकार करता चले या उसका गुप्तमन उन्हें स्वीकार करता चले। आपके शब्दों से वैसा ही कम्पन उत्पन्न होगा। कम्पन में आकर्षण शक्ति है। आप जिस प्रकार के विचार लेंगे या दूसरे को देंगे, उन सजेशनों से उसके गुप्तमन, आत्मा और शरीर को स्वास्थ्य लाभ होगा। मान लीजिए आपके शरीर के किसी भाग में दर्द है, बीमारी है, या मन बेचैन हो रहा है, परेशानी है, तो यह मानसिक उपचार कीजिऐ—

शान्त हो बैठ जाइये या लेट जाइये। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दीजिए। नेत्रों को मूँद लीजिए और जिस भाग में दर्द मालूम हो रहा हो, उस स्थान को मानसिक दृष्टि से देखिए। फिर मन से सशक्त विचार कर अपनी सशक्त भावनाओं या सजेशनों (Suggestions) को दर्द वाले भाग में भेजिए। मन की शक्तियों को उस पर एकाग्र कीजिए और मन ही मन कहिए:—

"इस भाग में जो दर्द या पीड़ा हो रही है, वह एकदम शान्त हो जाय शान्त हो जाय, शान्त हो जाय। निरोग हो जाय। आरोग्यपूर्ण

बन जाय । सारा रोग दूर हो जाये । मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ । मेरा मन बल- वान है । वह मेरे शरीर को पूर्ण स्वस्थ कर रहा है । मैं निर्विकार होता जा रहा हूँ । मेरा दर्द जाता रहा । मैं अब स्वास्थ्य का अनुभव कर रहा हूँ ।"

इस प्रकार कम से कम पचास बार से लेकर सौ बार तक विश्वास के साथ कहिए । जब आप यह सजेशन दे रहे होंगे, तो रुग्ण स्थान पर बिजली के झटके के समान आत्मशक्ति प्रवेश करती मालूम होगी और अन्त में उस भाग का दर्द जाता रहेगा । इस प्रकार हम अपने मजबूत संकेतों (Suggestions) द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार के कम्पन रोगियों में फेंककर उन्हें रोगों से छुटकारा दिला सकते हैं । यह प्रक्रिया एक मास तक जारी रहनी चाहिए ।

## कायरता तथा भय दूर करने के लिए भावनाएँ :

यदि आपको कोई गुप्त भय सता रहा है, या आप अपने आपको निर्बल समझ बैठे हैं तो अपने गुप्तमन को भगवान श्रीकृष्ण की यह स्वी- कृति दीजिए :—

क्लैव्यं मा स्म नमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदय दौर्बल्य त्यक्त्योत्तिष्ठ परंतपः ॥

अर्थात् "हम दीन हीन कायर नहीं हैं । हम असमर्थ नहीं हैं । हम दुर्बल नहीं हैं । हम निस्तेज नहीं हैं । हम तो ईश्वर की अमृत संतान हैं। परमतत्त्व से मिलने वाले आत्मतेज के केन्द्र हैं ।"

हम मोह और संशय के आवेश में आकर अपने को दुर्बल समझकर भयभीत होगये थे । अब हम अपने हृदय की दुर्बलता का त्याग करते हैं । भविष्य में आने वाले सब संकटों का दृढ़ता से सामना करेंगे और कर्तव्यपथ पर डटे रहेंगे ।

हमारा जीवात्मा अजर अमर है । हमें परमात्मा ने अतुल आत्म- शक्ति प्रदान की है । हममें अदम्य उत्साह है । हम अपनी आत्म-ज्योति

को शुद्धता और पवित्रता की भावना से प्रतिदिन प्रदीप्त करते रहेंगे। हमारे हृदय में निर्बल बुद्धि, सत्प्रेरणा और आत्मज्ञान का प्रकाश होता रहता है। मैं अपने उच्च लक्ष्य पर ऐसा दृढ़ हूँ और चट्टान के समान स्थिर हूँ कि परेशानियाँ मेरे निश्चय को चलायमान नहीं कर सकतीं। परमशक्तिशाली सर्वशक्तिमान परमात्मा सदैव मेरे साथ है। इसलिए विघ्न बाधाएँ मेरे सामने नहीं ठहर सकतीं।

उपर्युक्त भावना पर मन को एकाग्र करने से वीर भाव प्रकट होगा। आत्मशक्ति का प्रकाश होगा और ऐसा प्रतीत होगा मानो शरीर बदलकर नया हो रहा है। भीरुता, कायरता और कुसंस्कार छूट जायेंगे। दृढ़ श्रद्धा, ईश्वर के प्रति आस्था और पूर्णता की भावना को अन्तःकरण में जमा लीजिए। दृढ़ इच्छा और बार-बार इन भावनाओं में रमण करने से आपकी गुप्त मानसिक सामर्थ्य प्रकट होगी। सर्वशक्ति और गुप्त सामर्थ्य का महासागर परमात्मा है। उनसे निरन्तर आपका अटूट सम्बन्ध है। समस्त उच्च शक्तियों के भंडार आपके भीतर बैठे हुए हैं। कुछ क्षण के लिए उस महाशक्ति के साथ तद्रूप तन्मय हो जाने से वे गुप्त आत्मिक शक्तियाँ आपमें भी जाग्रत होती हैं। व्यवहार में बाहर दिखाई देने लगती हैं। हम सब कुछ करने में समर्थ हो जाते हैं।

## उद्विग्नता और व्याकुलता के रोग से मुक्त होने की भावना :

"पहले मेरा मन सदा चिन्तातुर और उद्विग्न रहता था। कभी एक रोग तो कभी दूसरे शोक की चिन्ता मुझे सताया करती थी। मेरे ज्ञान-तन्तु उद्वेग और क्षोभ से चंचल रहते थे। तुच्छ रोग भी मुझे परेशान कर देता था और मैं मूर्खों की तरह मृत्यु की बात सोचने लगता था। मैं अन्दर से असंतुलित और व्याकुल रहा करता था। मैं आज से उद्विग्नता और व्याकुलता के रोग से मुक्त होने का दृढ़ निश्चय करता हूँ। अब मैं इन व्यर्थ की बातों को सोचकर मानसिक शक्तियों का अपव्यय

नहीं करूँगा। मुझे अनुभव है कि उद्वेग, उत्तेजना, वासना तूफान मचाते हैं। अब मैं आगे आने वाली बातों के विषय में व्यर्थ ही चिन्तन करके परेशान नहीं होता। मुझ पर परमात्मा आरोग्य की अमृत वर्षा कर रहे हैं। स्वास्थ्य शक्ति और यौवन के केन्द्र प्रभु सदा सर्वदा सर्वत्र मेरे साथ है। मैं समग्र संसार को चलाने वाली शक्ति की व्यापक धारा को अपने अन्दर ग्रहण कर रहा हूँ। और अपनी मन:स्थिति को सजीव और चेतन बना रहा हूँ। मेरे मन की स्थिरता को कोई भङ्ग नहीं कर सकता।"

## नेत्रों के विकार दूर करने के उपाय :

नेत्र मूँद कर अपनी विचारशक्ति को अपने नेत्रों में प्रवाहित कीजिये। अपने मन को नेत्रों पर एकाग्र करने से स्वस्थ रुधिर उनमें बहने लगेगा। मन की एकाग्रता का मतलब है कि आपका सारा ध्यान एक ही वस्तु या विषय पर केन्द्रित हो जाय। एकाग्रता की शक्ति के कारण मन की सारी शक्ति नेत्रों को स्वस्थ बना देगी। जिस प्रकार के विचार आते हैं, वैसी ही तरंगें उठकर मस्तिष्क के सूक्ष्म तन्तुओं को उत्तेजित कर देते हैं। कुछ देर खोलकर मन की शक्ति को नेत्रों की पुतलियों, पलकों, अन्दर के अवयवों पर केन्द्रित करते रहिए। पुतली को ऊपर नीचे घुमाइये, दाहिने से बाँयें और बाँयें से दाहिनी ओर घुमाते रहिये। भौंह के बीच में नेत्रों को एकाग्र कीजिए। अपनी नाक के आखिरी किनारे पर नेत्रों को एकाग्र कीजिये। मन इन भावनाओं को जमाइये: —

मेरे नेत्रों की ज्योति निरन्तर बढ़ रही हैं। मैं अपनी आँखों को स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। सर्वशक्तिमान ईश्वर की शक्ति से मेरे नेत्रों में नवीन शक्ति आगई है। मेरी माँसपेशियाँ सक्रिय होगई हैं। मेरी नेत्र शक्ति चमत्कारिक रूप में सुधरती आ रही है। ईश्वरीय रोशनी मेरे नेत्रों में आ रही है। मेरी आँखों के माध्यम से ईश्वर झांक रहे हैं। मेरी

अन्तर्ज्योति प्रकट हो रही है। मैं ईश्वर की अनन्त ज्योति में से रोशनी खेंच रहा हूँ। मेरे नेत्रो ! तुम शक्तिशाली हो। मेरे मन की सारी शक्ति तम्हें स्फूर्ति दे रही हैं। मैंने अपने भीतर आत्मा का शक्तिकेन्द्र खींच लिया है जो प्रकाशकेन्द्र है। उसी का प्रकाश मेरे नेत्रों से निरन्तर प्रकट हो रहा है। अब मैं स्वस्थ अनुभव कर रहा हूँ। ईश्वर मेरे भीतर से झाँक रहा है। मेरे नेत्रो ! मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि मेरे शरीर की सेवा करते रहो। मेरे सौन्दर्य को प्रकट करो।"

मन की शक्ति को ऊपर लिखे संकेतों से नेत्रों के रगरेशों तक पहुँचाइये। मस्तिष्क के जीवित कोषों की वृद्धि होगी और आप स्वस्थ हो जायेंगे।

## पेट के रोग दूर करने के लिए भावना :

"मेरा उदर पवित्र भोजन और स्वच्छ जल से भरा हुआ है। वह भोजन मुझे स्वस्थ रक्त और शक्तिशाली वीर्य प्रदान कर रहा है। मैं जो स्वास्थ्यवर्द्धक भोजन खाता हूँ, उससे मुझे लाभ होता है। मेरा शरीर नवीन रक्त प्राप्त करता है। मैं ईश्वर का अंश हूँ। परमात्मा का अंश जीवात्मा हूँ। परमात्मा सर्वशक्तिमान है। वही शक्ति मेरे पेट को ठीक अवस्था में रखे हुए है। मुझे कोई उदर का रोग कभी नहीं होना है। मेरा आहार सूक्ष्म स्वास्थ्यप्रद होता है। मुझे अभक्ष्य पदार्थों से घृणा है। मैं पालक, मैथी, मूली, टमाटर, नीबू, आँवला, सन्तरा आदि शाक तरकारियों का प्रयोग करता हूँ। दूध मेरा प्रिय पेय है। मैं कोई भी नशा नहीं करता। मैं समय पर हल्का भोजन करता हूँ। इससे मुझे रक्तशोधक, पुष्टिकारक निर्दोष धातु प्राप्त होती है। मेरा रुधिर स्वस्थ है। मैं गरिष्ठ भोजन नहीं करता। तले हुए पदार्थ, घी, तेल माँस, मदिरा, सिग्रेट, पान, चाय आदि से मुझे घृणा है। मैं पौष्टिक अन्न खूब चबा-चबा कर खाता हूँ। इससे मेरी आँतों को अधिक श्रम नहीं करना पड़ता। पकवान, मिष्ठान्न की अपेक्षा फल अधिक पसन्द

करता हूँ। पर्याप्त जल का सेवन करता हूँ। मेरा भोजन ताजा और सादा होता है। ग्रेहूँ चना, मटर, किशमिश, खजूर, पपीता मुझे शक्ति देते हैं। मैं पेट के सब रोगों से पूर्णतः मुक्त हूँ।"

## अनिद्रा तथा भयंकर स्वप्नों से मुक्ति :

मन सदैव विचारों से घिरा रहता है। वह बिना विचारों के खाली नहीं रह सकता है। दिन-रात बिना सोचे विचारे एक क्षण भी शान्त नही बैठ सकता। सोते-सोते भी वह एक प्रकार के विचार-मण्डल से घिरा रहता है। जिस प्रकार मनुष्य के साथ छाया रहती है, इसी प्रकार चारों ओर विचार छाये रहते हैं। सोते समय बाह्यमन तथा शरीर के अवयव तो शयन करते या थककर चूर हो जाते हैं। थकावट के कारण शरीर शिथिल हो जाता है किन्तु गुप्तमन सतत क्रियाशील बना रहता है। भय या क्रोध, द्वेष, उद्विग्ना, अशान्ति, घबराहट, चिड़चिड़ापन, शोक, आवेश, चिन्ता और प्रतिकूल प्रसङ्ग परेशान और व्याकुल कर देते हैं। गुप्तमन उन्हें पकड़े रहता है। जो भय या मनोविकार, गन्दी भावनाएँ, दुष्ट विचार हमारे जाग्रत जीवन में विवेकबुद्धि के निमन्त्रण से दबी हुई रहती थी, वे यकायक पुनः जाग्रत होकर मानस-पटल पर आ जाती हैं। हमारे स्वप्नों का निर्माण हमारी छिपी हुई अतृप्त इच्छाओं, दलित अनुभूतियों, पिसे हुए अरमान और टूटी हुई आकांक्षाओं का ताना बाना है।

गुप्तमन स्वप्नों के लिए बड़ी उर्वर भूमि है। पुण्य विचारबीज देर से पनपते हैं, पर झाड़झंखाड़ की तरह कुविचार और कुकल्पनाएँ तेजी से बढ़ती जाती हैं। भय, दुःख, क्रोध, ईर्ष्या, व्यभिचार इत्यादि की दलित वासनाएँ बड़ी तीव्र गति से पुरानी स्मृतियों और भय के अनुभवों से मिलकर भयंकर स्वप्नों का निर्माण करते हैं। जैसा जिसका अन्तर्मन, वैसे ही स्वप्न ! जो व्यक्ति भय और दुःख की उलझनों से भ्रान्त और चिन्तित रहेगा, उसके सोते रहने पर चारों ओर भयंकर वातावरण बना रहेगा। सोते समय और भी दुःख देगा।

सर्वप्रथम गुप्तमन से भय की भावना निकाली जानी चाहिए। दूसरों से डरने की भावना त्याग देनी चाहिए। गुप्तमन को यह भावनाएँ देनी चाहिए --

"मैं पूर्ण निर्भय हूँ। मुझे किसी का भय नहीं है। जब-जब भय भ्रान्ति अपना सिर ऊँचा उठाने का प्रयत्न करेंगे, मैं तुरन्त ही निर्भयता की गदा से उन्हें मार भगाऊँगा। मैं परमात्मा की अमर संतान हूँ। मैं सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा हूँ। मेरे हृदय में आत्म ज्योति का दिव्य सूर्य उदय हुआ है। अज्ञान रूपी अन्धकार दूर होने से मेरा भय दूर हो गया है। तेजस्विता रूपी सूर्य प्रकाशित हो रहा है। मैं चारों ओर से निर्भय हूँ। स्वतन्त्र हूँ। रुकावटों और बन्धनों से मुक्त हूँ। आत्म-श्रद्धा, निर्भयता और साहस के सद्‌गुण मुझमें प्रचुरता से आ रहे हैं। भय और क्लेशदायक दुर्भाव मेरे पवित्र अन्तःकरण को कभी चलायमान नहीं कर सकते। भय अनिश्चिता, भ्रम और संशय की विचारधारा मेरे सात्विक निर्भय और स्वतन्त्र जीवन में कोई बाधा नहीं डाल सकती। मैं सभी रुकावटों और भयों से मुक्त हूँ। मेरे मन में सदा आशा और शक्ति के विचार छाये रहते हैं।"

सोने से पूर्व आप उपर्युक्त सजैशन गुप्तमन को पूरी निष्ठा से दिया दिया करें तो आपको भयंकर स्वप्नों से मुक्ति मिलेगी और शान्तिमय निद्रा आयेगी।

## कामुकता के रोग से छुटकारा :

कामुकता एक क्षुद्र उत्तेजना है। यह एक पशु प्रवृत्ति है जिसके वश में हो जाने पर मनुष्य साक्षात् दानव हो जाता है। ईश्वर चाहता है कि सन्तान प्राप्ति के उद्‌देश्य से ही संभोग किया जाय। वासना को अनियंत्रित छोड़ देने से व्यक्ति ऐसे-ऐसे दुष्टतापूर्ण कुकृत्य कर बैठता है जिसके कारण उसे गुप्त अंगों सम्बन्धी निद्य रोग लग जाते हैं, जीवन कम हो जाता है,वीर्य का अनुचित क्षय होता है और शक्ति क्षीण हो जाती है।

जाती है। सेक्स की शक्ति को संयमित करके, साहित्य, संगीत, समाज सेवा, भक्ति आदि उच्चकोटि के सांस्कृतिक, साहित्यिक और सामाजिक कार्यों में लगाना चाहिये। ईश्वर आपको कामुकता से सावधान करता है। कामुकता से मुक्ति के लिये गुप्त मन में यह भाव जमाइये—

"मैं अब अच्छी तरह जान गया हूँ कि काम वासना एक दुर्बलता है जो मुझे व्यर्थ ही अस्त-व्यस्त और परेशान करती रहती है। मैं अपनी वासना को वश में रखता हूँ। मेरी गुप्त इन्द्रियाँ विवेक द्वारा संचालित होती हैं। मैं कामोत्तेजक वातावरण गन्दी पुस्तकों, अश्लील चित्रों, फिल्मों से दूर रहता हूँ। मैं वीर्य की रक्षा करता हूँ। नारी जाति को मैं पवित्र और पूज्य दृष्टि से देखता हूँ। मैं वासना की उत्ते-जना से अपने गुप्त अवयवों को सुरक्षित रखता हूँ। मेरे शरीर का उद्-देश्य परम पवित्र है। सृष्टिकर्त्ता ने मुझे समाज की सेवा के लिए, ऊँचे उद्देश्यों के लिए पैदा किया है। मैं वासना की पशु प्रवृत्ति के कुचक्र में कभी नही आऊँगा। मैं बाहर भीतर से पवित्र हूँ। उच्च उद्देश्यों के लिए जा रहा हूँ। अपना सारा समय उच्च विचार में ही व्यतीत करता हूँ। मैं वासना के निम्न स्तर से ऊँचा उठ कर देवता की कोटि में पहुँच गया हूँ। मेरे स्वभाव में सतोगुण का प्राबल्य हो रहा है। मेरा मन आत्मानुशासन और आत्मसंयम से संचालित होता है। मैं भद्र और कल्याणकारी विचारों में ही रमण करता हूँ। वासना की उत्तेजना पर काबू पाकर मैं शान्त सन्तुलित जीवन बिता रहा हूँ।"

महात्मा ईसा के ये शब्द स्मरणीय हैं, "परमेश्वर की इच्छा है कि आप पवित्र बनें। व्यभिचार से सदा सर्वदा बचे रहें। आपके हृदय में नारी जाति के लिए आदर और सम्मान की शुभ भावनाएँ हों।" अतः कामुकता के विकार से बचिये। सदा उच्च विषयों का ही चिन्तन कीजिए। पवित्र पुस्तकों का ही अध्ययन कीजिए। वासना की गुलामी में मत फंसिये। कामुकता के हानिकारक विचार मन से निकाल दीजिए।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि विचार शक्ति द्वारा हम सब प्रकार के रोग, शोक, वासना, मनोविकार और कठिन परिस्थितियों से मुक्त हो सकते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने विचारों की दिशा सही रखें, सकारात्मक रीतियों से विचार (Positive thinking) किया करें। आपके जीवन में अनेक कठिन और मुसीबत के क्षण आते हैं। व्यापार में घाटा, निकट सम्बन्धियों की मृत्यु, दुर्घटनाएँ आदि कठोर परिस्थितियाँ आपको विचलित करती हैं। ऐसे कठिन अवसरों पर आप शान्त भावों में रहने का अभ्यास करें। विचारों को शान्ति पर केन्द्रित करें। शान्त विचारों को बनाये रखने से मानसिक सन्तुलन बना रहता है और कठिन परिस्थितियाँ सरल मृदुल हो जाती हैं। शान्त विचारों को आदत बना लेने से भय, चिन्ता, हानि का भयावना रूप नष्ट होता जाता है; मन में शान्त भावना बनाये रखने के लिए आप शान्तचित्त और स्थिर बुद्धि से कहिये—

"आकाश शान्त है। पृथ्वी और आकाश के बीच का भाग शान्त है। समस्त प्रकृति शान्त है। जल शान्त है। औषधियाँ शान्त हैं। वनस्पतियाँ शान्त हैं। सब देव शान्त हैं। ब्रह्म शान्त है। समस्त वातावरण में मैं जिधर देखता हूँ, सर्वत्र शान्ति ही शान्ति है। वह चारों ओर व्याप्त प्रगाढ़ शान्ति मुझे प्राप्त हो।"

शान्ति के इन विचारों को गुप्तमन में जमा लेने से समस्त रोग शोक दूर हो जाते हैं। इन सात्विक और पवित्र विचारों में प्रचण्ड रोग निवारक शक्ति है। इनकी गति प्रकाश की गति से भी तीव्र है। प्रकाश की गति का प्रवाह तो एक सैकिण्ड में ईथर (आकाशतत्व) द्वारा १८-६००० मील पर पहुँच सकता है, किन्तु विचारशक्ति की गति का प्रवाह चार हजार से लगाकर आठ पद्म मील तक एक सैकेन्ड में जा सकता है। शान्ति के विचारों की लहरें वायुमण्डल को पवित्र कर देंगी। हमारी कल्पना शक्ति, एकाग्रता और इच्छा शक्ति पर विचारगति निर्भर है। अतः अभ्यास द्वारा इन सभी को विकसित करते रहिए। अच्छे से

अच्छे स्वास्थ्य की कल्पना कीजिए। सुदृढ़ निरोग शरीर का मानसिक चित्र मन में बनाये रहिये। यौवन और सौन्दर्य से भरे हुए मानवों के स्वास्थ्य पर मन को एकाग्र कीजिये। गुप्त मन में यह विचार दृढ़ कीजिए कि आप स्वास्थ्य और शक्ति का वायुमण्डल बना रहे हैं। सात्विक विचारों द्वारा पवित्र वायुमण्डल बनता है सब ओर से पवित्रता की लहरें खिच आती हैं। अपने चिन्तन में शान्ति बनाये रहिये। शान्तावस्था का अभ्यास मानसिक दृढ़ता लाता है। जो व्यक्ति शान्त भाव में अपनी दिनचर्या व्यतीत करते हैं, वे ही रोग शोक का कठिन परिस्थितियों में शान्त सन्तुलित बने रहते हैं। मन की शान्त अवस्था ही सहजशील की परिचायक है।

मन को स्वास्थ्य और पूर्ण आरोग्य के सृजनात्मक विचारों (Creative thoughts) से परिपूर्ण कर लीजिये। केवल दीर्घ जीवन और पूरी तरह निरोग अवस्था का ही शुभ चिन्तन किया कीजिए। स्वास्थ्य और आरोग्य के नियमों का तो पालन करें ही, प्रसन्नता, आशा, प्रेम, कल्याण जैसी भावनाओं में मन को लगाते रहें। ये भाव शक्ति रक्षक हैं।

# टेलीपेथी और स्वास्थ्य (२)

## प्रार्थना से रोग निवारण :

प्रार्थना हीन भावनाओं से प्रेरित होकर ईश्वर से भीख मांगना नहीं है। जो लोग ऐसा समझते हैं, वह गलती पर हैं। वास्तव में प्रार्थना ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने की एक सरल वैज्ञानिक प्रणाली है जिसके द्वारा मन की सूक्ष्म शक्तियों के स्तर पर लाकर उसे सशक्त बनाया जाता है और इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति की जाती है। इस

तरह प्रार्थना से मानसिक शक्तियों का विकास होता है, विचार शक्ति सक्रिय होती है। इस तरह से उचित ढंग से की गई प्रार्थना विचार संचालन का रूप धारण कर लेती हैं और प्रार्थना के लाभ प्रत्यक्ष रूप से टेलीपेथी जैसा प्रतीत होने लगते हैं और वैज्ञानिक प्रार्थन व टेली-पेथी में कोई विशेष अन्तर नहीं लगता।

## प्रार्थना में अपार शक्ति और सामर्थ्य है :

कठोर परिश्रम युद्ध की थकावट एवं चिता के कारण मुगल सम्राट् बाबर का स्वास्थ्य बिगड़ गया था किन्तु अब भी उसके संकल्पों की दृढ़ता, आत्मविश्वास एवं धर्मनिष्ठा ज्यों की त्यों ध्रुव-अटल थी। इसी समय उसका प्रिय पुत्र हुमायूँ बीमार पड़ गया। अनेक उपचार करने पर भी प्रति दिन उसकी अवस्था गिरती गई। वैद्यों ने घोर निराशा प्रकट की। हुमायूँ की यह दशा देखकर उसकी चिंता और द्विगणित हुई तब बाबर ने अपने पुत्र के बदले प्राण देने का संकल्प किया। उसके मित्रों ने उसे बहुत समझाया और कहा कि जो वस्तु आपको अधिक से अधिक प्रिय हो, हुमायूँ की जान के बदले में दे दीजिये तो संभव है कि ईश्वर दया करें और हुमायूँ पूर्ण स्वस्थ हो जाय। बाबर ने उत्तर दिया कि मेरे पास सबसे अधिक प्यारी मेरी जान है और हुमायूँ के लिए मुझे इसे दे देने में किंचित् भी संकोच नही है। यह कह कर उसने तीन बार हुमायूँ के पलंग की परिक्रमा की और नेत्र मूँद एकाग्र चित्त से प्रार्थना की "हे ईश्वर ! यदि मेरी जान के बदले में हुमायूँ स्वस्थ हो सकता है और जीवित रह सकता है, तो मैं इसे हुमायूँ पर निछावर करने को पूर्ण प्रस्तुत हूँ। हुमायू का समस्त रोग मेरे ऊपर आ जाय और वह पूर्ण स्वस्थ हो जाय !" ईश्वर की लीला विचित्र है। दूसरे ही दिन से हुमायूँ क्रमशः स्वस्थ होने लगा, किन्तु धर्मनिष्ठ बाबर का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। बाबर के हृदयोद्गार स्वी-

कार कर लिये गये थे। वस्तुतः २६ दिसम्बर सन् १५३० को आगरे में बाबर का देहान्त हो गया।

यह ऐतिहासिक घटना प्रत्येक व्यक्ति जानता है और ऐसी ही अनेक प्रचलित घटनाओं तथा व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर मानता है कि प्रार्थना में अद्भुत शक्ति है। जो व्यक्ति प्रार्थना करते हैं, उनके जीवन में अनेक बार ऐसा हुआ है कि उनकी हार्दिक कामनाएं अक्षरशः पूर्ण हुई है। कभी कभी तो हार्दिक प्रार्थना का उत्तर इतना शीघ्र मिलता है कि प्रार्थी उसे एक प्रकार का चमत्कार ही समझता है। पण्डित शिवदत्त जी शर्मा ने अपने एक परिचित का उल्लेख किया है। उनकी पुत्री अत्यन्त बीमार हुई और क्रमशः मारणसन्न दशा पर पहुँच गई। जब उन्होंने अपनी समस्त तरकीबें निष्फल देखीं तो सबको छोड़ कर अपने गृह के तीसरे मंजिल पर जाकर रोने लगे और आकाश में हाथ जोड़कर पृथ्वी की ओर मुँह करके साष्टांग गिर पड़े। फिर, अत्यन्त दैन्यभाव से प्रार्थना की कि "हे नाथ ! मेरे तो समस्त प्रयत्न, सम्पूर्ण आशाएँ निष्फल हो गई हैं। अब मैं आपकी शरण आया हूँ। अब इस बालिका की प्राण रक्षा करना आप ही के हाथ में है। "हे प्रभु ! आप इस दास की ओर निहारिये और इसकी बच्ची को जीवन-दान दीजिए।' इसी प्रकार के बहुत देर तक अपने अश्रु बिन्दुओं से हृदयस्थित प्रभु के मानसचित्र के चरण पखारते रहे। जब वे वहाँ से नीचे उतरे तो उनके आश्चर्य का पारावार न रहा अब उन्होंने देखा कि लड़की बिलकुल चेतना लाभ कर रही है। उसका रोग बहुत कम हो गया है और वह स्वस्थ हो रही है।

इस प्रकार प्रभु के दरबार में की गई आन्तरिक प्रार्थना तत्काल फलवती होती है। महात्मा तुकाराम, स्वामी रामदास, मीराबाई, सूरदास, तुलसीदास आदि आदि भक्त संतों एवं महात्माओं की प्रार्थनाएँ जगत्प्रसिद्ध हैं। इन महात्माओं की आत्माएँ उस परम चेतन तत्व में विलीन होकर उस दैवी अवस्था में पहुँच जाती थीं जिसे ज्ञान की सर्वोच्च

भूमिका कहते हैं। उन का मन उस पराशक्ति से तदाकार हो जाता था समस्त सिद्धियों एवं चमत्कारों का भण्डार है। उस दैवी जगत में प्रवेश कर आत्म-श्रद्धा द्वारा वे मनोनीति तत्व आकर्षित कर लेते थे। चेतन तत्व से तादात्म्य स्थापित कर लेने के ही कारण वे प्रार्थना द्वारा समस्त रोग, शोक, भय, व्याधियाँ आदि दूर कर लेते थे। भगवत्-चिंतन में एक मात्र सहायक हृदय से उद्वेलित सच्ची प्रार्थना ही है। हृदय में जब परम प्रभु का पवित्र प्रेम भर जाता है तो मानव जीवन के समस्त व्यापार, कार्य चिंतन इत्यादि प्रार्थनामय हो जाता है। सच्ची प्रार्थना में मानव हृदय का सभाषण दैवी आत्मा से होता है। प्रार्थना, श्रद्धा, शरणागति तथा आत्म समर्पण का ही रूपान्तर है।

## आधुनिक दृष्टि में प्रार्थना :

आज कल प्रार्थना को गलत समझा जा रहा है। बीसवीं सदी के युवकों की सुशिक्षित दृष्टि में प्रार्थना एक ढकोसला, एक विडम्बना, खाने पकाने, ठगने-ठगाने का एक धन्धा है। जीवन की क्रियाशील वीरता मानव मन की इस सूक्ष्म प्रतिक्रिया में विश्वास नहीं करती। हवाई जहाज में इंजिन चलाने वाला हाथ, या परिमाणु बम द्वारा सृष्टि विध्वंस कर देने वाला हृदय किसी के प्रति विनीत रूप से भिक्षा अथवा दया के प्रतीक बन कर नहीं उठ सकते। नवीन रक्त स्वभावतः विद्रोही होता है। वह क्रान्ति चाहता है, प्रत्येक दिशा में क्रान्ति, परिवर्तन, नई सृष्टि। वह नए सिरे से सब कुछ जमाना चाहते हैं और मन्दिर, मस्जिद, गिरजे या गुरुद्वारे में प्रार्थना का व्यर्थ का बखेड़ा नहीं फैलाना चाहते। ईश्वर, दैवी शक्ति, या परम आत्मा जैसी कोई शक्ति हुआ करे वे स्वयं अपने आपको इतना मजबूत समझते हैं कि प्रार्थना द्वारा कुछ भी याचना नहीं करना चाहते। प्रार्थना उनकी दृष्टि में व्यर्थ प्रलाप है।

यह प्रार्थना का सम्पूर्ण चित्र नहीं है। यह नास्तिकों की मिथ्या शेखी ही कही जायगी। इसमें दंभ है, अभिमान है, और धूल में मिला

देने वाला स्वार्थ । प्रार्थना का अभिप्राय ही गलत समझा जा रहा है। कुछ का कुछ समझ लिया गया है। लोग समझते हैं कि प्रार्थना करके हम परमेश्वर को फुसला सकते हैं, बच्चों की तरह मीठी मीठी बातें करके लुभा सकते हैं। प्रार्थना मन का मोदक नहीं है। जो व्यक्ति बिना परिश्रम के मुफ्त का माल उड़ाने की फिक्र में हैं उन्हें स्मरण रखना चाहिए कि ईश्वर किसी के गिड़गिड़ाने, नाक रगड़ने या भीख मांगने की ओर ध्यान नहीं देता। जो प्रार्थना को ढपोरशंख मानते हैं, वे भयंकर भूल करते हैं।

## प्रार्थना के असंख्य लाभ :

जिस प्रकार जप, पूजन, अर्चन, पाठ, हवन, अनुष्ठान मनः संयम, आत्म संयम एवं मनोजय के विभिन्न मार्ग हैं, उसी प्रकार प्रार्थना भी एक प्रकार का सुव्यवस्थित आध्यामिक व्यायाम है। जिस प्रकार डन्ड, मुग्दर, डम्बल इत्यादि की प्रक्रियाओं से शरीर पुष्ट होता है, अंग प्रत्यंग सुदृढ़ होकर निरोगता, सौन्दर्य, परिश्रम की क्षमता, उपार्जन उत्पादन आदि की समृद्धियां हाथ लगती हैं, उसी प्रकार प्रार्थना के आध्यात्मिक व्यायाम से मनुष्य का मनोबल सुदृढ़ होता है, आत्मविश्वास, आत्मश्रद्धा, इच्छाशक्ति विकसित होती है, कलुषित मन धुल कर स्वच्छ एव पूर्ण पवित्र हो जाता है। प्रार्थना से चित्त में सुव्यवस्था, मन में एकाग्रता, बुद्धि में तीक्ष्णता, तथा विवेक की जागृति में असाधारण उन्नति होती है।

इन उन्नतियों के कारण पेचीदा तथा दुरूह कार्यों को भी सरलता पूर्वक सम्पन्न कर लिया जाता है। पूजा अनुष्ठान की कर्मकाण्डमयी प्रक्रियाओं का मनोवैज्ञानिक पद्धति के अनुसार अन्तर्मन के ऊपर स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। मनुष्य को अपनी सफलताओं में अपेक्षाकृत अधिक विश्वास हो जाता है। दैवी कृपा की अदृश्य सहायता मिलने के कारण आशा की पीठ भारी हो जाती है। साहस, आशा, उत्साह एवं सफलता

के विचार मनुष्य के मस्तिष्क में घनीभूत होकर घुमड़ने लगते हैं। ऐसी मनोभूमि सफलता के लिए अत्यन्त उर्वर क्षेत्र है। प्रार्थना से सिक्त मानस प्रदेश वाले सैनिक उत्तम मन:स्थिति के कारण मोर्चे पर मोर्चा फतह करते जाते हैं।

प्रार्थना तो एक प्रकार का प्रायश्चित है! विभिन्न प्रकार के स्वार्थों, चिन्ताओं, व्याकुलताओं, रोगों, व्याधियों, दुर्बलताओं को प्रक्षालित करने के लिए यह एक सर्व सुलभ साधन है। हमारे अभिमान के मिथ्यात्व को मिटा देने वाली महौषधि है। प्रार्थना में जो सद्‌भावनाएँ, जो-जो उत्तम इच्छाएँ प्रकाशित की जाती हैं, उनसे एक प्रकार का आध्यात्मिक प्रवाह फैलने लगता है। प्रार्थी के इर्द गिर्द का समस्त वातावरण पवित्रता, शान्ति तथा विश्व प्रेम की पुष्ट धाराओं से घनीभूत हो उठता है।

श्रीयुत् रमाशंकर जी शुक्ल की सम्मति में 'जीवन के आरम्भ के साथ होने वाली प्रार्थना एक आशीर्वाद है और जीवन की समाप्ति के साथ की जाने वाली प्रार्थना उस आशीर्वाद के प्रति हार्दिक कृतज्ञता है। इन दोनों के मध्य में, जीवन का कार्यक्षेत्र है। प्रार्थना के जल से अभि-सिंचित होकर हमारी प्रार्थना तलवार के पानी की तरह हमारी कलाइयों के वल को सहायता देती है वह प्रतिक्षण श्वासों के संचार के साथ हमें बल प्रदान करती रहती है। जब पवित्रता तथा दिव्यता के ये सुमधुर क्षण क्रम-क्रम से हमारी एक-एक पुकार के साथ हृदय में नक्षत्रों की तरह चमकने लगते हैं, तब अन्धकार भी हमें सुहावना प्रतीत होने लगता है। उस समय निराशा का तिमिर भी हमारे लिये सौंदर्यमय हो जाता है। हमारी साधना जीवन के घोर अन्धकार में उस दिव्यता का दर्शन पाने के लिये व्याकुल हो उठती है। तब एक क्षण आता है—हमारी निराशा यकायक चमक उठती है। हमारी अन्धकारमयी भावना चन्द्रिका के मृदुल हास्य से उल्लसित हो उठती है, तब चन्द्र दर्शन होता है। वह हमारी प्रार्थना की शुभ ज्योति है, वह हमारी साधना का फल है। हम कृतज्ञता

भरी आँखों से जिधर निगाह डालते हैं, एक हास्य, एक उल्लास और एक शोभा हमें देख पड़ती है ।'

## प्रार्थना से मानसिक शक्तियाँ उत्तेजित होती हैं :

यदि हम आध्यात्मिक क्षेत्र में वास्तव में अग्रसर होना चाहते हैं तथा मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो उस दिव्य ज्योति के सुदिव्य साहचर्य का आनन्द लूटना चाहते हैं तो हमें प्रार्थना की शरण लेनी होगी । भय, विपत्ति, रोग शोक, चिन्ता, व्याधि से मुक्ति के लिये, प्रार्थना की छोटी-सी प्रतिक्रिया भी महान् फल देने वाली होती है । भगवान् की सर्व-ग्रासिनी दया का आश्रय पकड़ हम अपने अन्तःकरण में विशुद्ध आनन्द का अटूट स्रोत खोल सकते हैं तथा वर्षों के जमे हुए पाप एवं कुवासनाएँ समूल नाश कर लेते हैं । भारतीय शास्त्रों में जितने प्रकार के प्रायश्चितों का उल्लेख है, उन सब में प्रार्थना महान् सामर्थ्यशाली है । अदृष्ट शक्ति से तादात्म्य स्थापित कर प्रार्थी आवश्यकतानुसार वस्तु प्राप्त कर सकता है । सच्ची पुकार को सुनकर वह परा-शक्ति अपने अदृष्ट हाथों से उसकी सब प्रकार से सहायता करती है । सच्ची प्रार्थना से आत्मा के गहनतर भाग में एक आन्तरिक प्रकाश प्रकट होता है, जो वह अव्यक्त, अपार्थिव, अनिर्वचनीय, स्वयम्भू ज्योति है, वह गूढ़ आन्तरिक प्रकाश है, जो विश्व विश्व के समस्त प्राणियों को आलोक प्रदान करता है । यथा —'तमेव भान्तमनुमाति सर्वं तस्य भासा सकलं विभाति ।" प्रार्थना असत्य से सत्य की ओर, अन्धकार से दिव्य प्रकाश की ओर तथा मृत्यु से अमरता की ओर ले जाने वाली तेजोमय प्रभा है । विश्व का इतिहास उठाकर देखिए, प्रार्थना ने अनेक महान् आचार्यों, पैगम्बरों को बड़े मार्मिक रूप से तत्व-ज्ञान एवं पूर्णता प्राप्त कराई है । यदि परमेश्वर से साक्षात्कार करने का उस परमात्म तत्व से सामंजस्य स्थापित करने का कोई ढङ्ग है तो वह प्रार्थना के मार्ग का अनुसरण है । इसी मार्ग का ही अनुसरण है । इसी मार्ग से हम जगत की एक महान् विभूति एवं ज्योति स्तम्भ बन सकते हैं ।

प्रार्थना केवल प्रार्थना मन्दिर तक ही सीमित नहीं रहती, किन्तु जीवन के समस्त व्यापार प्रार्थना रूप हो जाते हैं। प्रार्थना जितनी ही सरल और सच्ची होगी, आन्तरिक हृदय से होगी, भगवान के हृदय को उतना ही द्रवित कर सकेगी। एक बार आप प्रार्थना के रहस्य को समझ लेंगे तो आपको स्वयं अनुभव होगा कि आप बिना प्रार्थना के नहीं रह सकते। विकृत मन प्रार्थना से सुष्ठु और सुसंचालित होकर आत्मिक आनन्द ग्रहण करता है। समस्त आधि व्याधियाँ दूर होती हैं और मन में ईश्वरीय शक्ति का आभास-संचरित होता है।

श्री रामलाल जी पहाड़ा प्रार्थना का रहस्योद्घाटन निम्न शब्दों में करते हैं, "प्रार्थना, आन्तरिक अभिप्राय, भाव, ईश्वरोन्मुख होकर सद्-भावपूर्वक विधायक काम की योजना की मांग करना ही प्रार्थना का रहस्य है। अनिष्ट प्रभावों को हटाने के लिए प्रार्थना सर्वश्रेष्ठ है। बच्चों को वीर एवं कर्तव्यशील बनाने के लिये निषेधात्मक आदेश की अपेक्षा विधायक उपदेश देना अधिक उत्तम है। इसी तरह इष्ट वस्तु को सामने रखने से चित्त प्रसन्न रहता है और ईश्वर को अपना कार्य करने में आसानी देता है। अतः मन के लिए प्रार्थना कभी व्यर्थ नहीं होती। इससे मन को आन्तरिक बुद्धि विवेक, सौष्ठव, तथा दैवी शक्ति मिलती है। प्रार्थना से मन ईश्वरोन्मुख होकर ज्ञान प्राप्त करता है। प्रार्थना द्वारा ईश्वर की अचिन्त्य शक्ति मन को आन्तरिक बोध देती है अतः विघ्न, व्याधि, मानसिक विकृति या त्रुटि भी दूर हो जाती है क्योंकि प्रार्थना से मन की शक्ति उत्तेजित होकर अपना प्रभाव शीघ्र प्रकट करती है।"

## प्रार्थना वास्तव में क्या है ? :

प्रार्थना मनुष्य के मन की समस्त विशृंखलित एवं अनेक दिशाओं में बहकने वाली वृत्तियों को एक केन्द्र पर एकाग्र करने वाले मानसिक व्यायाम का नाम है। चित्त की समग्र भावनाओं को मन के केन्द्र में

एकत्र कर चित्त को दृढ़ करने की एक प्रणाली का प्रार्थना है। जब मनुष्य के मन में किसी प्रकार की इच्छा उत्पन्न होती है, वह संसार के व्यतिक्र, दुरभिसंधि, प्रवंचना से क्लान्त हो जाता है, कोई आश्रय नहीं दृष्टिगोचर होता, तब सब प्रकार से विवश होकर वह शक्ति और साहस के एक कल्पित आदर्श की मन में स्थापना करके आश्रय तथा सहायक की खोज में अपने ही आन्तरिक जगत् में प्रवेश करता है। उसके अन्त:-करण में परमात्मा की अमित शक्ति, अद्‌भुत सामर्थ्य एवं अतुलित बल की एक प्रतिमा निवास करती है। इस मानस चित्र की सृष्टि उसकी व्यक्तिगत श्रद्धा, आत्म विश्वास एवं आस्तिकता के बल पर विनिर्मित होती है। यह उसके वर्षों के संचित शुभ संस्कारों का स्थूल स्वरूप है। उसके संस्कार ज्यों-ज्यों परिवर्तित होते हैं, त्यों-त्यों यह मानस चित्र बदलता और पुन: विनिर्मित होता है। यह हमारे अपने दृष्टिकोण के अनु-सार परमेश्वर का सर्वशक्ति, सम्पन्न, अमित फलदाता, परमेश्वर का चित्र है। यह हमारी आस्था की मूर्ति है। प्रार्थना में, हम इसी आन्त-रिक शक्ति केन्द्र की ओर उन्मुख होते हैं। यहीं से एक प्रकार ऐसा बल एवं उत्साह प्राप्त करते हैं, जो मन में किसी गुप्त सामर्थ्य के भण्डार को यकायक खोल देता है। मन का यह आन्तरिक गुप्त सामर्थ्य शरीर के अणु-अणु में अद्‌भुत बल का संचार करता है। आशा की ज्योति जग-मगा उठती है। पुरुषार्थ शक्ति से मन विभोर हो उठता है। वहाँ से ऐसी शान्तिदायक विचार धाराएँ प्रस्फुटित होती हैं, जो प्रार्थी को अभय और सावधान बना देती है। यही प्रार्थना की स्पष्ट व्याख्या है।

एक तत्वदर्शी का कथन है कि प्रार्थना का सम्बन्ध मानव के परम पुनीत तत्व, आत्मा से है। आत्मा अनन्त शक्तिवान् है। सर्वगुण सम्पन्न, निर्विकार, निर्लेप है। उसमें पवित्र शक्ति का अक्षय खजाना है। मन इसके समीप निवास करता है। मन अन्य सब अङ्गों की अपेक्षा सूक्ष्म एवं शक्तिशाली है। वस्तुत: जिस समय मन की शक्तियाँ आत्मविश्वास से आन्तरिक केन्द्र पर एकाग्र हो जाती हैं, तब इस पर आत्मा का प्रति-

विम्ब पड़ता है, जो मन को अद्‌भुत सामर्थ्य से सम्पन्न कर देता है। इसे दैवी प्रेरणा के नाम से अभिहित किया जा सकता है। आन्तरिक दैवी प्रेरणा प्राप्त करने का नाम ही प्रार्थना है।

## मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना :

मनोवैज्ञानिक तो प्रार्थना को अव्यक्त मन से उठी हुए एक चेतना मात्र कहेगा। मनुष्य की अज्ञात चेतना परम लीलामयी है। उसमें एक से एक आश्चर्य जनक समार्थ्यों का भंडार है। हमारी प्रार्थना ध्यान को चेतन मन की ओर से गुप्तमन की ओर आकर्षित कर देती है। हमारी समस्त शक्तियाँ एक बार भी मानसिक सामर्थ्य के उस विशाल क्षेत्र की ओर, जिसका हमारे चेतन मन को कभी भान भी नहीं होता, अग्रसर हो जाती हैं। यह अज्ञात चेतन प्रदेश हमारे जीवन का मूल स्रोत है जिसकी सूक्ष्म धाराएँ हमें अपने दैनिक जीवन में निरन्तर प्रवाहित होती हुई अनुभव होती हैं यद्यपि हम इन धाराओं के मूल स्थान अव्यक्त मन को समझ नहीं पाते हैं। अचेतन जगत् मन के अव्यक्त प्रदेश का अन्वेषण अत्यन्त दु साध्य शक्ति का केन्द्र यही गुप्तमन है। गुप्तमन के सम्मुख चेतन मन की कोई गणना नहीं हो सकती। गुप्तमन सदैव दिन-रात निर्विघ्न रूप से कार्य करता है किन्तु रात्रि में निद्रा के समय गुप्तमन का कार्य और भी क्षिप्र गति से सम्पन्न होता है। तुलनात्मक दृष्टि से यदि देखा जाय तो अनन्त शक्ति मनुष्य इसी गुप्तमन में है। निर्बल से निर्बल मनुष्य की शक्ति का भी वास्तविक केन्द्र गुप्तमन ही है।

क्या कारण है कि पापी एकदम पुण्यात्मा बन जाता है, डरपोक मनुष्य दृढ़ता पूर्वक टिकने लगता है। साधारण व्यक्ति अनायास ही प्रतिभा सम्पन्न हो उठता है? कारण यह है कि उनके गुप्तमन का कोई अज्ञात केन्द्र एकदम खुल जाता है और अदृश्य शक्तियाँ अत्यन्त वेग से प्रवाहित हो उठती हैं। बड़े से बड़ा पापी इन रन्ध्रों के खुल जाने से अकस्मात पुण्यात्मा बन जाता है। गुप्त‌मन के संस्कारों से संवेगों में परिवर्तन

होने के कारण मनुष्यों के व्यवहारों में ही परिवर्तन नहीं होते प्रत्युत इनके आचरणों में भी परिवर्तन हो जाते हैं।

## गुप्तमन की प्रतिक्रियाएँ :

गुप्तमन ही शक्ति केन्द्र है। शक्ति, प्रवाह, प्रेरणा, बल उसी में भरा है। शक्ति मनुष्य के अन्तर में वास करती है। आन्तरिक सामर्थ्यों का स्रोत 'गुप्तमन' ही है। वही शान्ति, सुख और आनन्द का कण्ट्रोलर है। वही हमारा रक्षक या भक्षक है। जिस प्रकार प्रत्येक चेतन वस्तु का अचेतन जगत में सर्वप्रथम सूत्रपात होता है, उसी प्रकार प्रत्येक चेतन भावना, उस अचेतन, जगत् में पदार्पण कर हमारे व्यक्तित्व की एक स्थाई वृत्ति बन कर उसे प्रभावित करती है। इस प्रकार वह मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक संगठन कार्य में समुचित भाग लेती है। यदि वह स्वास्थ्य, शक्ति, बल, सामर्थ्य, बुद्धि या अन्य किसी उत्कृष्ट भाव सम्बन्धी भावना हुई हो तो हमें अन्दर से एक प्रकार का उत्कर्ष तथा साहस मिलता है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से प्रार्थना एक प्रकार का 'आत्म-संकेत' अथवा 'आत्म-सूचना' ही है। जीवन में संकेत तथा सूचनाएँ हमें परिचालित करते हैं। उदाहरणार्थ, आप खिन्न मन होकर मार्ग में चले जा रहे हैं कि अकस्मात् किसी प्रफुल्ल वदन मित्र से आपकी भेंट हुई। उसकी मुस्कान तथा उत्साह वर्द्धक वचन आप पर बलप्रद औषधि का कार्य करते हैं और आपकी निराशा विलीन हो जाती है। यह है संकेत या सूचना का प्रभाव ! ऐसी ही एक विशेष प्रकार की सूचनाएँ आपकी प्रार्थनाएँ भी हैं। आपकी अपनी ही भावनाएँ, आपके मुख श्री से उद्वेलित शब्द समूह अचेतन (गुप्तमन) में पहुँची तो वह परिणित होकर मानसिक स्तर का एक भाग बन गई।

प्रार्थना का मनोवैज्ञानिक आधार गुप्तमन ही है। जिन विचारों का प्रभाव जितना ही शीघ्र गुप्तमन पर पहुँचाया जा सकता है, जितनी दृढ़ता

एवं श्रद्धा से पहुँचाया जा सकता है, उतनी ही शीघ्र प्रार्थना फलवती होती है। प्रार्थना करते समय प्रकट मन की अवस्था अचल एवं कुछ निष्क्रिय सी होकर मन्द पड़ जाती है। अतः उस समय एकाग्रता होने से सूचनाओं का प्रवाह सीधा गुप्तमन में प्रवेश कर जाता है। हमारे अन्तर की अचेतन वृत्तियाँ उन सूचनाओं को ग्रहण कर लेती हैं। विरोधी भावनाएँ नहीं उठतीं। स्वअवस्था, निद्रावस्था, मधुर राग, सरस कविता के श्रवण इन सभी मानसिक दशाओं में अन्तर नव वृत्ति सूत्र ग्रहण कर सकता है। प्रार्थना की अवस्था में शरीर ढीला पड़ जाता है और जितनी भी हमारी तन्मयता एवं विश्वास होता है, उतनी ही अधिक हमें अन्तर की प्रवृत्तियों तक पहुँचने तथा अपनी इष्ट भावना के बीजोरोपण में सुगमता होती है।

## उचित ढङ्ग से प्रार्थना कीजिए—

प्रार्थना की तन्मयता में इतनी एकरागता होनी अनिवार्य है कि संशय की विरोधी भावनाएँ तनिक भी न उठें। विरोधी भावनाओं के न उठने अन्तःकरण की अचेतन वृत्तियाँ प्रार्थना की सूचनाओं को भली भाँति ग्रहण कर लेती हैं और फिर हमारे जीवन का स्वाभाविक अङ्ग बन कर प्रकट होती हैं। जितनी बार मन को शिथिल कर नेत्र मूंद सब विरोधी विचारों को हटाकर हम प्रार्थना पर चित्त को एकाग्र करेंगे, उतनी ही बार परमात्मा के परम पावन संस्पर्श से रोम-रोम में पवित्रता का संचार होगा। ऐसे ढंग से रोगी स्वास्थ्य की प्रार्थना करके रोग मुक्त तथा स्वस्थ हो सकता है। बल पूर्वक. चेतन विरोधी तर्क वितर्कों के विपरीत, अपनी किसी इष्ट भावना का अन्तर की अचेतन वृत्तियों द्वारा ग्रहण कराना इसलिए विफल होता है कि जरा सी बेखबरी में चेतन मन पुनः सतर्कता से अपना काम करने लगता है।

प्रार्थना करना सभी जानते हैं किन्तु उचित एवं शास्त्रीय ढङ्ग से बहुत अल्प संख्या में लोग जानते हैं। शब्दों को सपाटे से तोते की तरह

दुहरा जाना प्रार्थना नहीं, यह तो एक प्रकार का अभिनय है। प्रार्थना तो आत्म विश्वास से सिंचित होनी चाहिए, 'विश्वासः फलदायकः'। आपके शब्दों में जितनी श्रद्धा होगी, अन्तरात्मा से जितनी ही संयुक्त होगी, विश्वास से जितनी सरोबोर होगी, शक्तिमान् परब्रह्म सत्ता से उतना ही उसका तादात्म्य स्थापित हो सकेगा। अन्तर से प्रेरित सच्ची प्रार्थना एक स्वसंकेत की ऐसी पद्धति है जिससे हम स्वयं अपने गुप्तमन से अपनी ही शक्ति का महासागर खोलते हैं।

## प्रार्थना का तात्त्विक विश्लेषण—

प्रार्थना का निर्माण करने वाले कौन-कौन पृथक-पृथक तत्व हैं? किन-किन वस्तुओं से प्रार्थना विनिर्मित होती है? यह प्रश्न अनायास ही मन में उत्पन्न होता है।

प्रार्थना की आत्मा उच्चतर सत्ता में अखंड विश्वास है। छान्दोग्योपनिषद् में निर्देश किया गया है "यदेव श्रद्धयाजुहोति तदेव वीर्यवत्तरं भवेति" अर्थात् श्रद्धा पूर्वक की गई प्रार्थना ही फलवती होती है। प्रार्थना में साधक का जीता जागता विश्वास होना अनिवार्य है। "सारा संसार ब्रह्ममय है तथा उस ब्रह्म का केन्द्र मेरे अन्तःकरण में वर्तमान है। मैं विश्व व्याप्त परम आत्मा से सम्बन्ध रखता हूँ और प्रार्थना द्वारा उस सम्बन्ध को अधिक चमका देता हूँ, ऐसा विश्वास रखकर हमें प्रार्थना में प्रवृत्ति करनी चाहिए। प्रार्थना स्वतः कोई शक्ति नहीं होती किन्तु विश्वास से वह महान् शक्तिशालिनी मनोतीत फल प्रदान करने वाली बनती है। पहिले अदृष्ट शक्ति, परमात्मा को अपार शक्ति में भरोसा करो, पूर्ण विश्वास करो तब प्रार्थना फलीभूत होती है। प्रार्थना की शक्ति विश्वास तथा उत्तेजित हो उठती है। मन, वचन तथा कर्म तीनों ही आत्मश्रद्धा से परिपूर्ण हो उठें, प्रत्येक अणु-अणु साधक के विश्वास से रंजित हो उठे, तब ही उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।

प्रो० माखनलाल जी ने कुछ वर्ष पूर्व एक बड़ी मनोरंजक कथा प्रकाशित कराई थी। यह कथा अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी है। थोड़े दिन की बात है कि एक लड़की को सम्मान प्राप्ति की बड़ी प्रबल इच्छा हुई। उसने अनेक साधन किए। रुपया पैसा पानी तरह बहाया, बड़े-बड़े आदमियों से मुलाकात की, नाना प्रकार के षडयंत्रों में भाग लिया। तब उसकी ऐसी दशा हुई जो एक ऐसे व्यक्ति की होती है, जो समस्त संसारी प्रयत्न कर चुकने पर भी अपने अभीष्ट फल को प्राप्त नहीं करता। उस समय 'निर्बल के बल राम' की ही स्मृति आती है। वह लड़की एक महात्मा के पास आइ और उनसे अपनी इच्छा प्रकट की। लड़की बोली, "महाराज ! मैंने अपने ध्येय प्राप्ति की चेष्टा में बड़ी-बड़ी कठिनाइयां सहन कीं। अपना समस्त धन नष्ट कर दिया। तन, मन, धन, जो कुछ भी सम्भव था, मैंने किया पर मुझे ध्येय की प्राप्ति किंचित् मात्र भी नहीं हुई। साधु बोला—'बेटी ! घबराओ नही। भगवान् को धन्यवाद दो। उस परम प्रभु ने तुम्हें अतुलित सम्पत्ति का मार्ग दर्शाया है। तुम्हारी इच्छा की पूर्ति पहिले ही करदी है। अब तुम केवल इस प्रार्थना को नित्य प्रति करती रहो,यहाँ तक कि ये शब्द तुम्हारे सामने सदैव नृत्य करने लगे।

'हे, सर्वसमर्थ्य भगवान् ! आप ही मेरे माता-पिता हैं। आपकी सामर्थ्य अपार है, अनन्त है। आपके सामने मेरा दूसरा कोई हितैषी नहीं है। मैं आपकी शरण आई हूँ, ठीक उसी प्रकार जैसे कोई बच्चा थक कर अपनी माता की गोद में दौड़ता है। मैं आपकी बार बार अनुग्रहीत हूँ कि आपने मुझ पर इतनी दया की। मैं आपकी अतुल सहायता हृदय से सराहना करती हूँ। मेरी अन्तरात्मा ही मेरे हृदय तथा मन की संचालक हो, जिससे मैं आपकी प्रेरणा को समझ सकूं। आपने मुझे अतुलित सम्पत्ति प्रदान की है, इतनी तो मेरे अनुमान में भी नहीं आ सकती थी जितनी आपने प्रदान कर दी है। यह सब आपका ही मधुर वरदान है।'

लड़की इस प्रार्थना को लेकर चली गई तथा तीन दिन पश्चात् पुनः उस महात्मा के पास आकर बोली कि तुम्हारी प्रार्थना ढकोसला मात्र थी। उससे किंचित् भी लाभ उपलब्ध नहीं हुआ। मैंने प्रातः सायं दोनों समय उसका उच्चारण किया, किन्तु मेरी दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। वह ज्यों की त्यों बनी रही। मैं पहले ही जानती थी कि इस प्रार्थना से कुछ लाभ न होगा। ऐसी प्रार्थनाएँ मुझे न जाने कितनी बतलाई गईं हैं,किन्तु प्रत्येक बार मैं निष्फल हुई हूँ। मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुंची हूँ कि तोते की भाँति शब्दों को पुनः पुनः कहने से मनोवांछित फल की प्राप्ति नहीं हो सकती। क्या कभी प्रार्थना से प्रतिकूल स्थिति भी अनुकूल बन सकती है ?

जिस बात के लिए हमने उक्त कथा का उल्लेख किया है, वह अब आती है। यही विचारणीय तत्व है। साधु ने उत्तर दिया, "बेटी ! जो मैंने तुम्हें बतलाया है, वह मेरा वर्षों का अनुभव है। प्रार्थना में तुम्हारा विश्वास नहीं है। तुम्हारी श्रद्धा नहीं है। तुम प्रार्थना के विषय तथा उसकी शक्ति के प्रति संदिग्ध हो। तुम जब प्रार्थना करती हो तो उसमें पूरा-पूरा भरोसा नहीं रखती हो। तुम्हारी उन्नति केवल दो बातों पर निर्भर है। पहिला प्रश्न तो यह है कि क्या तुम्हारा पूरा विश्वास है कि परमात्मा प्रार्थना सुनता है तथा उसे पूर्ण करता है ? द्वितीय यह है कि क्या तुम भली भाँति समझती हो कि परमात्मा में इतनी शक्ति है कि वह तुम्हारी प्रार्थना को पूर्ण कर दे ?

लड़की बोली—"हाँ, अवश्य, परमात्मा सब कुछ कर सकता है। पर साधु ने तुरन्त उत्तर दिया कि "बस जब तुम्हारे अन्दर विश्वास है कि परमात्मा में अपार शक्ति है तो फिर सन्देह के लिए स्थान कहां ?

इसके अनन्तर उस साधु ने प्रार्थना के प्रत्येक शब्द की विस्तृत व्याख्या की और उस लड़की को प्रत्येक दिन धीरे-धीरे, पूरी-पूरी श्रद्धा से ध्यान पूर्वक प्रार्थना करने का आदेश दिया। ज्यों ज्यों लड़की का

विश्वास बढ़ा, अन्तःकरण में श्रद्धा उत्पन्न हुई त्यों त्यों लड़की की इच्छा भी पूर्ण होती गई।

इस पूरी कथा का मर्म है—विश्वास, जीता जागता विश्वास—प्रार्थना में श्रद्धा सबसे मूल्यवान् तथ्य है। श्रद्धा की अखंड धारा रोम-रोम में, कण-कण में, अणु-अणु में भर लो, तब प्रार्थना प्रारम्भ करो। श्रद्धा प्रत्येक वस्तु को असीम, आन्तरिक शक्ति प्रचुरता से अनुप्राणित करती हुई, अग्रसर होती है। श्रद्धाभाव के बिना समस्त वस्तुएँ प्राण-हीन, जीवन हीन, निरर्थक एवं व्यर्थ हैं। श्रद्धा से युक्त प्रार्थना वुद्धि को केवल प्रधानता नहीं देती प्रत्युत इसे उच्चतर धारणा शक्ति की ओर बढ़ाती है जिससे हमारा मनोराज्य, विचार और प्राण के अनन्त साम्राज्य के साथ एकाकार हो जाता है। इस गुण से प्रत्येक प्रार्थी की वुद्धि में अभिनव शक्ति एवं सौन्दर्य आ जाते हैं तथा उसकी चेतना उस अनन्त ऐश्वर्य की ओर उन्मुक्त बल पर मनुष्य मनोवांछित फल पा सकता है। स्वास्थ्य, सुख, उन्नति, आयु जो कुछ भी हम प्राप्त करना चाहें वह श्रद्धा के द्वारा ही मिल सकते हैं। श्रद्धा उस अलौकिक साम्राज्य का राजमार्ग है। श्रद्धा से ही प्रार्थना में उत्पादक शक्ति, रचनात्मक बल का संचार होता है।

तुम जिस प्रकार से चाहो प्रार्थना करो, चाहे चिल्ला कर या मूक रह मन ही मन प्रार्थना करो, जी चाहे जैसे करो, हर प्रकार से परमेश्वर तुम्हारी प्रार्थना सुनेगा, यदि उसमें विश्वास और श्रद्धा का प्राण है।

## प्रार्थना का द्वितीय तत्व-एकाग्रता—

प्रार्थना एक प्रकार का मानसिक व्यायाम है। यह एकाग्रता तथा ध्यान के नियमों पर कार्य करता है। जितनी ही प्रार्थना में एकाग्रता होगी, निष्ठा होगी और जितनी एकरसता से ध्यान लगाया जायगा, उतना ही लाभ की आशा करनी चाहिए। एकाग्रता एक ऐसी अद्भुत

मौन शक्ति है जो मन की समस्त शक्तियों को एक मध्यबिन्दु पर केन्द्रित कर देती है। सूर्य रश्मियाँ छिन्न-भिन्न रह कर कुछ गर्मी उत्पन्न नहीं करतीं किन्तु शीशे द्वारा उन रश्मियों को जब एक केन्द्र पर डाला जाता है, तो उनमें अद्भुत शक्ति का संचार होता है। इसी प्रकार एकाग्र प्रार्थना से मन की समस्त बिखरी हुई शक्तियां एक केन्द्र बिन्दू पर एकाग्र होती हैं।

प्रार्थना का रहस्य मन की एकाग्रता पर है। प्रार्थना पर, प्रार्थना के लक्ष्य पर मन की समग्र चित्त वृत्तियों को गड़ा देना, इधर-उधर विचलित न होने देना, निरन्तर उसी स्थान पर दृढ़ता पूर्वक लगाये रखना ही एकाग्रता है। जहाँ साधारण व्यक्ति किंकर्तव्य विमूढ़ से खड़े रह जाते हैं, वहाँ एकाग्रचित्त वाला साधक थोड़ी सी प्रार्थना के बल पर अद्भुत चमत्कारों का प्रदर्शन करता है।

एकाग्रता प्राप्त करने में प्राण-शक्ति पर अपना पूर्ण अधिकार रखना पड़ता है और अन्तरात्मा के निरीक्षण में निरन्तर रहना पड़ता है मन में प्रबल इच्छा भी होनी चाहिए जिससे कि संकल्प दृढ़ बना रहे, हिलने न पावे। एकाग्रता का जब अभ्यास करने बैठो तो शरीर बिल्कुल ढीला छोड़ दो। ध्यान में मौन होना आवश्यक है। अतः शान्त, चित्त हो नेत्र मूंद कर बैठना चाहिए। लेट भी सकते हैं। किन्तु "शिथलीकरण" पूरा-पूरा रहे। शरीर को ऐसी आदत डालनी चाहिए कि वह मन की समस्त आज्ञाओं का पालन करे। सुखासन पर बैठ कर, या लेट कर, जैसा तुम्हें ठीक मालूम हो, शिथिल हो जाओ। शरीर और मन को पूर्ण कर लो। शरीर का प्रत्येक अंग-प्रत्यंग शिथिल और ढ़ीला बन जाय, भारीपन दूर हो जाय, तुम्हारा बल उसमें किंचित मात्र भी न लगे। शिथलीकरण में इतने अभ्यस्त हो जाना चाहिए कि यह मालूम ही न हो कि हमारे शरीर भी है। यह ध्यान की प्रथम अवस्था है।

## तृतीय तत्व–सृजनात्मक ध्यान :

प्रार्थना का तृतीय तत्व सृजनात्मक ध्यान है। एकाग्रता से ध्यान शक्ति की अभिवृद्धि होती है। महान् पुरुष का निश्चित लक्षण उत्तम ध्यान ही है। ध्यान यह तत्व है जिससे स्मृति का ताना बाना विनिर्मित होता है। सर आइजक न्यूटन ने तो यहाँ तक निर्देश किया है कि यदि विज्ञान की उन्नति का कोई रहस्य है तो वह गंभीर ध्यान ही है। डा० लेटसन लिखते हैं कि "ध्यान ही एकाग्रता शक्ति की प्रधान कुंजी है। ध्यान के अभाव में प्रार्थना द्वारा कोई भी महान् कार्य सम्पादन नहीं किया जा सकता। अत्यन्त पूर्ण इन्द्रिय बोध, उत्तम धारण शक्ति, सृजनात्मक कल्पना–विना गंभीर ध्यान के कुछ भी सम्पादन नहीं कर सकते।'

प्रार्थना को फलवती करने के लिए सृजनात्मक ध्यान अत्यावश्यक है। गम्भीर एवं आशाप्रद ध्यान से ईश्वर का साक्षात्कार एवं तादात्म्य होता है। जैसा ध्यान, जैसा मानस-चित्र, जैसी मानस पूजा, वैसी ही प्राप्ति। ध्यान से मन को आध्यात्मिक उन्नति पर केन्द्रीभूत कीजिये, दृढ़तापूर्वक समस्त शक्तियों को उसी परमात्मतत्व पर लगा दीजिये। 'अहं ब्रह्मास्मि'– मैं ब्रह्म हूँ—इस तत्व का ध्यान करो। मैं परमेश्वर से निर्मलता पा रहा हूँ, मैं पवित्र बन रहा हूँ। परम पिता मुझे शक्तिशाली बना रहे हैं। वे अनन्त महाप्रभु मेरे अन्तस्थल में विराजे हुए हैं।' हृदय में परमेश्वर की मूर्ति सजग कर ध्यान धारण करनी चाहिए।

स्मरण रखिए, संसार के समस्त धर्मों, शास्त्रों, मतों ने एक मत से एक ध्वनि से हृदय में परमेश्वर का निवास स्थान बताया है तथा हृदय ही में स्थित परमेश्वर को भगवान की उपासना और प्राप्ति का स्थान माना है। ऐसे ध्यान से हृदय गुहा दिव्य प्रकाश से जाज्वल्यमान हो उठती है। साधक के मुखमंडल पर एक अप्रतिभ आभा झलक उठती है। दिव्य तेज उसे संस्पर्श करता है और वह दिव्यानुभव से उद्वेलित हो

उठता है। जब सच्चे प्रेम का पवित्र स्रोत हृदय में प्रवाहित हो उठता है। तो कभी २ साधक को रोमांच, अश्रुपात, तन्मयता, आनन्द आदि सात्विक भावों का उदय होता है। ऐसा ही साधक, प्रार्थी, भक्त पृथ्वी को पावन करने वाला होता है. 'मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति'। इस प्रकार सृजनात्मक ध्यान से असद्भावनाओं से मुक्ति, भगवत्प्रेम की प्रतिष्ठा एवं सत्यं शिवम् सुन्दरम् स्वरूप का प्रकाश होता है।

ध्यान अन्त:करण की मानसिक क्रिया है। इसमें केवल मन: शान्ति की आवश्यकता है। यहाँ बाह्य मिथ्याडम्बरों की आवश्यकता नहीं। ध्यान तो अन्तर की वस्तु है – करने की चीज है, इसमैं दिखावा कैसा? चुपचाप ध्यान में संलग्न हो जाइये. दिन रात परम प्रभु का आलिंगन करते रहो। भगवान् की दिव्य मूर्ति को अन्त:करण के कमरे में वन्द कर लो, तथा वाह्य जगत् की विस्मृति कर दो। वस्तुत: ऐसे दिव्य साक्षात्कार के समक्ष वाह्य जगत् की स्मृति आती ही किसे है? ऐसा ध्यान अमर शान्ति प्रसार करने वाला है।

एकान्त स्थान में अकेले ध्यान करते समय मन को अपने ध्येय में तल्लीनता पूर्वक लगाना चाहिए। अभ्यास में श्वास द्वारा जप, भगवान् के प्रेम, ज्ञान, भक्ति तथा शक्ति सम्बन्धी धारणाओं की स्मृति इत्यादि से पर्याप्त सहायता मिल सकती हैं। ध्यान के समय मन को मजबूती से इष्ट वस्तु पर केन्द्रित करना चाहिए, किसी भी सांसारिक विषय की ओर मन को न जाने देना चाहिये। उस समय तो सव ओर से चित्त हटा कर एकमात्र ध्येय का ही लक्ष्य होना चाहिए। सर्वव्यापी परमात्मा में स्थित होकर ज्ञान के नेत्रों से ऐसा दर्शन करना चाहिए मानों सव कुछ मेरे ही संकल्प पर निर्भर है।

एक ध्येय वस्तु का ही निरन्तर चिन्तन ध्यान है। ध्यान में जिस प्रकार के गुण स्थिति होते हैं, उसी प्रकार के गुण सहित जब ध्येय का साक्षात्कार होता है तव उसको यथार्थ मानना चाहिये। कुछ साधक प्रार्थी ध्यान में ध्येय के स्थूल स्वरूप को ही कल्पना में लाया करते हैं,

उसकी झांकी को ही ध्यान की सिद्धि मानते हैं किन्तु यह भी यथार्थ ध्यान नहीं कहा जा सकता। ध्येय के गुणों में जब वृत्ति स्थिर होती है और ध्याता जब उन गुणों से युक्त हो जाता है, तब यथार्थ ध्यान की सिद्धि कही जाती है। यदि ध्येय के गुणों में आपकी चित्तवृत्ति तदाकार नहीं होती, तो चाहे जितनी देर ध्यान में स्थित क्यों न बैठे रहो, प्रार्थना में सिद्धि कदापि नहीं हो सकती। ध्येय तथा ध्याता में अभेद भाव उस समय उत्पन्न होता है जब ध्येय के गुण धर्म के साथ ध्येय के स्वरूप के साथ ध्याता सम्बन्ध में आता है। ध्येय के साथ जब प्रार्थी तन्मय हो जाता है। एक साधक का कथन है, 'जहां कहीं ध्येय के गुण-धर्म दिखाई पड़ें, वहाँ तुम्हारा आन्तरिक शुद्ध भाव उमड़ आवे, वह वस्तु देखते ही तुम ध्येय को ही देख रहो हो, ऐसा प्रतीत होने लगे, तो जान लो कि तुमको ध्यान की सिद्धि हो गई। तुम्हारे विरोधी की ओर दृष्टि हो जाय किन्तु यदि तुमने वास्तविक ध्यान किया होगा तो ध्येय का कोई भी गुण उसमें दिखाई देते ही तत्काल तुम विरोध को भूल जाओगे। उसने जो कुछ तुम्हारा अहित किया है, उसे भी विस्मृत कर दोगे और उससे प्रेम पूर्वक मिलोगे, यही ध्यान की सिद्धि है।

ध्यान के समय ध्येय के प्रतिभान पूर्वक वृत्ति को एकाग्र करो और बचे हुए समय को जहाँ तहाँ ध्येय के गुणों की तलाश में वृत्ति स्थिर किया करो। ढूंढ़ो और उन गुणों को धारण करो। ऐसा करने से तुम बहिर्मुख वृत्ति में भी जहां तहाँ ध्येय का ही दर्शन करते रहोगे। यही ध्यान का स्वरूप है।

ध्यान करते समय नेत्र मूँदना आवश्यक है। नेत्र मूँदने से यह प्रपंचमय विश्व अदृश्य हो जाता है। विश्व को दूर हटा देना और ध्येय पर सब मनः शक्तियों को केन्द्रित कर देना ही ध्यान का प्रधान उद्देश्य है, परन्तु केवल बाहर का दृश्य अदृश्य होने से पूर्ण ध्यान नहीं होता जब तक हमारा मन भीतर नवीन दृश्य निर्माण करता रहे। अतः भीतर के नेत्र भी बन्द कीजिये। इस प्रकार जब स्थूल और सूक्ष्म दोनों जगत्

अदृश्य हो जाते हैं, तभी तत्काल और तत्क्षण एकाग्रता हो जाती है। ध्यान करने की विधि का उल्लेख सांख्य तथा योग दोनों ने ही बताता है, पर सांख्य का 'ध्यान निर्विषयं मनः' अर्थात् मन को निर्विषय बनाना ब्लैंक बनाना महा कठिन है, परन्तु योग का ध्यान सब की पहुँच के भीतर है। किसी वस्तु या मनुष्य का मानस चित्र निर्माण कर उसके प्रति एकता, एकाग्रता करना, व उसके साथ पूर्ण तदाकार हो जाना—इसी का नाम योग शास्त्र का ध्यान है। ऐसे ही ध्यान के अभ्यास से प्रार्थना में शक्ति का संचार होता है।

## चतुर्थ तत्त्व-आत्म-निवेदन :

यह प्रार्थना का अन्तिम तत्व है। अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक प्रेम से आप अपना निवेदन प्रभु के दरबार में कीजिये। आपकी समस्त कामनाएँ पूर्ण होगी जहाँ कहीं भक्तों ने दीनता से प्रार्थना की है, उस समय उनका अन्तः करण, उनका चित्त प्रभु प्रेम में सराबोर हो गया है उस प्रशान्त स्थिति में गद्‌गद् होकर उन्हें आत्मसुख की उपलब्धि हुई है। एक भक्त का आत्म निवेदन देखिये। वह कहता है, "हे दयामय प्रभु ! मैं संसार में अत्यन्त त्रसित हूँ, अत्यन्त भयाकुल हो रहा हूँ। आपकी अपार दया से ही मेरे विचार आपके चरणों में खिचे हैं। मैं अत्यन्त निर्बल हूँ—आप मुझे सब प्रकार का बल दीजिये और भक्ति में लगा दीजिये।" गिड़गिड़ा कर प्रभु के प्रेम के लिए, भक्ति के लिए, आत्म निवेदन करना सर्वोत्तम है। आपका आत्म-निवेदन आशा से भरा हो, उसमें उत्साह की उत्तेजना हो, आप यह समझें कि जो कुछ हम निवेदन कर रहे हैं वह हमें अवश्यमेव प्राप्त होगा। आप जो कुछ निवेदन करें वह अत्यन्त प्रेम भाव से होना चाहिए। उत्तम तो यह है कि जो निवेदन किया गया हो वह सब प्राणियों के लिए हो, केवल अपने लिए नहीं।

## प्रार्थना के भिन्न-भिन्न रूप :

वैज्ञानिकों का सिद्धान्त है कि प्रत्येक चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं—

नेगेटिव तथा पोजिटिव। धन ध्रुव एवं ऋण ध्रुव की भांति प्रार्थना की भी दो कोटियां मानी जा सकती हैं (१) आकर्षक प्रार्थना (२) प्रवाहिक प्रार्थना।

## आकर्षक प्रार्थना :

आकर्षक प्रार्थना वह आध्यात्मिक प्रयोग हैं जिनके द्वारा विश्व के अनन्त शक्ति भण्डार से वायुमंडल में विकीर्ण थरथराने वाली ओज या दिव्य शक्ति के महासागर से दृढ़ संकल्प के अनुसार आत्म शक्ति खींचते हैं। कुछ समय के निमित्त मन एक सचेतन चुम्वक वन जाता है। जो स्थान यह वायुमंडल में घेरता है, वह भी वैसा ही महान् आकर्षण केन्द्र वन जाता है। "मैं शक्ति हूं, मैं आत्म-शक्ति को आकर्षित करने वाला चुम्वक हूँ।"—इस सत्ता से अनुप्राणित एवं सद्बुद्धि मस्तिष्क—रूपी यंत्र वायुमण्डल से औजस शक्ति खींचता है और महाशक्ति पुंज वनता है। 'मैं शक्तिपुंज हूँ। महान् आकर्षण—केन्द्र हूँ।"—ऐसा उच्चारण करते ही एकदम एक विशेष विचार-अनुक्रम उत्पन्न होता है। ज्यों ही तुम ध्यान में एकाग्र होते हो, झट गति की थरथराहटें उत्पन्न होने लगती हैं। आकर्षक प्रार्थना द्वारा हम अपने व्यक्तित्व में अनेक शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियां उत्पन्न करते हैं। संक्षेप में आकर्षक प्रार्थना आध्यात्मिक शक्तियों के उस प्रयोग को कहते हैं जिसके द्वारा विश्व व्याप्त अनन्त शक्ति भंडार से बुद्धि, शक्ति व प्रेम की तरङ्गों का आकर्षण होता है।

## प्रवाहिक प्रार्थना :

द्वितीय प्रकार की प्रार्थना "प्रवाहक प्रार्थना" है। प्रवाहक प्रार्थना द्वारा पहली प्रकार की मानसिक तरङ्गों को कार्य में लगाया जाता है। अनेक साधक, महात्मा, मानसोपचारक आध्यात्मिक चिकित्सा में प्रवाहक प्रार्थना का ही उपयोग किया करते हैं। रोगी को विना देखे, रोगी चाहे कितने भी हजार मील की दूरी पर हों, इसी प्रार्थना से इलाज किया

जाता है । गरीब, दरिद्र, दिवालिए और बेरोजगारों की समृद्धि के लिए प्रवाहक प्रार्थना ही विशेष उपयोग किया जाता है । शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक कठिनाइयों को, इसी प्रार्थना के असीम बल से दूर किया जाता है । इस प्रार्थना में व्यक्त सद्भावनाएँ लहरों के रूप में ईथर पदार्थ के प्रत्यक्ष माध्यम द्वारा बिना किसी रोक टोक के हजारों रुकावटों को पार करती हुई यथास्थान पर पहुंचती हैं । एकत्रित विचारों के सूक्ष्म परिमाणुओं द्वारा आकाश में एक शक्तिशाली वायुमंडल विनिर्मित होता है और प्रार्थी की इच्छाशक्ति एवं एकाग्रता के अनुसार इच्छानुकूल सिद्धि प्राप्त होती है ।

"संसार में सबका भला हो । सब की खैर हो । सर्वत्र एवय मंगल का प्रसार हो । आरोग्य, आनन्द, शान्ति, प्रेम, सुख समृद्धि की वर्षा हो । हे करुणानिधान ! आपकी मंगल कामना पूर्ण हो !"— ऐसी मंगलकारी प्रार्थना से आस-पास के वायुमण्डल में सुख, शान्ति, आरोग्य भ्रातृ भाव तथा प्रेम के विशुद्ध परिमाणु विकीर्ण होते हैं । दरिद्रता, व्याधि रोग, शोक, लड़ाई झगड़े का दूषित वातावरण नष्ट होकर प्रेम तथा भ्रातृ भाव का साम्राज्य फैलता है ।

एक अनुभवी प्रार्थी का कथन है कि "कोई भी सिद्धान्त जिसमें कुछ शब्द समूहों में सूचना देने मात्र से प्रार्थना का अर्थ सिद्ध हो जाना बताया जाता है, वह अवश्य अधूरा है, क्योंकि सूचना से उस शक्ति को कार्य में लाने का प्रयत्न किया जाता है, जो बहुधा उसमें वर्तमान ही नहीं रहती और जिस शक्ति को उपार्जन करने का साधन भी उसमें नहीं है, यह है प्रार्थना का एकाँगित रूप ।"

ऊपर जिन "प्रवाहक एवं आकर्षण प्रार्थनाओं का उल्लेख किया गया है, वह अन्योन्याश्रित हैं । सर्व प्रथम हमें वायुमण्डल से दीप्तबल खींचना पड़ता है । आध्यात्म बल की निरन्तर वृद्धि से मन अमित शक्ति आकृष्ट करता है । मन की एकाग्रता द्वारा आत्मशक्ति को खींच कर हम

जब अपने दीप्तबल का संचय करेंगे, तभी हम भौतिक जगत् पर नियमन कर सकते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रवाहक प्रार्थना बिना आकर्षक प्रार्थना के व्यर्थ है। एकांगी है।

सर्वप्रथम दीप्तबल का संग्रह कीजिए। आकर्षक प्रार्थना, का प्रयोग इस दिशा में बड़ा गुणकारी सिद्ध होगा। आकर्षक प्रार्थना, बलवती इच्छाशक्ति, उच्चकोटि के ध्यान, आत्मसंयम एवं एकाग्रता पर कार्य करती है। अपनी अटल इच्छाशक्ति द्वारा प्रार्थी वायुमण्डल से दीप्तबल का संग्रह कर सकते हैं। दीप्तबल से युक्त प्रार्थी ऐसे चुम्बक बन जाते हैं कि निम्नकोटि के विचार वाले तथा अस्थिर चित्त वृत्तियों वाले अनेक व्यक्ति उनकी ओर आकर्षित होकर चले आते हैं। सारा संसार उनके लिये निम्नकोटि का है। चुम्बक का धनात्मक केन्द्र उनके ऋणात्मक केन्द्र को आकर्षित करता है।

## शक्ति की विद्युत तरंगों का संग्रह कैसे हो :

प्रतिदिन एक निश्चित स्थान पर कुछ काल के लिए अपनी सम्पूर्ण भावनाओं को हटाकर नेत्र मूँद कर सुखासन से बैठ जाओ। शरीर एवं मन को शिथिल कर लो। शिथलीकरण पूरा-पूरा रहे। तनी (Tension) की अवस्था में कुछ न होगा। जब शरीर तना हुआ होता है, तो ज्ञान-तन्तु भी कसे रहते हैं। मांसपेशियाँ भी सख्त रहती हैं अतएव हमसे कुछ भी नहीं हो पाता। शिथिल हो जाइये। शरीर का कोई अवयव तना हुआ न रहें, मन निश्चेष्ट रहे, ढीला हो जांय, भारीपन या तनाव बिल्कुल न रहे। सब प्रकार के विचारों को हटाकर अलौकिक शक्ति से तादात्म्य की भावना पर दस मिनिट तक चित्त को एकाग्र करो। दृढ़ता से निम्न भावना पर दस मिनिट तक चित्त को एकाग्र करो। दृढ़ता से निम्न भावना पर मनः शक्ति डालो —

"मैं अपने हृदय में विराजे हुए शक्तिशाली सुख स्वरूप परमात्मा की ही प्रार्थना करता हूँ। मैं अपनी समस्त वृत्तियों को मनः क्षेत्र में स्थित

दैवी शक्ति में ही केन्द्रित करता हूँ। अहह ! मेरे अन्तर में परमात्मा का सुदिव्य प्रकाश है। मैं अपनी शक्तियों का संचालक हूँ। मैं अपने मन को कभी भी अस्थिर, चलायमान और विकृत वासनाओं के वशीभूत नहीं होने देता। मैं अमित शक्तिशाली आत्मा हूँ। मैं परम तेजस्वी शक्ति-पिण्ड हूँ। परमात्मा की महान् शक्तिशाली शक्तियों से मेरा मन निरन्तर भरपूर हो रहा है। मेरे अन्तःकरण में निर्मल प्रेम, अचल श्रद्धा तथा अपूर्व उत्साह का प्रभाव प्रकट हो रहा है। मेरे अन्तर में ईश्वरीय प्रकाश का केन्द्र है। वही केन्द्र मेरी शक्ति का प्रधान स्थान है। मेरे हृदय में परमात्मा का दिव्य प्रकाश ज्ञान-सूर्य उदय हो गया है। संसार के क्षुद्र लालच, अभिमान, भोगविलास मुझे इस प्रकाश केन्द्र से हटा नहीं सकते। मैं उस महाशक्ति-अनन्त बल का दिव्य अंश हूँ।"

"मैं ब्रह्माण्ड की प्राणशक्ति एवं जीवनशक्ति को अपने अन्दर संग्रह कर रहा हूँ। उससे ओतप्रोत हूँ। मेरे रोम-रोम में वही अद्भुत शक्ति भर रही है। मुझ में अनन्त परमात्म देव का प्रकाश होने लगा है और मेरा मन दृढ़ बलशाली शक्ति सम्पन्न बन रहा है।"

उक्त प्रकार के संकेतों से शान्त होकर ऐसा सुन्दर मानसिक वातावरण विनिर्मित होता है, जिससे जगत् पिता और हमारे मध्य में एक तादात्म्य स्थापित होता है। हम में शक्ति की विद्युत् तरंगों का संग्रह होता है। इस आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएं हैं।

## आकर्षक प्रार्थना की तीन अवस्थाएं :

पं० रामदत्त पाण्डे का विचार है कि परम पिता से निःसंकोच भाव से आवश्यक शक्ति की याचना को हम प्रथम अवस्था के अन्तर्गत ले सकते हैं। इस मत के अनुसार साधक को एकान्त स्थान में शान्तचित्त से लेटकर अपने अङ्ग प्रत्यङ्गों को शिथिल कर अथवा सुखासन से बैठे बैठे कर परम पिता से अभीक्षित शक्ति की याचना करनी चाहिए। यदि आप

शुद्ध एवं सच्चे हृदय से तन्मय होकर प्रार्थना करेंगे तो परमेश्वर आपकी पुकार अवश्य सुनेंगे और ठीक उसी प्रकार सुनेंगे जिस प्रकार आप किसी के शब्दों को सुनते हैं, यह प्रथमावस्था हुई।

द्वितीय अवस्था वांछित शक्ति को अपने में पूर्ण रूप से लबालब भर देना है। आपको ऐसा मानसिक चित्र बनाना चाहिए जिसमें आप अपने आपको दीप्तबल से उद्वेलित होता हुआ देखें। कल्पना को उत्तेजित कीजिए। और उसके द्वारा मन में एक ऐसा शक्तिशाली स्वरूप बनाइये जिसमें आप अपने आपको उस दिव्य शक्ति से भरा पूरा देखें। नेत्र मूँद कर आप ऐसे ध्यान में मग्न हो जाइये जैसे बहुत दूर एक ज्योतिपुंज है, और सूर्य जैसी उसकी किरणें सृष्टि में बिखरी चली जा रही हैं। कल्पना कीजिए कि ये किरणें मेरी हैं। वे मेरे ही लिए आईं हैं। वह सारी की सारी ज्योत्सना मेरी है। मेरे ही लिए है। ज्योत्सना चिंतन का अभ्यास क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ते जाना चाहिए। आप में शक्ति का प्रवाह भरता है या नहीं—इस विषय में दूसरे से न कहें। निसर्ग को अपना कार्य करने दें। इस अवस्था में आप परम पिता की गोद में खेलते हैं।

इसके पश्चात् तृतीय अवस्था का प्रारम्भ होता है। इसे 'अनुभव' की अवस्था कहते हैं। जिस शक्ति या वृद्धि की आपने याचना की होगी, क्रमशः वह आपको प्राप्त होने लगेगी। उसका कुछ-कुछ अनुभव भी होगा। आप इस धारणा को लेकर अपने नित्य के काम धन्धे में प्रवृत्त हों कि आपको मनोवांछित फल मिल गया है, आप जिसकी कामना करते थे, वह क्रमशः उपलब्ध हो रहा है, आप अपने आदर्श को धीरे-धीरे प्राप्त करते जा रहे हैं। आप में 'दीप्तबल' आ रहा है। नेत्रों में, मुखमण्डल में, अङ्ग प्रत्यंगों में दीप्तबल भर गया है। संक्षेप में, जिन वस्तुओं की आपने प्रार्थना की है उन्हें अपने में आता हुआ देखो। इस प्रकार नव शक्ति से सम्पन्न होकर आप प्रवाहक प्रार्थना से कार्य ले सकते हैं। क्रमशः तुम्हें सत्य का प्रकाश दृष्टिगोचर होने लगेगा।

## प्रार्थना के लिए सर्वोत्तम समय :

प्रकृति की ओर ध्यान देने से विदित होता है कि प्रातःकाल में ही सम्पूर्ण रस भरा हुआ है। भजन प्रार्थना के लिए वही अमृत वेला सर्वोत्कृष्ट है। ऋषिवर इसी ब्राह्ममुहूर्त में उठकर प्रार्थना में संलग्न होते थे। साधक को सूर्योदय से पूर्व ही उठ शौचादि कर्म से निवृत्त हो, स्नान आदि करने के पश्चात् शान्त चित्त हो ध्यान में प्रविष्ट होना चाहिए। ब्राह्ममुहूर्त सूर्योदय से डेढ़ घण्टे पूर्व प्रारम्भ होता है। ब्राह्ममुहूर्त में प्रार्थना करना बड़ा उत्तम एवं स्वास्थ्यप्रद है। निर्देश किया गया है कि -

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत स्वास्थ्यो रक्षार्थ मायुषः।
तत्र दुःखस्य शान्त्यर्थो स्मरेद्धि मधुसूदनम्॥

अर्थात् स्वस्थ मनुष्य को चाहिए कि वह अपने जीवन की रक्षा के लिए ब्राह्ममुहूर्त में शय्या त्याग कर उठ जांय तथा दुःखनाश के लिए भगवान् की प्रार्थना करें। शय्या पर दिन निकले तक पड़े रहने से अनेक प्रकार के दूषित विचार हमें आ घेरते हैं, मनोवासनाएँ उच्छृङ्खल हो उठती हैं और हम पतित हो जाते हैं। अधजगे व्यक्ति को कामवासनाएँ पटक-पटक कर मारती हैं। आलस्य की कुछ ऐसी प्रकृति है कि ज्यों-ज्यों उसमें अधिक प्रवृत्त हो, त्यों-त्यों वह अधिकाधिक सताता है। प्रायः सुबह की अमृत वेला में जब उठने का प्रयत्न किया जाता है तो बहुधा हमारी प्रमादिक एवं तामसिक वृत्तियों का उत्तम पवित्र भावनाओं से द्वन्द्व हुआ करता है एक ओर यह प्रवृत्ति होती है कि पड़े रहें, निद्रा का आनन्द लूटें, तो दूसरी ओर बुद्धि विवेक तीव्रता से हमें कर्तव्य की ओर सजग किया करता है। ऐसे द्वन्द्व में न फँस कर दृढ इच्छा कर उठ जाना प्रत्येक दृष्टि से श्रेयस्कर है।

सूर्योदय का आगमन जीवन-ज्योति के आगमन का सूचक है। वृक्षों की हिलती हुई पत्तियाँ, पक्षियों का सुमधुर कूंजन, पुष्पों का नृत्य, मधु-

करों की अमृतोत्तम गुंजार सबकी सब आनन्द विभोर होकर स्वर्गीय आनन्द की सृष्टि करती हैं। सूर्योदय की प्रथम रश्मियों के स्पर्श मात्र से समस्त प्रकृति गदगद् हो चहुं ओर सुगन्धित सौरभ, मतवाली महक, अलौकिक आनन्द, सुमधुर गुंजन, अनूठी कान्ति बिखेरती फिरती है। ऐसे सुन्दर समय में साधक ईश्वरीय आनन्द से विभोर हो अन्तःकरण का कल्मष धो डालता है और परम श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वास से दोनों हाथ जोड़ कर ऊपर उठाता है और प्रार्थना प्रारम्भ करता है:—

'हे लोकेश ! हे चैतन्यमय आदि देव ! हे श्रीकान्त ! हे विष्णु ! आपकी आज्ञा से प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठ कर आपकी प्रसन्नता के लिए मैं दिन की यात्रा का प्रारम्भ करता हूँ। हे प्रभो ! मैं समस्त जीवों को क्षमा करता हूँ, सबका कल्याण हो। सब दुःखों से पार हों, सब कल्याण का दर्शन करें। सबको सब कुछ प्राप्त हो, सब सभी जगह आनन्दित हो जांय। दुर्जन सज्जन शान्ति प्राप्त करें, शान्त बन्धनों से मुक्त हो जांय और दूसरों को मुक्त करें।

प्रार्थना के पश्चात् सूर्य की रश्मियों को अपने ऊपर लेना चाहिए। सूर्य को अर्घ्य देना, सूर्य भगवान् के प्राथमिक दर्शन करना, प्रातःकालीन वायु में दीर्घ श्वास प्रश्वास लेना फुफ्फस के समस्त विकारों को दूर कर, समस्त शरीर में प्राण शक्ति को बढ़ाने और कल्पना की अभिवृद्धि करने वाली है।

प्रातः काल की ही भांति सन्ध्यावेला सूर्य छिपने से कुछ पूर्व गोधूलि के समय भी नित्य नियमित रूप से प्रार्थना का क्रम चलना चाहिये। किसी एसे मन्दिर में चले जाइये जहाँ का वातावरण शान्त हो। प्रार्थना-मन्दिर भी उत्तम है क्यों कि यहां सब स्त्री पुरुष बालक सम्मिलित बैठ कर उपासना में प्रवृत्त होते हैं। प्रार्थना मन्दिर से जो विश्वकल्याण की सूक्ष्म तरंगें सम्मिलित रूप में निकलती हैं, उनसे आध्यात्मिक उन्नति होती है और अदृष्ट रूप से रोगी दुखियों को सहायता मिलती है।

रात्रि में सोने से पूर्व प्रार्थना करना अत्यवश्यक है। शय्या पर बैठ-कर या लेट कर जैसा रुचे शिथलीकरण कीजिए। फिर "रात्रि सुखकर हो, आनन्ददायिनी हो, स्वप्नों से छुटकारा मिले"— इस भावना को लेकर निद्रा में प्रविष्ट होना अत्यन्त कल्याण कारी है। रात्रि के समय निद्रावस्था में प्रत्येक मनुष्य का जीवात्मा स्थूलोपाधि से पृथक होकर अपने निज लोक में प्रविष्ट हो इष्टगुरु से ज्ञान प्राप्त करता है। उस समय जीवात्मा की सन्धि परमात्मा से स्वयमेव ही होती है। उस समय जीवात्मा को शरीर की सुध नहीं रहती। शरीर तो केवल मशीन की भाँति स्व-मेव क्रिया करता रहता है और अपने रोग द्वेष के अनुसार ब्रह्मी भावों के प्रवाहों से प्रभावित होता रहता है। जो प्रार्थनाएँ निद्रा से पूर्व हम करते हैं, उनकी प्रतिक्रियाएँ निद्रित अवस्था में निरन्तर चला करती हैं। अतः निर्विकार एवं शान्त होकर साधक को प्रार्थना करनी चाहिए। इस से साधक अपनी अज्ञान चेतना को वहुत ऊँचे लोक में सरलता से लेजा सकेगा।

जिन जिज्ञासुओं के मन वश में नहीं हैं, उन्हें निद्रा में बड़ी कठिनाई पहुँचती है क्योंकि मन दुश्चिन्ताओं एवं कुवासनाओं की ओर स्वभावतः दौड़ता है। उन्हें नींद से जागकर पुनः भजन करना चाहिए। इस प्रकार लयावस्था के पूर्व थोड़ी सी उपासना से मीठी निद्रा आती है। यह स्मरण रखना चाहिए कि ब्रह्मांड और पिंड के परस्पर सम्वन्ध के लिए रात्रि का प्रार्थना में हमें वहुत सतर्क रहना अनिवार्य है।

प्रार्थना तीनों कालों में की जाती है—प्रातःकाल, मध्यान्ह, तथा सायंकाल। प्रातःकाल की प्रार्थना सर्वोत्कृष्ट अमित फलदायिनी है। उत्तम प्रार्थना ब्राह्म मुहूर्त की अमृत वेला में होती है। यह वह समय है जब प्रातः काल के आक्रोश में तारे झिल-मिलाते रहते हैं। सूर्य उदय से लगभग डेढ़ घंटे पूर्व यह पुनीत समय प्रारम्भ होता है। जिस समय तारे लुप्त हो जांय, उस समय की प्रातः संध्या मध्यम श्रेणी में परिगित

की जायगी सूर्योदय के पश्चात् की प्रार्थना में वह तीव्रता नहीं रहती। अतएव उसे कनिष्ठ कहते हैं।

इसी प्रकार सायं संध्या के भी तीन विभेद हैं—सूर्य अस्त होने के पूर्व जो संध्या की जावे यह उत्तम कहलाती है और सूर्य अस्त होने के पश्चात् और तारों के निकलने के पूर्व जो संध्या की जावे, वह मध्यम कहलाती है। तारों के झिल-मिलाने के पश्चात् जो संध्या की जाती है, वह कनिष्ठ कहलाती है।

उपरोक्त शास्त्रीय संध्याकाल ब्रह्मांड और पिंड के परस्पर निर्भर है। पृथ्वी एक बड़ा भारी चुम्बक है। उस पर सूर्य तथा चन्द्रमा का प्रभाव भिन्न भिन्न काल में भिन्न भिन्न होता है। इसी प्रकार मनुष्य भी एक चुम्बक है। उसके स्थूल शरीर का सम्बन्ध पृथ्वी से है। शरीर रूपी चुम्बक का उत्तर सिरा मस्तिष्क, दक्षिण सिरा नाभि स्थान तथा मध्य स्थान हृदय है। चन्द्रमा का सम्बन्ध चित्त से है तथा सूर्य का आत्मा से और भिन्न भिन्न समयों में की गई प्रार्थनाओं का भिन्न भिन्न फल होता है। उपरोक्त काल इन्हीं वैज्ञानिक नियमों के अनुसार नियत किये गये हैं। सूर्योदय पर समस्त शक्तियां उत्तेजित रहती हैं, रात्रि के समय ब्रह्मांड की सर्व शक्तियाँ सो जाती हैं, अतः शरीर की समस्त शक्तियाँ भी सोई सी रहती हैं। ब्राह्म मुहूर्त में की गई प्रार्थना प्रत्येक दृष्टि से उत्तम है।

अतः निद्रा से जागृत होते ही साधक को चाहिए कि गुरुदेव का ध्यान करे और उनकी मूर्ति को अपनी मानसिक दृष्टि के सन्मुख समाधिस्थ प्रत्यक्षाकार करे, ऐसा करने से उसका चित्त एकाग्र होने लगेगा। उस समय जीवन के उच्च लक्ष्य पर चित्त को एकाग्र करे और श्रीगुरु से प्रार्थना करे कि वे इस कार्य में सहायता प्रदान करें। तत्पश्चात् मलमूत्र शौचादि से निवृत्त हो दातुन और स्नान से शुद्ध होवे और शुद्ध वस्त्र धारण कर नियत स्थान पर ब्राह्म मुहूर्त में प्रार्थना करे।

## प्रार्थना की चमत्कारिक शक्ति से रोग दूर होते हैं :

आजकल पाश्चात्य देशों में प्रार्थना द्वारा रोगानिवारण और स्वास्थ्य संरक्षण पर विशेष बल दिया जा रहा है। यह विचारों का ही प्रचण्ड चमत्कार है। हम स्वयं अपने हित या दूसरों के हित के लिए प्रार्थना कर सकते हैं। शुद्ध अन्तःकरण से की गई प्रार्थना से हमें लाभ मिलता है। स्वयं हमारे रोग शोक दूर होते हैं आस-पास के वातावरण की शुद्धि होती है। डा० दुर्गाशंकर नागर के अनुसार नीचे दिए तीन प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं:—

१—सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति के हेतु या स्थल अभाव की पूर्ति लिए प्रार्थना की जाती है जैसे—अन्न, वस्त्र, नौकरी, धन, स्त्री-पुत्र प्राप्ति के लिए, अपने और दूसरों के रोग निवारण के लिए, किसी संकट से पीछा छुड़ाने के लिए, आपत्ति दूर करने के लिए, सम्मान प्राप्ति के लिए, परीक्षा में सफलता प्राप्त करने लिए, विद्या-प्राप्ति के लिए और समस्त व्यवहारिक सिद्धि के लिए प्रार्थना की जाती है।

२—आत्मिक उन्नति के लिए काम, क्रोध, राग, द्वेप आदि मनोविकारों पर जय (कन्ट्रोल) प्राप्त करने के लिये। मनुष्य की आत्मा क्या है। ईश्वर क्या है? सृष्टि क्या है? इत्यादि उच्च आध्यात्मिक विषयों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मानसिक और बौद्धिक उन्नति के लिए, आत्मज्ञान और यथार्थ साधन जानने के लिए प्रार्थना की जाती है।

३—तीसरे प्रकार के वे प्रार्थना करने वाले भक्त हैं, जिन्हें कुछ मांगना नहीं है, केवल उस महाप्रभु (सृष्टिकर्त्ता) के ध्यान में वे निरन्तर लीन रहना चाहते हैं या उस प्रियतम से एक होने के लिये अपनी खुदी (अस्तित्व) को मिटा देना चाहते हैं, ईश्वर दर्शन या आत्म साक्षात्कार करने के लिए जिन्हें अतीव हार्दिक उत्कंठा होती है। यह सर्वोत्कृष्ट प्रार्थना है। जो सच्चे हृदय और पूर्ण विश्वास से जिसके लिये प्रार्थना करता है, वे सब कामनाएँ अवश्य पूर्ण होती हैं।

## प्रार्थना द्वारा स्वस्थ हुए रोगियों के कुछ उदाहरण :

यहा हम कुछ उदाहरण "कल्पवृक्ष" मासिक पत्र से उद्धृत करते हैं। इनसे प्रार्थना की शक्ति स्पष्ट होती है।

श्री नयनसिंह जी भंडारी हवलदार लिखते हैं—"ता० १७ अप्रेल ४३ की रात्रि को ग्यारह बजे हैं। इण्डियन मिलिटरी हास्पिटल सिकन्दराबाद में सब बीमार अपनी चारपाइयों पर कथाओं को लेकर निद्रा देवी से उसकी शान्तिमय गोद में शरण पाने के लिये मिन्नतें कर रहे हैं। किसी-किसी को तो प्रार्थनाएं स्वीकृत हो भी चुकी थी किन्तु एक नवयुवक सरदार तेजसिंह हवलदार क्लर्क जिसके हाथ पर साईकिल से गिर कर टूट जाने के कारण प्लास्टर चढ़ा दिया गया था, दूसरे हाथ से दर्द वाले हाथ को थामे हुए विक्षिप्त की तरह रोता हुआ शान्ति की खोज में व्यग्र हो इधर-उधर घूम रहा था। लगभग पाँच मिनट उसे रोते हुए व्यतीत हुए होंगे कि मुझसे सहन न हो सका। उसकी दर्दनाक अवस्था पर मुझे असह्य वेदना हुई। ईश्वर की कृपा पर ध्यान गया। मैंने समझा एक महौषधि मिल गई . पीठ के बल लेटे-लेटे मैं निम्न लिखित प्रार्थना मूक भाव से करने लगा:—

'हे करुणामय पिता ! यह दुःखी भी तो आपका ही शिशु है। यह रो रहा है, और आपको दया नहीं आ रही है भगवन् ! इसका दुःख हरो, प्रभू ! इसका दर्द ! हरो, हरो। शीघ्र हरो, करुणानिधान ! क्यों इसको रोते देख रहे हो, प्रभो ! आपका यह पुत्र पीड़ा से हाय हाय कर रहा है, भगवन् ! और यह आपको बरदाश्त हो रहा है ? क्षमा करो भगवन् ! और शीघ्र इसका दुःख हरो, हरो, हरो। दयासिन्धु ! तुम्हारा हृदय तो बहुत ही करुणामय है। तुम करुणासागर हो। परन्तु मुझे आश्चर्य हो रहा है कि अपने पुत्र का रोना आपको कैसे सहन हो रहा है ? बस कीजिए महाप्रभु ! अपने इस पुत्र का दुःख शीघ्र दूर कीजिये। प्रभो ! अब अधिक न रुलाइये। इसकी पीड़ा हरिये, करुणासागर।'

मैं कल्पना के जगत् में भगवान् का पल्ला पकड़े हुए बार-बार यह ऊपर लिखे शब्द भगवान् से गिड़गिड़ाते हुए आग्रह पूर्ण आवेश में कह रहा था। बीच-बीच में बार-बार दुःखी नवयुवक की ओर भगवान् का ध्यान आकर्षित करता था। मेरा यह गिड़गिड़ाना ठीक उसी प्रकार का था जिस प्रकार मैं बालकपन में अपनी स्नेहमयी माता का पल्ला पकड़ कर कलेवे के लिए रोटी में घी, मक्खन, या शहद के लिये गिड़गिड़ाता था उक्त प्रार्थना करते समय मुझे ऐसा भाव होने लगा, जैसे भगवान् गौर से मेरी बातें सुन रहे हैं और कभी मेरे मुँह पर कभी सिक्ख नवयुवक के दुखते हुए हाथ पर देख कर कुछ गौर कर रहे हैं। यह अनुभव कर मुझे आशा हो गई कि ईश्वर उसका दुःख शीघ्र ही हरने वाले हैं और अभी हरते ही हैं। ऐसा समझते समय कि 'अभी हरते ही हैं—मेरे मुँह से यह शब्द निकलते थे 'हरो भगवान् ! बहुत हो गया। अब कर दो इसका दर्द बन्द।

ओह ! इतनी शीघ्र भगवान् को दुःखी पर करुणा आगई। अधिक से अधिक दस पन्द्रह मिनट सच्ची हार्दिक प्रार्थना कर सका था कि दुःखी का रोना कम और फिर बन्द हो गया। फिर क्या था मेरी आँखें डबडबा आईं, हृदय प्रेम से गद्‌गद् होगया और मैं भगवान् को यों धन्य-धन्यवाद देने लगा—

'भगवान् ? आप कितने शीघ्र पसीजते हैं। कितनी जल्दी दर्द भरी पुकार सुन लेते हैं। करुणानिधान ! धन्य हो आपको। कितने दयालु हैं आप। पुकार की देरी थी कि आपका करुणा हस्त शीघ्र पीड़ा को हरने के लिये आतुर हो उठा।'

सच्चे हृदय से की गई प्रार्थना के करिश्मे अनेक बार देखे जा चुके हैं। निसन्देह मनुष्य के अन्दर वह शक्ति है जो कि ईश्वर की सन्तान में होनी चाहिये। इस शक्ति को आन्तरिक प्रार्थना द्वारा जिसने जिस मात्रा में जागृत कर लिया, उसने उतना ही पुरुषार्थ कर दिखाया। अपने अन्तःकरण में इस दैवी शक्ति को उत्पन्न करने के लिये ईश्वर के प्रति

पूर्ण विश्वास और भक्ति की परम आवश्यकता है। मेरा विचार है कि इसे उत्पन्न करने के लिये जितना अधिक हो सके ईश्वर के असीम उपकारों का स्मरण, चिन्तन, मनन करना उचित है। जितनी ही अधिक मात्रा में हम ईश्वर के उपकारों का स्मरण करेंगे, उतनी ही मात्रा में उन महाप्रभु पर हमारा प्रेम, श्रद्धा एवं भरोसा बढ़ेगा। ऐसे प्रार्थी के हृदय की ऐसी अवस्था हो जाती है कि वह परमेश्वर से सम्भाषण कर सकता है।

श्री रामलालजी पहाड़ा प्रार्थना की रोग निवारक शक्ति को सिद्ध करते हुए निम्न उदाहरण देते हैं:—'एक स्त्री अपने पति के व्यवहार से क्षुब्ध होकर आत्म हत्या करने को तत्पर थी। संयोगवश एक साधु पुरुष ने उस स्त्री को समझाया—'हे देवि ! परमात्मा बड़े दयालु हैं। उनके दरबार में की गई विनय सदैव सुनी जाती है। तू प्रार्थना किया कर कि परमात्मा, मेरे स्वामी का मन शुद्ध कर दो। ऐसा करते-करते उस स्त्री ने अपूर्व आश्चर्य से देखा कि सचमुच उसके स्वामी का मन बदल गया है, वह अपनी स्त्री को प्रेम करने लगा और उसके व्यवहार से प्रसन्न रहने लगा। इस परिवर्तन को देखकर स्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे प्रार्थना की शक्ति से पक्का विश्वास होगया।

विश्वासपूर्वक की गई प्रार्थना से मानस तथा शारीरिक— सभी प्रकार के रोगों का निवारण होता है। परमश्रद्धेय श्री हनुमान प्रसाद जी पोद्दार ने एक कुष्ट रोगी के प्रार्थना द्वारा स्वस्थ होने का समाचार लिखा है। उनके अनुभव 'कल्याण' से यहाँ प्रेरणा के हेतु उद्घृत किये जाते हैं:—

'साइन्स आफ थाट रिव्यू' नामक इङ्गलैण्ड के एक पत्र में श्री गिल्बर्ट हेनरी गेज नामक सज्जन ने लिखा था 'जर्मनी के आदमी को शैशविक पक्षाघात (पोलियो) का रोग जन्म के पहले ही वर्ष हो गया था। फलतः उनके दोनों पैर लकवे से बेकार हो गये। उनके रोग निवा-

रण के लिए प्रार्थना की गई। चार महीने बाद समाचार मिला मिला कि उनके पैर में नवीन शक्ति आ गयी है। ४८ साल से जो माँसपेशियाँ मरी हुई थीं, वे सक्रिय हो गयीं। उनका जीवन सब रोगों और चिन्ताओं से मुक्त भगवद्-विश्वासपूर्ण और प्रल्फुल्लित हो गया। पुरानी बात है, कलकत्ता में एक प्रसिद्ध व्यवसायी को प्लेग होगया। १०४-१०५ डिग्री बुखार था और दोनों जाँघों में बड़ी-बड़ी गिल्टियाँ निकल आई थीं। कलकत्ता में बड़े-से-बड़े डाक्टर ने उन्हें देखकर कह दिया 'बचने की आशा बिल्कुल नहीं है', परन्तु भगवान पर उनका विश्वास था। उन्होंने कमरा बन्द करके भगवान् श्रीकृष्ण की मूर्ति सामने स्थापित कर ली और श्रीकृष्ण में मन लगाकर 'हरिः शरणम्' मंत्र का जप करने लगा। भगवान की कृपा से प्रातःकाल होते-होते वे बिल्कुल स्वस्थ होगये और वर्षों जीवित रहे। प्रार्थना की शक्ति से रोग दूर होने की अनेक घटनाएँ मैंने अपने जीवन में तथा दूसरों के जीवन में घटते देखी हैं। कैंसर, टी० बी० आदि रोगों में भी प्रार्थना द्वारा चमत्कारिक रूप में ही ठीक हुए हैं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि भगवान् की प्रार्थना से असम्भव भी सम्भव हो जाता है। अतएव मन-ही-मन भगवान् से प्रार्थना तथा मन-ही-मन 'हरि शरणम्' मंत्र का जप करना चाहिए। पोद्दार जी के अनुभव कुष्ट रोगी ने बड़ी ही उत्सुकता एवं श्रद्धा के साथ सुनीं। प्रार्थना द्वारा अपने कुष्ट-रोग के निवारण के लिए उनके हृदय में आशा का संचार होगया। वे जीवन से निराश न रहे। उन्होंने कुष्टरोग की दवाई तो ली ही, विश्वास-पूर्वक मन-ही मन रोग दूर करने के लिए भगवान से प्रार्थना की। उस समय तक 'सल्फोन' नामक एलोपैथिक दवा का, जिससे कुष्टरोग निर्मूलन सम्भव है, प्रचलन नहीं हुआ था। कुष्टरोगी आयुर्वेदिक दवा तो लेने लगे पर असली दवा तो भगवान से विश्वासपूर्वक करुण प्रार्थना एवं उनके नाम का जाप था। दोनों बराबर चलते रहे। कुछ महीनों में वे कुष्ट रोगी स्वस्थ होगये।" इस अनुभव से यह स्पष्ट है कि प्रार्थना द्वारा रोग निवारण होता है।

अमेरिका में कनसास सिटी में रोग-शोक कष्ट व्याधि दरिद्रता मिटा कर लोगों को सुखस्वास्थ्य का सन्देश देने वाली एक संस्था है—स्कूल आफ क्रिश्चिएनिटी। इसके संस्थापक श्री फिलमोर जन्म से ही लूले लंगड़े थे। उनके बच्चे तथा पत्नी सब क्षय रोग के शिकार थे। दवा-दारू करके सब प्रकार जीवन से निराश हो गये थे। उनका सारा पैसा भी उसमें लग चुका था। पास में कुछ भी शेष न बचा था। ऐसी संकट-कालीन अवस्था में उनकी धर्म पत्नी को आन्तरिक प्रेरणा हुई कि प्रार्थना से सब आधि व्याधि रोग संकट दूर होंगे। पूर्ण विश्वास और एकाग्रता से वे स्वास्थ्य लाभ के लिये प्रार्थना करने लगे, "हे परमात्मन्! आप सब प्रकार के भयों और विघ्नों से हमारा रक्षण कीजिये, हमारा रोग-शोक दूर कीजिये। हमारी शारीरिक और मानसिक शक्तियों को बढ़ाइये हमारी श्रद्धा एवं आत्म-विश्वास को दृढ़ की कीजिये। हमारे मन एवं विचारों को शुद्ध एवं शान्त कीजिये। हे अनन्त शक्तिमान्! आप हमारी आत्मा में अपना अनन्त, अमोघ बल एवं सामर्थ्य प्रकट कीजिये, जिससे हम स्वयं सब सब प्रकार की शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से तथा दुःख आपत्तियों से मुक्त होकर दूसरों को मुक्त करने में समर्थ हों!" थोड़े ही दिनों में प्रार्थना का जादू जैसा असर हुआ और उनका रोग जाता रहा। उन्हें जैसे नया नुसखा मिल गया! प्रार्थना द्वारा रोग निवारण के लिए उन्होंने एक संस्था ही स्थापित कर डाली। वे लगातार उक्तसंस्था द्वारा रोगियों की व्याधि, दरिद्रता,, रोग, शोक मिटाकर सुख शान्तिमय जीवन प्रदान कर रहे हैं। प्रार्थना में अमोघ बल है; प्रार्थना सब बलों का भण्डार है। पाश्चात्य देशों में रोगी को बिना देखे तक प्रार्थना द्वारा इलाज किया जाता है। हजारों मील दूर बैठे हुए रोगी पर प्रार्थना की जीवनदायिनी चिकित्सा का प्रभाव होते देखे गया है।

प्रार्थना द्वारा रोगों का अच्छा होना कोई नवीन बात नहीं है। पाश्चात्य देशों में इस शक्ति के प्रयोग चल रहे हैं। यदि रोगी प्रार्थना करता है, तो अविलम्ब रोग दूर हो जाते हैं। यह मनोविज्ञान की दृष्टि

से भी सत्य प्रतीत होता है। उस दशा में प्रार्थना एक प्रकार के पुष्ट संकेत या सजेशन बन जाती है। मन की छिपी हुई शक्तियाँ शनैः शनैः प्रदीप्त हो उठती हैं। यदि प्रार्थी में विश्वास एवं श्रद्धा के तत्व उचित मात्रा में प्रस्तुत रहें, तो यह सजैशन ( निर्देश ) बड़ी तीव्रता से कार्यशील होते हैं। विकृत मन सुष्ठु होकर स्थिरता ग्रहण करता है। बुद्धि तथा सृजनात्मक कल्पना के सामंजस्य से कुछ ऐसी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं कि विकृति दूर होकर पुनः सन्तुलन स्थापित हो जाता है। अनिष्ट प्रभावों को दूर करने के लिये, निज मन की पीड़ाओं, व्याधियों, दुश्चिन्ताओं से मुक्ति के लिए प्रार्थना का अवश्य प्रयोग कीजिए। स्मरण रखिए, आपकी प्रार्थना जितनी श्रद्धा तथा विश्वास युक्त होगी, उतनी ही सृजनात्मक कार्य सम्पन्न करने में समर्थ होगी। प्रार्थना द्वारा प्राचीन समय से रोग दूर किए जाते रहे हैं। मनुष्य पर जब समय कठिन अवसर आवें, तब प्रार्थना का आध्यात्मिक प्रयोग ही अमृतोपम औषधि है।

## सारी शक्तियाँ ईश्वर में केन्द्रित हैं :

ईश्वर अनन्त शक्ति सम्पन्न केन्द्र है। शुद्ध सच्चिदानन्द है। उनकी असंख्य शक्तियां विचित्र मूत्रियाँ धारण किया करती हैं। सगुण, साकार, दिव्य, नित्य ब्रह्माण्डों में सृजन पालन और संहार कर्ता के रूपों के रूपों में अवतरित होते रहते हैं। अनन्तकोटि शरीरों में एक ही आत्मा जीवात्मा रूप से विराजमान हैं। अनन्त कोटि विश्व ब्रह्माण्डों में जो कुछ उत्पन्न हुआ है, वह ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। ईश्वर तत्व के शरीर में प्रविष्ट होने पर समस्त रोग व्याधि विविध दुःख दूर हो जाते हैं।" मेरे अन्दर ईश्वर तत्व का निवास है, मैं शुद्ध पवित्र ईश्वर का मन्दिर हूँ। समस्त पापों से मुक्त हूँ। मेरे शरीर में कोई विकार नहीं ठहर सकता।"—इस विश्वास से मनुष्य रोगों से सुरक्षित निर्विकार निःशंङ्क निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। आस्तिक व्यक्ति यह मानता है कि

सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापी, योग क्षेम देने वाला दयालु है। वह हर समय हमारी सहायता को प्रस्तुत रहता है। वह सदा हमें सम्हालने वाला, और स्वस्थ करने वाला परम सुहृदय है। उसकी कृपा होते ही तमाम कष्ट दूर हो जाते हैं। उनकी स्नेह-सुधा से हम पूर्ण आरोग्य प्राप्त कर सकते हैं। उन्हें आत्म-समर्पण कर देने से पाप और पीड़ा स्वतः नष्ट हो जाती हैं। वे भक्तों के रोग-शोक दूर करने वाले मंगलकारी हैं। ईश्वर की शक्तियों की कमी हो जाने से मानव शरीर में रोक कष्ट पीड़ा या व्याकुलता उत्पन्न होती है। ये शक्तियां फिर आ जाने पर मनुष्य स्वस्थ हो जाता है। परमेश्वर के संरक्षण से आरोग्य प्राप्त होता है।

## प्रार्थना द्वारा ईश्वरीय शक्ति खींचना :

मनुष्य ईश्वर का अंश है। हमारे शरीर में से ईश्वर से निकली आत्मा विद्यमान है। कहा भी है "ईश्वर अंग जीव, अविनाशी।" हमें ईश्वर ने अपने अंश के रूप में ही जन्मा है। ईश्वर की समस्त उच्च आत्मिक शक्तियाँ मनुष्य में हैं। ईश्वर ही महान् जीवनदायिनी शक्तियों का केन्द्रविन्दु है। प्रार्थना वह आध्यात्मिक साधन है। जिसके द्वारा हम ईश्वरीय शक्तियों को अपने अन्दर आकृष्ट करते हैं। दिव्य ताकतें हमारे शरीर को शुद्ध करती हैं। पाप नष्ट होते हैं। विषय भोगों से मुक्ति मिलती है। वे हमारे परम सुहृद और परम हितैषी होने के कारण रोग व्याधि को दूर करने के लिए सहायक सिद्ध होते हैं। निरन्तर भगवान् की प्रार्थना और स्मरण से शान्ति और आशा मिलती है। भगवान का स्मरण हृदय को पुलकित कर देता है।

"भगवान की इच्छा है कि मैं पूर्ण स्वस्थ रहूँ। कोटि विकार मुझमें न रहें। विषय-वासना मनोविकार मुझे न सतायें। में भगवान की इच्छानुसार पवित्र बन रहा हूँ। भगवान का विधान है मंगलमय है। मेरे लिए सर्वत्र आनन्द ही आनन्द है। स्वास्थ्य ही स्वास्थ्य है।"

इस प्रकार की भावनाएँ मन में बसाये रहने से ईश्वर की गुणकारी शक्तियों से हमारा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। परम शक्ति और अमृत-तत्व से सानिध्य हो जाने से पंचतत्वों से आकर्षित होकर नये प्राण देते हैं। रोग दूर होते हैं। 'अहं ब्रह्स्थि' मैं ब्रह्म हूँ। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' सब ब्रह्म ही हैं। मुझ में रोग ठहर ही नहीं सकता-यह भावना बीमारी के कीटाणुओं को बहाकर ले जाती है। प्रार्थना दुःख निवारण की अचूक दवा है। प्रार्थना द्वारा हम ईश्वर की चमत्कारी शक्तियों को खींच कर शरीर की क्षति पूर्ति करते है। जहाँ परमात्मा का निवास है, वहाँ रोग और विकार क्योंकर रह सकते हैं? प्रार्थना के आध्यात्मिक कम्पन घातक विकारों को भगाते हैं।

सामूहिक प्रार्थना से समस्त वायु मण्डल पवित्र हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? प्रार्थना सामूहिक या व्यक्तिगत शुभ विचार है जिनमें कल्पता, एकाग्रता और इच्छाशक्ति का मेल होता है। प्रार्थना में जिन सशक्त शब्दों को विश्वास पूर्वक बार-बार दुहराया जाता है, वे एक साथ मिलकर आरोग्य और पवित्रता का वायु मण्डल बनाते हैं। भगवान का स्मरण और कीर्त्तन अन्तर्यामी की कृपा को आकृष्ट करते हैं। इस स्वस्थ वायु मण्डल में जो भी आता है, वही भगवान के साथ एकता का अनुभव करता और सुखी होता है। प्रार्थना द्वारा संरक्षणात्मक शक्ति उत्पन्न होने से मानव शक्ति शाली बन जाता है।

प्रार्थना द्वारा हम ईश्वरीय शक्ति अपने अन्दर खींचते हैं। वह शक्ति समस्त रोगों की एक रामवाण औषधि है। उसकी रोगनिवारक शक्ति चमत्कारी है। जब वह रोगी शरीर में प्रविष्ट होती है, तो रोग कष्ट व्याधि तेजी से दूर होने लगते हैं। बहुत से मनुष्य प्रार्थना में अपने गुप्त भाव ईश्वर के आगे तो रख देते हैं पर उनकी शक्ति पर विश्वास नहीं करते। ईश्वर की देने की शक्ति में सन्देह बनाये रखते हैं। 'ईश्वर से माँगेंगे, तो मिलेगा या नहीं?'' यह सन्देह हमारी प्रार्थनाओं को फलवती

नहीं होने देता। सन्देह से भरी हुई प्रार्थना को निर्बल प्रार्थना कहते हैं। यह दिखावटी नाटक जैसी अभिनय शीलता मात्र है। दृढ़ विश्वास से प्रार्थना और प्रयत्न दोनों ही किये जाने चाहिए। जो उद्देश्य हो उसे पूर्ण करने के लिए पूरी कोशिश करें पर साथ ही विश्वास पूर्वक प्रार्थना करें, श्रद्धा पूर्वक माँगें, तो आपकी प्रार्थना शुभ परिणाम होगा। ईश्वर के आप पुत्र हैं। आपकी जो आवश्यकता हो, उसके लिए जी तोड़कर भरसक प्रयत्न करें, मांगें, तो निश्चय ही आपको वह वस्तु प्राप्त होकर रहेगी। जिस उद्देश्य के लिए हम तीव्रता से प्रयत्न करते हैं, वह निश्चय ही हमें मिलता है, ईश्वरीय विधान ऐसा है।

प्रार्थनाओं में चुने हुए अनेक उत्पादक विचारों के बीज रहते हैं। ये शब्द बोलने वालों को रक्षा करते हैं। प्रार्थना एकाग्रता पूर्वक करनी चाहिए। जिन पवित्र भावनाओं का उच्चारण करें, उनके अर्थों पर मन को लगाना चाहिए। "ईश्वर मेरा मनोरथ पूर्ण कर रहे हैं।" इसी भाव पर चित्त वृत्तियों को एकाग्र करना चाहिए। एकाग्रता में सहायता के लिए भगवान के किसी भी रूप का कोई चित्र या मूर्ति ले लेनी चाहिए। किसी शान्त स्थान में बने मंदिर में भी एकाग्रता का अभ्यास किया जा सकता है। आरम्भ में एकान्त में प्रार्थना करने की आवश्यकता है। कोलाहल पूर्ण स्थानों पर आध्यात्मिक कम्पनों का कम प्रभाव रहता है। ईश्वरीय श्रद्धा और भगवद् प्रेम से सर्वोत्तम कम्पन पैदा होते हैं जो रोग शोक दूर करते हैं। अतः शान्त तथा एकान्त स्थान में ही पूजा प्रार्थना करनी चाहिए। मन में भगवान की कल्पना करते रहिए। इन मानसिक चित्रों से विचार ठहरे रहते हैं और मन बलवान बनता है। इस प्रकार के ध्यान से मनोबल बढ़ता रहता है।

स्वयं ही प्रार्थना बना लीजिए और प्रत्येक शब्द चुन चुनकर रखिए मानो आप ईश्वर से बातें ही कर रहे हों। यहाँ हम कुछ प्रार्थनाएं उद्धृत कर रहे हैं। इनका श्रद्धा पूर्वक उपयोग करने से आप सर्व व्यापक सर्व शक्तिमान ईश्वर से सीधा सम्बन्ध स्थापित करते हैं—

## एकाग्र मन से नीचे लिखी प्रार्थना किया करें :

"हे नारायण-परमात्मन् ! मुझे आरोग्यता के नियमों की प्रेरणा कीजिए। स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन के नियमों को पालने की मुझे शक्ति दीजिए। तन्दुरुस्ती देने वाले सब संयोग मिलाइये। मुझे रोग व्याधि कष्ट पीड़ा से मुक्त रखिए। मेरे सब अङ्ग स्फूर्तिवान और जवान बने रहें। अपका अपना कार्य सतर्कता पूर्वक करते रहें। मैं अभक्ष पदार्थों से बचा रहूँ। आप मुझे शक्ति दीजिए। आरोग्य दीजिए स्वास्थ्य और यौवन दीजिए। जीवन को बढ़ाइये। मेरे आनन्द की निरन्तर वृद्धि कीजिए। हे परमेश्वर ! आप अनन्त जीवन के केन्द्र हैं। मुझे दीर्घ जीवन दीजिए। कोई रोग मेरे आस पास न आये। आप मेरे बाहर भीतर सभी जगह मेरी रक्षा करते रहिये। मेरी आशा पूर्ण कीजिए।"

इसके अनन्तर 'ॐ नमो नारायण ॐ' इस मंत्र का जाप कीजिए। भावना करते कहिए कि मनुष्य को स्वास्थ्य और आरोग्य वस्तुओं से नहीं, ईश्वर से प्राप्त होता है। वह कृपालु परमेश्वर मुझे अपनी रक्षा में लिए हुए है। आरोग्य होने में कोई संदेह नहीं है।

## निरोग करने वाली प्रार्थना (A Healing prayer)

"हे सर्व शक्तिमान ! हे सर्व व्यापक पिता ! मैं यह स्वीकार करता हूँ कि तेरे असीम जीवन और शक्ति से मेरे जीवन ने स्वास्थ्य शक्ति और आनन्द ग्रहण किया है। तेरा स्वस्त मन मुझ में व्याप्त हो। मेरे मन, शरीर और शक्ति में तेरी दिव्य शक्ति पूर्णत्व संघटित कर रही है।

हे ईश्वर तेरी ही चेतनता मुझ में जीवन-स्रोत बनकर मेरे शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय और रग रग में व्याप्त है। तेरी मंगल शक्ति से ही मैं अपने मन को पूर्णत्व और स्वास्थ्य में परिणत कर रहा हूँ। मेरे प्रत्येक शारीरिक अवयव का यथार्थ पालन पोषण आपके जीवन-तत्व से ही

घटित होता है। मेरे शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय, स्वास्थ्य और अणुमात्र में भी मेरी चेतनता और बुद्धि की महिमा व्याप्त है। मेरे शरीर से समस्त रोगों तथा मन से संकुचित विचारों को दूर कीजिए। मैं अपने मन को आपकी शक्ति शालिनी, स्वस्थ और शान्ति कारिणी व्यापकता के असीम भंडार की ओर अग्रसर करता हूँ ."

"हे प्रभु ! मैं आपके उस मृदु चैतन्य प्रेम की महिमा का गान करता हूँ। जो मुझे स्वास्थ्य यौवन और सौन्दर्य प्रदान कर मेरे सारे भयों को नाश करती है और मेरी रक्षा करती है। हे सनातन पिता ! मेरा शरीर आपका ही पवित्र मंदिर है। आप उसे ऐसे पूर्णत्व से भर दें जिससे कि आपके ही चैतन्य, प्रेम और बुद्धिमत्ता की किरणों चारों ओर व्याप्त हों।"

# अत्यन्त उपयोगी प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| १—योग चिकित्सा २ खण्ड | ... | ११)५० |
| २—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग | ... | ५)७५ |
| ३—योगासन से रोग निवारण | ... | ५)७५ |
| ४—सूर्य नमस्कार से रोग निवारण | ... | ३)२५ |
| ५—अष्टाङ्ग योग सिद्धि | ... | ५)७० |
| ६—अष्टाङ्ग योग रहस्य | ... | ५)७० |
| ७—हठयोग प्रदीपिका | ... | ४) |
| ८—घेरंड संहिता | ... | ३)५० |
| ९—शिव संहिता | ... | ३) |
| १०—गोरक्ष संहिता | ... | ३) |
| ११—वृहद् शिव स्वरोदय | ... | ३)५० |
| १२—सौ वर्ष तक स्वस्थ रहें | ... | ३) |
| १३—हिप्नोटिज्म (सम्मोहन विज्ञान) | ... | ५)५० |
| १४—मरने के बाद | ... | ४)५० |
| १५—सरल प्राकृतिक चिकित्सा विधान | ... | ५) |
| १६—सरल घरेलू चिकित्सा | ... | ४)५० |
| १७—भोजन से स्वास्थ्य | ... | ४)५० |
| १८—ब्रह्मचर्य की प्रचण्ड शक्ति | ... | ३) |
| १९—शक्ति सम्राट कैसे बनें ? | ... | ३)५० |
| २०—दृष्टान्त सरित सागर | ... | ८)५० |
| २१—चिन्तायें कैसे दूर हों ? | ... | ३)५० |
| २२—देवता कैसे बनें ? | ... | ३)५० |
| २३—सुन्दर कैसे बनें ? | ... | ३)५० |
| २४—धनवान कैसे बनें ? | ... | ४)५० |
| २५—चाणक्य नीति | ... | २)२५ |
| २६—भर्तृहरि शतक त्रय | ... | १)६५ |

**प्रकाशक:-संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर,**
**बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)**